वर्ष 44, अंक 3, मई-जून 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

जयंती स्मरण

महावीर प्रसाद द्विवेदी

15 मई 1864

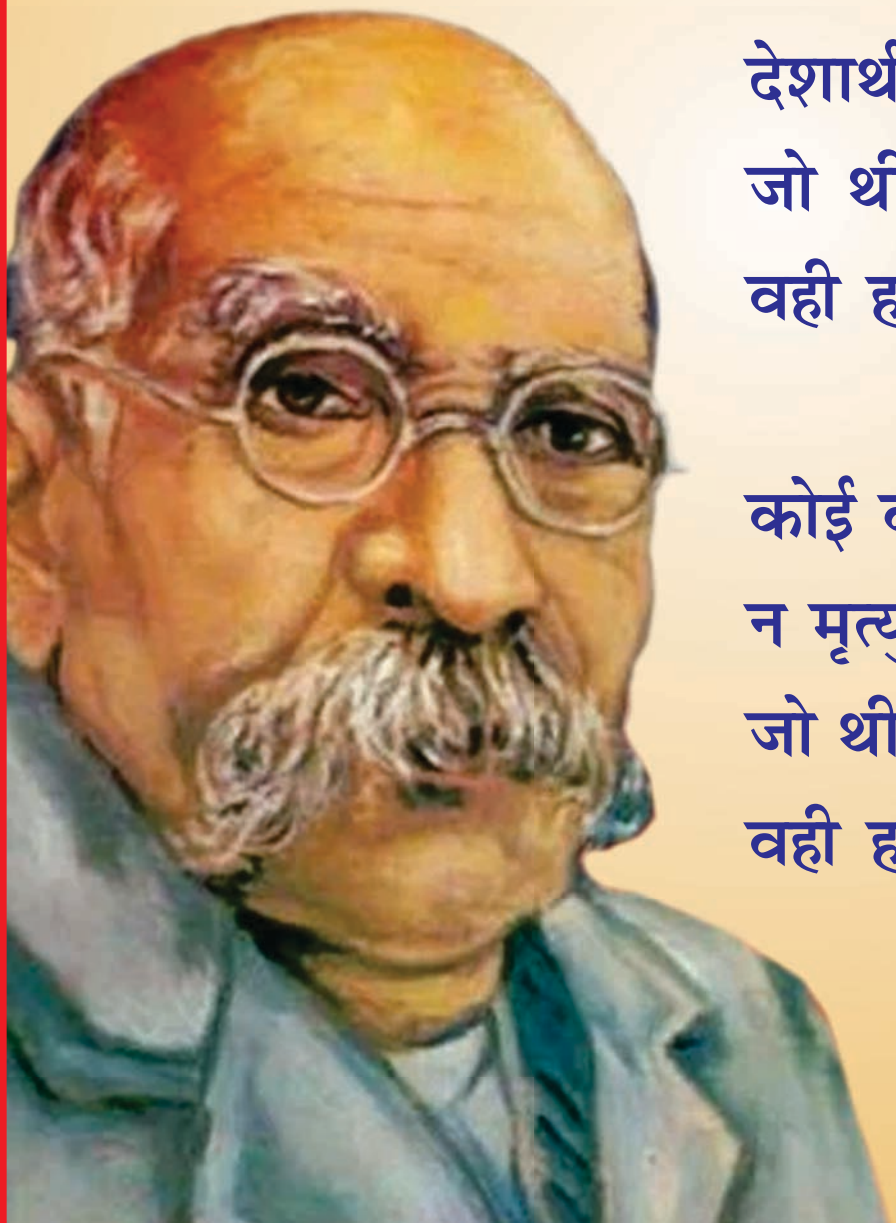

न स्वार्थ का लेन जरा कहीं था,
देशार्थ का त्याग कहीं नहीं था।
जो थी जगत्पूजित श्रेष्ठ-भूमि,
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि।।

कोई कभी धीर न छोड़ता था,
न मृत्यु से भी मुँह मोड़ता था।
जो थी जगत्पूजित धैर्य्य- भूमि,
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि।।

-महावीर प्रसाद द्विवेदी

ISSN : 0971-1430

वर्ष 44, अंक 3, मई-जून 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

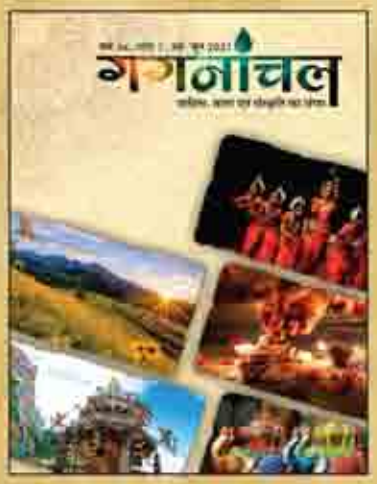

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : spdawards.iccr@gov.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
		यू.एस $ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
		यू.एस. $ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

इस अंक के आकर्षण

भारत बोध

भोजपुरी बोली में रामकथा

महात्मा गाँधी और धान्य राजनीति

डॉ. कलाम की शैक्षणिक अभिदृष्टि

तुलनात्मक साहित्य-अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण

प्रवासी भारतीय समुदाय में सांस्कृतिक विविधता

भारतीय लोकतंत्र के विकास में सोशल मीडिया की भूमिका

मैला आँचल-जाति के समाजशास्त्र का प्रामाणिक अभिलेख

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

वर्ष 44, अंक 3, मई-जून 2021

गगनांचल

प्रकाशकीय

3 कोरोना के दुष्प्रभाव
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

4 आर्य आक्रमण का मिथक और सिंधु घाटी सभ्यता
डॉ. आशीष कंधवे

सांस्कृतिक-विश्व

7 भारत बोध
डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

लोक-संस्कृति

13 भोजपुरी बोली में रामकथा
डॉ. राजेश श्रीवास्तव

कथा-सागर

16 अपने पुराने घर में मेरा आख़िरी दिन
अर्चना पैन्यूली (डेनमार्क)

18 अंतस उजास
बीना उदय

दृष्टि-सृष्टि

28 महात्मा गाँधी और छात्र राजनीति
प्रो. सत्यकेतु सांकृत

32 तुलनात्मक साहित्य-अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण
सिराजुल हक

चिंतन-मंथन

37 डॉ. कलाम की शैक्षणिक अभिदृष्टि
नंद कुमार झा

शोध संसार

41 ब्रज लोक काव्य
हरदेव सिंह निभौतिया

44 दिनेश चमोला के काव्य में राष्ट्र चिंतन
सलमा असलम

49 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद
पंकज कुमार सिंह

52 प्रवासी भारतीय समुदाय में सांस्कृतिक विविधता
डॉ. मुन्ना लाल गुप्ता

56 कविराय के बहाने
डॉ. देवी प्रसाद तिवारी

रेणु जन्म शताब्दी पर विशेष

60 मैला आँचल-जाति के समाजशास्त्र का प्रामाणिक अभिलेख
प्रो. निरंजन कुमार

साहित्य-वैविध्य

64 यहूदी घृणा की जड़ें
डॉ. वरुण कुमार

संस्कृति-संवाद

67 हिंदी उपन्यासों में देश विभाजन की त्रासदी
कुमारी मनीषा

लघुकथा-सरोवर

72 चाँद से संवाद
कुमारी मंजरी

देश-देशांतर

74 प्रवासी हिंदी साहित्य में किसान एवं मजदूरों का चित्रण
डॉ. केदार कुमार मंडल

मीडिया-विमर्श

77 भारतीय लोकतंत्र के विकास में सोशल मीडिया की भूमिका
डॉ. संजय सिंह बघेल

व्यंग्य-वीथिका

82 शौक का तब्दील होना शोक में
मुकेश जोशी

पुस्तक-समीक्षा

83 सात सुरों का मेला
डॉ. गोबिंद प्रसाद

काव्य-मधुवन

85 सुहैब अहमद फ़ारूक़ी
86 नरेश शांडिल्य
87 रूबी मोहंती
88 यामिनी नयन गुप्ता
89 अल्का त्रिपाठी 'विजय'
90 योजना जैन (जर्मनी)
91 पॉली भौमिक
48 प्रियंका सैनी

92 गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर.

प्रकाशकीय

दिनेश कुमार पटनायक
महानिदेशक

कोरोना के दुष्प्रभाव

आज देश विकट परिस्थितियों से गुजर रहा है। इस प्रकार की परिस्थितियों की कल्पना न किसी देश की सरकार ने की थी और न ही आम जनता ने। कोविड-19 महामारी ने विश्व को अपनी चपेट में इस तरह से जकड़ लिया कि जो जहाँ था वहीं स्थिर हो गया। दुख, करुणा और मृत्यु का ऐसा दृश्य, जो इससे पहले शायद ही किसी व्यक्ति ने देखा हो।

इस वैश्विक महामारी ने अपनी चपेट में हमारे देश को भी पूरी तरह से जकड़ लिया है। देश की बहुत बड़ी आबादी इस महामारी से लड़ रही है। अनेक लोग स्वस्थ भी हो रहे हैं लेकिन लाखों की संख्या में हमारे देश के आम नागरिक से लेकर व्यापारी, अधिकारी, नेता, डॉक्टर तक इस महामारी के असमय बलि चढ़ गए।

कोविड-19 महामारी ने देश को सिर्फ स्वास्थ्य के क्षेत्र में ही नुकसान नहीं पहुँचाया है बल्कि इस बीमारी के कारण देश की अर्थव्यवस्था, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक चेतना को भी बहुत बड़ा आघात पहुँचा है।

सामाजिक दूरी बनाए रखने की मजबूरी के कारण अनेक कार्यालयों में निर्धारित कार्य योजनाओं को पूरा नहीं किया जा सकता है वहीं दूसरी ओर देश के समस्त साहित्यिक, अकादमिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम भी रद्द हो गए।

इस महामारी का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव उन बच्चों और युवाओं पर पड़ा है जो अभी हाई स्कूल की शिक्षा अथवा कॉलेज में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। उनके अध्ययन में आयी रुकावट ने उनकी निरंतरता और तन्मयता को कम किया है, साथ में निरंतर स्क्रीन के सामने बैठ कर पढ़ाई करने से उनके स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

कोरोना की दूसरी लहर ने देश के लगभग सभी क्षेत्र को प्रभावित किया है। बहुत बड़ी संख्या में एक साथ लोगों के संक्रमित हो जाने के कारण देश की स्वास्थ्य व्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा एवं अनेक लोगों को उचित स्वास्थ्य सेवाएँ नहीं मिलने के कारण परेशानियों से जूझना पड़ा। लंबे लॉकडाउन के कारण उद्योग जगत पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा और अनेक लोगों को अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़ा तथा छोटे व्यवसायियों को अपने रोजगार को बंद करना पड़ा।

साहित्य, संस्कृति और भाषा के क्षेत्र में भी ऑनलाइन कार्यक्रम तो चलते रहे परंतु सीधा संवाद स्थापित नहीं होने के कारण ऑफलाइन कार्यक्रमों की तरह उन्हें सफल नहीं माना जा सकता। साहित्य के माध्यम से ही समाज से सीधा संवाद और विमर्श संभव है। साहित्य ही वह कसौटी है जो समाज के बुनियादी ढाँचे को मूल्यांकन करके देश के सामने प्रस्तुत करती है। इसी से हमारी संस्कृति का संरक्षण, पोषण और संप्रेषण होता है। भारत जैसे विशाल देश में उसकी राष्ट्रीय चेतना, अस्मिता और विभिन्नता को प्रकट करने का सबसे सरल और सहज माध्यम साहित्य ही है। गगनांचल पत्रिका के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद भारत ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना का प्रसार करती है, हिंदी भाषा का संरक्षण एवं प्रतिष्ठा करती है।

मुझे आशा है कि भारत की सक्षम सरकार और समझदार जनता दोनों मिलकर इस वैश्विक महामारी से लड़ने के लिए स्वयं को तैयार करेंगी। आम भारतीय जनमानस मानसिक रूप से बहुत ही सबल होता है इसलिए मुझे ऐसा विश्वास है आने वाले दिनों में हम विजयी होंगे।

ऐसी विषम परिस्थिति में मैं भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की ओर से सभी देशवासियों के शीघ्र स्वस्थ हो जाने की कामना करता हूँ एवं आशा करता हूँ कि शीघ्र अति शीघ्र हमारे देश को ही नहीं अपितु पूरे विश्व को इस महामारी से छुटकारा मिल जाएगा।

दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

आर्य आक्रमण का मिथक और सिंधु घाटी सभ्यता

इतिहास तथ्यों पर आधारित होता है न कि पूर्वाग्रहों पर। लेकिन हमारे देश में इतिहास पूर्वाग्रह ग्रसित हो कर ही लिखा गया है। इतिहासकारों ने पहले ही निष्कर्ष निकाल लिया, इसके पश्चात तथ्यों को उस निष्कर्ष के अनुसार तोड़-मरोड़ कर लिखा। स्वतन्त्रता से पहले अंग्रेजों ने इस कला को आरंभ किया था जो आज भी लॉर्ड मैकाले से प्रभावित इतिहाकारों और पत्रकारों में व्याप्त है। इतिहास में कई ऐसी कल्पनाएँ उल्लेखित हैं जो बिना तथ्यों के ही सिर्फ पूर्वाग्रहों पर लिख दी गयी हैं।

उन्हीं में से एक 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' या 'आर्यन इंवेजन थ्योरी' सबसे अधिक प्रचलित है। इस सिद्धांत के अनुसार उत्तर भारत के लोग यानि 'आर्य' यूरोप-ईरान से आए हैं और उन्होंने 1500 ईसा पूर्व भारत भूमि पर आक्रमण कर इसका अधिग्रहण किया। बीते वर्ष 5 सितंबर को आधिकारिक रूप से इस मनगढ़ंत सिद्धांत को अप्रासंगिक सिद्ध कर दिया गया। हरियाणा के राखीगढ़ी में मिले कंकालों के डीएनए सैंपलों से पता चला है कि भारत के निवासियों का 'आर्य' के जीन से कोई संबंध नहीं है। क्या आपको पता है कि इस अन्वेषण से यह भी सिद्ध हो गया कि भारतीय इतिहास की मूल मानी जाने वाली सिंधु घाटी सभ्यता से बड़ी सरस्वती घाटी सभ्यता है?

ये कहानी भारत के इतिहास के सबसे बड़े षडयंत्र की है। एक ऐसे मनगढ़ंत सिद्धांत या कहानी की जिसने भारतीयों को 19वीं सदी में ही बाँट दिया। ये कहानी है भारत की सबसे बड़ी नदी और सभ्यता की जिसका अस्तित्व वामपंथी इतिहासकारों ने कभी माना ही नहीं। 'आर्यन इंवेजन थ्योरी' का जन्म यूरोप में हुआ, जहाँ लोग स्वयं को सबसे सर्वोच्च प्रजाति का मानते थे। अगर यह कहें कि जर्मन ने इसे जन्म दिया और अंग्रेजों ने इसे बड़े स्तर पर उपयोग किया तो यह मिथ्या नहीं होगा। 'आर्यन' या 'आर्य' शब्द का अर्थ होता है एक भद्र मानव। इस शब्द का उल्लेख ऋगवेद में भी मिलता है। अर्थात किसी भी स्रोत पाण्डुलिपि या पुरातत्व में आर्य के कहीं से भी भिन्न प्रजाति के होने का प्रमाण नहीं मिलता।

मित्रो! वामपंथी इतिहासकारों का दल और अम्बेडकरवादी नवभौंदू दल दोनों मानते हैं कि इस देश के मूलनिवासी केवल वही हैं जो सिंधु सभ्यता के नागरिक थे। इस कल्पना को साबित करने के लिए एक मनगढ़ंत सिद्धांत का आविष्कार किया गया और उसे नाम दिया गया 'आर्यन इंवेजन थ्योरी' यानि 'आर्य' नाम की प्रजाति ने भारतीय उपमहाद्वीप के मूल निवासियों पर आक्रमण किया तथा विभिन्न विकसित प्रणाली जैसे खेती करने के गुण, वेद, पूजा करने की विधि आदि अपने साथ ले कर भारतीय उपमहाद्वीप पर आए।

इसी सिद्धांत को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने वाले इतिहासकर ए.एल. बाशम अपनी किताब 'ए वंडर दैट वाज इंडिया' में लिखते हैं, 'दूसरे मिलेनियम में भारत आने वाले आर्यनों का समूह काव्य रचना करने में प्रवीण हो चुका था जिसे देवों को खुश करने के लिए सृजित किया जाता था। उन्होंने यह भी लिखा है कि आर्य अपने साथ पितृसत्तात्मक परिवार, घोड़े, रथ आदि को अपने साथ ले कर आए।'

अंग्रेजी नेतृत्व ने आर्य आक्रमण सिद्धांत का उपयोग कर भारत को बाँटने का काम लॉर्ड मैकॉले को दिया। लॉर्ड मैकॉले ने ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ अपने प्रभाव का उपयोग कर 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' देने वाले मैक्स मुलर की मदद ली और ऋग्वेद का अनुवाद करा कर भारत के मूल निवासियों में से उत्तर भारतीयों को 'आर्य प्रजाति' सिद्ध करने की कोशिश की। मैकॉले का यह षड्यंत्र सफल हो गया। मैकॉले के साथ-साथ भारत के ही कई इतिहासकार इस षड्यंत्र का हिस्सा बने और देश का आर्यों और द्रविड़ों में सिर्फ विभाजन ही नहीं किया बल्कि भारतीयों के मस्तिष्क में एक हीन भावना भी पैदा करने में सफल रहे जिससे आज की पीढ़ी भी उबर नहीं पायी है।

रोमिला थापर, इरफान हबीब और उनके साथी इतिहासकार इसी काल्पनिक सिद्धान्त को अपनी किताबों में लिख कर दशकों तक देश के विद्यार्थियों को भ्रमित करते रहे। इन वामपंथी इतिहासकारों ने इस सिद्धांत से भारत की सभ्यता का उद्भव भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर का बताया और वैदिक प्रथाओं को एक विदेशी प्रथा के रूप में दिखाया। इससे दक्षिण भारतीयों में यह संदेश गया कि आर्यों ने मूल निवासियों पर हमला किया जिसके कारण द्रविड़ों को पलायन कर सुदूर समुद्र तक जाना पड़ा। यही सिद्धांत कालांतर में भाषायी आधार पर भारत में राज्यों के विभाजन का कारण बना। इसी सिद्धांत का उपयोग कर लोकतांत्रिक भारत में राजनीतिक दलों द्वारा उत्तर बनाम दक्षिण के

रूप में बाँटने का प्रयास किया गया। डीएमके और अन्नाद्रमुक जैसी पार्टियों ने स्वतन्त्रता के बाद दशकों तक क्षेत्रवादी राजनीतिकर लोगों को बाँटते रहे हैं। पेरियार जैसे लोगों ने तो द्रविड़ों के लिए अलग देश बनाने की माँग कर दी थी।

आर्य आक्रमण सिद्धांत आज भी प्रचलित है तो केवल वामपंथी इतिहासकारों की संगठित सेना के कारण जो देश की शिक्षा प्रणाली के सभी स्तरों पर आसीन है। स्वतन्त्रता के बाद भी जवाहर लाल नेहरू ने अंग्रेजों के चाटुकारों को ही भारत का इतिहास लिखने का दायित्व दिया। बीसवीं शताब्दी में जैसे-जैसे पुरातत्व के सुबूत मिलते गए, विशेष रूप से सिंधु और सरस्वती घाटियों में, उससे यह स्पष्ट होता गया कि प्रस्तावित तारीख के आसपास यानि 1500 ईसा पूर्व किसी भी व्यक्ति या समूह ने भारत पर आक्रमण या पलायन नहीं किया था। साथ ही यह भी सिद्ध किया गया कि अधिकतर पुरातात्विक शहर क्षेत्र सिंधु नदी के आस-पास नहीं अपितु लुप्त हो चुकी सरस्वती नदी के किनारों पर बसा है। हड़प्पा सभ्यता की 2600 बस्तियों में से वर्तमान पाकिस्तान में सिन्धु तट पर मात्र 265 बस्तियाँ हैं, जबकि शेष अधिकांश बस्तियाँ सरस्वती नदी के तट पर मिलती हैं।

अभी तक हड़प्पा सभ्यता को सिर्फ सिन्धु नदी की देन माना जाता था, लेकिन अब नये शोधों से सिद्ध हो गया है कि भारत की सभ्यता सिंधु सभ्यता नहीं सरस्वती सभ्यता है। इस प्रमाण के साथ मेजर जनरल जीडी बक्शी ने अपनी किताब 'द सरस्वती सिविलाइजेशन' में भी बताया है।

बाहर से आकर आर्यों ने सिंधु सभ्यता को नष्ट किया और हड़प्पा वासी अर्थात दलितों को गुलाम बनाया। ये लोग इसी के साथ सरस्वती नदी को भी काल्पनिक मानते हैं तो कुछ वामपंथी इतिहासकार जैसे कि रोमिला थापर मानती हैं कि सरस्वती नदी अफगानिस्तान की हेलमैंड (Helmand) नदी है। यदि ये लोग सरस्वती नदी के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तो इन्हें वैदिक सभ्यता को भारतीय तथा महाभारत को ऐतिहासिक मानने पर बाध्य होना पड़ेगा तथा सिंधु सभ्यता के विनष्टीकरण का कोई दूसरा ही कारण देना पड़ेगा। ऐसा करने पर इनके द्वारा वर्षों से गढ़ा गया आर्य आक्रमण का मिथक धराशायी हो जायेगा। इसीलिए ये लोग या तो सरस्वती नदी को काल्पनिक कहते हैं या फिर उसे अफगानिस्तान में बताते हैं।

हम यहाँ आधुनिक भूगर्भ विज्ञान सम्बंधित अनुसंधान, भूगर्भ अनुसंधान (Geology Research) प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें सरस्वती नदी को वास्तविक बताया गया है तथा सिंधु सभ्यता के नष्ट होने का कारण वातावरण में परिवर्तन का होना सिद्ध किया है।

सर्वप्रथम भूगर्भशास्त्री आर. डी. ओलहम (Geologist R. D. Oldham) ने द सरस्वती एंड द लॉस्ट रिवर ऑफ द इंडियन डेसर्ट (The Saraswati and the Lost River of The Indian Desert) नाम से एक लेख प्रकाशित किया जो कि The Journal of the Royal Asiatic Society 1893 में छपा। इस लेख में घग्गर हाकरा नदी को हिमालय मूल की तथा सरस्वती नदी के वर्णनों से मेल खाने के कारण सरस्वती नदी बताया गया था। इसके बाद अन्य कई रिसर्च आये जिसने इस वक्तव्य का समर्थन किया। उनमें से कुछ रिसर्च हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं-

1. अनुसंधान, स्कूल ऑफ एनवायर्नमेंटल साइंस, जेएनयू और आई एफ एम और ज्योमर, जर्मनी के जयंत त्रिपाठी, बारबरा बॉक, वी राजमणी, ए. आइजनहेवर (School of Environmental Science, JNU और IFM & Geomar, Germany के Jayant k Tripathi, Barbara bock, V. Rajamani, A. Eisenahaver) ने किया था। ये सम्पूर्ण रिपोर्ट सारांश रूप से करंट साइंस वाल्यूम 87 (Current science Vol.87) 25 अक्टूबर 2004 की पत्रिका में छपी थी।

   इसमें घग्गर नदी, रेगिस्तान, गंगा, यमुना, सतलुज, हिमालय और उसकी शिवालिका आदि श्रेणी से कुछ नमूने एकत्र किये गये और उनके यौगिकों का अध्ययन किया गया। इन नमूनों के आपसी अनुपातों से निष्कर्ष निकाला गया कि घग्गर नदी बहुत समय पहले गंगा, यमुना आदि नदियों की तरह जल से भरपूर और बहाव वाली नदी थी। ये नदी हिमालीय शृंखला से उद्गम को दर्शाती थी। इसी नदी के समीप हड़प्पा सभ्यता के अनेक स्थल विकसित हुए थे। किंतु जैसे-जैसे मानसून बदला वैसे-वैसे ये नदी धीरे-धीरे सूखने लगी और इस नदी के तट पर बसी सभ्यता के लोगों ने भी पलायन करना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे ये सभ्यता नष्ट हो गयी। इस रिपोर्ट में रासायनिक परीक्षणों से निष्कर्ष निकाला गया कि घग्गर नदी हिमालय शृंखला से निकलने वाली सरस्वती नदी थी, हालांकि इसके ग्लेशियर से उद्गम होने का कोई प्रमाण नहीं मिला किंतु हिमालय की शृंखला से अवश्य ही इसका उद्गम हुआ था। इसी नदी के सूखने के कारण हड़प्पा वासियों को पलायन करना पड़ा था। इसी तरह आर्च सैटिन, जैन मैंकिनटोश (Aarch Stein, Jane Macintosh) आदि ने भी घग्गर को सरस्वती या सरस्वती के अंश के रूप में पहचान की।

   इस तथ्य का विरोध भी कुछ लोगों ने किया जिसमें प्रमुख रोमिला थापर हैं। उनका कहना है कि घग्गर नदी हिमालय शृंखला से संबंधित नहीं है, इसीलिए ये सरस्वती नदी नहीं हो सकती है क्योंकि सरस्वती नदी को हिमालय शृंखला का बताया गया है। इसी के साथ रोमिला थापर ने अफगानिस्तान की हेलमैंड (Helmand) नदी को सरस्वती नदी होना बताया। उनका इस पर तर्क था कि इस नदी का पुराना नाम 'हरहावती' था, जो कि सरस्वती का पारसी नाम था। वास्तव में रोमिला थापर अपने ऐजेंडे में इतना खो गयी थीं कि उन्होंने अपनी ही बात का खुद खंडन कर डाला। उनका कहना कि सरस्वती नदी का उद्गम हिमालय शृंखला से होता है फिर अफगानिस्तान की हेलमैंड (Helmand) नदी को सरस्वती बता देना परस्पर विरोधाभासी कथन है। प्रथम तो सरस्वती को सप्तसिन्धु के अन्तर्गत माना गया है जिसमें सभी नदियाँ भारतीय नदियाँ हैं। अफगानिस्तान में सप्तसिन्धु नहीं है तथा हेलमैंड (Helmand) नदी का उद्गम हिमालय या हिमालय की कोई पर्वत शृंखला नहीं है। इस नदी का उद्गम हिंदु कुश पर्वत है।

   अत: केवल नाम साम्यता के आधार पर हेलमैंड (Helmand) को सरस्वती बताना एक मिथक सिद्ध होता है।

घग्गर के सरस्वती होने का खंडन फलूवेल लैंडस्केप ऑफ द हड़प्पा सिविलाइजेशन (Fluvial Landscapes of the Harppan Civilization) नामक एक अनुसंधान पत्र में लीविउ गिओसं (Liviu Giosan) ने किया। ये वुड होल आसेनोग्राफिक इंस्टीट्यूशन, यू.के. (Woods Hole Oceanographic institution, United Kingdom) से थे। इन्होंने घग्गर, थार और इंडो गंगेटिक प्लेन से कुछ नमूने एकत्रित करके उन पर सटर रडार टोपोग्राफी मिशन, रेडियो कार्बन (Shutter Radar Topography Mission, Radio Carbon) तथा ऑप्टिकली स्टीम्युलेटीड ल्युमिनेसंस डेटिंग (Optically Stimulated Luminescence Dating) आदि परीक्षण किये और बताया कि घग्गर हिमालय शृंखला से न होने के कारण सरस्वती नहीं है किंतु घग्गर नदी के आस-पास हड़प्पा सभ्यता के अनेक प्रमुख नगर बसे हुए थे, जो कि कृषि आदि कार्यों के लिए इसी नदी पर निर्भर थे। किंतु धीरे-धीरे मानसून में बदलाव हुआ तथा घग्गर नदी सूखना शुरू हो गयी। इससे रेगिस्तानी भूमि का धीरे-धीरे विस्तार होने लगा और घग्गर के सूख जाने के कारण इस नदी पर बसे सिंधु वासियों को पलायन करके गंगा आदि घाटियों पर जाना पड़ा। अर्थात् चाहे लविउ गिओसं (Liviu Giosan) ने घग्गर को सरस्वती न माना हो किंतु वे भी मानसून में बदलाव और नदी का सूखना तथा रेगिस्तान में वृद्धि को इस सभ्यता के पतन का कारण मानते हैं।

2. 20 नवम्बर 2019 को Department of Earth Science IIT Mumbai की (निर्वाण चटर्जी) Nirban Chatterjee की टीम ने एक रिपोर्ट On the existence of aperennial river in the harappan heartland नाम से प्रकाशित की, जो कि Scientific Report में भी छपी। इसमें हिमालय शृंखला, गंगा, यमुना, सतलुज, थार, घग्गर आदि क्षेत्रों से नमूने इकट्ठे किये गये। जिनका 40 Ar/39 Ar ags muscovite तथा (Sr & Nd) Ratio of Siliclastic Sediment ज्ञात किया गया।

   इसी के साथ काल मापन के लिए रेडियो कार्बन (Radio Carbon) और ल्युमिनेसंस (Luminescence) पद्धति का उपयोग किया गया। इस आधार पर तैयार डाटा से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि घग्गर नदी हिमालय शृंखला की उच्चतम व निम्नतम पर्वत श्रेणियों से निकलने वाली नदी थी। जिसे सरस्वती कहा जा सकता है। ये नदी पहले अन्य नदियों की तरह जल से भरी रहती थी किंतु जैसे - जैसे मानसून में परिवर्तन होने लगा वैसे-वैसे नदी सूखना शुरू हो गयी तथा यह एक बरसाती और छोटी-सी सूखी नदी बनकर रह गयी। इस नदी के धीरे-धीरे सूखने तथा रेगिस्तान के विस्तार के कारण हड़प्पा वासियों को पलायन करना पड़ा और ये सभ्यता धीरे-धीरे समाप्त हो गई।

3. नासा के सेटेलाइट चित्रों द्वारा भी सरस्वती की पुष्टि की गयी है।

4. भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान विभाग ISRO द्वारा भी इस बात की पुष्टि अपने रिमोट सेंसिंग (Remote Sensing) से की गयी है कि घग्गर, सरस्वती नदी का एक अवशेष हो सकती है।

   यहाँ ये बात तो स्पष्ट है कि अधिकतर भू-गर्भशास्त्री और उनके अनुसंधान घग्गर को सरस्वती के रूप में दर्शाते हैं, किंतु कुछ इसके विरोध में भी हैं लेकिन सभी इस बात पर एक मत हैं कि सिंधु सभ्यता की विलुप्ति का कारण मानसून में परिवर्तन होने से नदी का सूखना था अर्थात् इस सभ्यता के लोगों के पलायन का कारण कोई आक्रमण न होकर प्राकृतिक आपदा थी। इस बात की पुष्टि धोलावीरा नगर की नगर संरचना देखने से भी होती है। इन नगरवासियों को जल की कमी का सामना करना पड़ा होगा, इसीलिए ऐसी व्यवस्था की गई कि अधिक से अधिक वर्षाजल एकत्र करके उसका उपयोग किया जा सके। जल का बहाव कम हो तथा संग्रह अधिक हो, इसीलिए वहाँ इस तरह की व्यवस्था आरंभ हुई। किंतु अत्यधिक कम वर्षा और सूखापन अंततः पलायन का कारण बना। अतः सरस्वती जिसका उल्लेख महाभारत आदि आर्ष ग्रंथों में है। महाभारत में 3/82/005 - "प्लक्षाद्देवी स्त्रुता राजन्महापुण्या सरस्वती"। महाभारत 6/7/47 - "श्या श्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती" यहाँ इस वर्णन से ऐसा लग रहा है कि महाभारत काल में सरस्वती नदी विलुप्त होना अथवा सूखना आरम्भ हो गयी थी, इसीलिए उसके कहीं कहीं दृश्य होने और कहीं-कहीं अदृश्य होने की बात कही गयी है। इसीलिए भूगर्भ शास्त्र के अनुसंधान पत्रों और महाभारत के वर्णन से सरस्वती को बिना आधार काल्पनिक नहीं माना जा सकता है। जैसे-जैसे आगे और अनुसंधान होंगे, वैसे-वैसे सरस्वती को लेकर स्थिति स्पष्ट होती जायेगी। किंतु ये बात स्पष्ट सिद्ध हो चुकी है कि सिंधु सभ्यता के पतन का कारण प्राकृतिक आपदा थी।

गगनांचल वैश्विक साहित्य संस्कृति की पत्रिका है इसलिए मुझे आवश्यक लगा कि भारतीय संस्कृति के इस महत्वपूर्ण पक्ष पर बात होनी चाहिए जो अभी तक साहित्यकारों द्वारा संज्ञान में नहीं ली गई है या कम ली गई है। हम सब का यह प्रयास होना चाहिए कि अपनी सांस्कृतिक विरासत से नई पीढ़ी को परिचित कराएँ। लगातार पाठकों एवं रचनाकारों द्वारा मुझे संदेश मिलते रहते हैं जिससे यह आशा बँधी रहती है कि हमारे द्वारा किया जा रहा कार्य संतोषजनक है। शेष समय के गर्भ में...।

डॉ. आशीष कंधवे
मोबाइल : +91-9811184393
ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

भारत बोध

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

हिंदी के यशस्वी लेखक आचार्य चतुरसेन ने अपने कालजयी उपन्यास 'वयं रक्षाम:' में इस संबंध में लिखा है, "ईसा से कोई चार हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष के मूल पुरुष स्वायंभुव मनु उत्पन्न हुए। इनकी तीन पुत्रियाँ तथा दो पुत्र हुए। पुत्रों के नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद थे। प्रियव्रत के दस पुत्र हुए। इन्हें प्रियव्रत ने पृथ्वी बाँट दी। ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र को उसने जंबूद्वीप (एशिया) दिया। इसे इसने अपने नौ पुत्रों में बाँट दिया। बड़े पुत्र नाभि को हिमवर्ष-हिमालय से अरब समुद्र तक देश मिला। नाभि के पुत्र महाज्ञानी-सर्वत्यागी ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव के पुत्र महाप्रतापी भरत हुए। भरत ने अष्टद्वीप जय किए और अपने राज्य को नौ भागों में बाँटा। इन्हीं के नाम पर हिमवर्ष का नाम भारत, भारतवर्ष या भारतखंड प्रसिद्ध हुआ। (आचार्य चतुरसेन 2016)

शोधालेख का शीर्षक 'भारत-बोध' दो शब्दों के मेल से बना है। पहला शब्द है – भारत और दूसरा शब्द है – बोध। इस विषय पर गहन चर्चा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि शीर्षक में आए दोनों शब्दों पर किंचित विचार कर लिया जाए।

संस्कृत-हिंदी शब्दकोश के अनुसार भारत का अर्थ है- भरत से संबंध रखने वाला या भरत की संतान। (वामन शिवराम आप्टे 2007) 'भारत' शब्द भा+रत दो शब्दों के मेल से बना है। 'भा' का अर्थ है – प्रकाश, आभा, कांति, दीप्ति, चमक। (रामचंद्र वर्मा 2007)। यह 'भा' अन्य कई शब्दों में भी विद्यमान है, जैसे सूर्य के पर्यायवाची के रूप में भानु, भास्कर आदि। इसी प्रकार आभा, विभा, प्रभा आदि शब्दों में भी 'भा' का अर्थ दीप्ति, चमक या प्रकाश ही है।

वास्तव में यह 'भा' अर्थात् प्रकाश प्रतीक है – ज्ञान का, सकारात्मक सोच का, सद्भाव का, देवत्व का। इसका विलोम अंधकार प्रतीक है- अज्ञान का, नकारात्मक सोच का, समस्त बुराइयों का, दानवत्व का। 'भारत' शब्द में प्रयुक्त दूसरे अंश 'रत' का अर्थ है – लीन, संलग्न, लगा होना, निमग्न होना आदि। इस प्रकार 'भारत' शब्द का अर्थ है – ज्ञान रूपी प्रकाश में लीन लोगों का देश।

दूसरा शब्द है – बोध। इसका तात्पर्य है – ज्ञान, जानकारी, समझ आदिद्य अत: 'भारत-बोध' शीर्षक का अर्थ हुआ – भारत के संबंध में ज्ञान या जानकारी।

'भारत-बोध' का वास्तविक अर्थ 'भारत-बोध' का वास्तविक अर्थ है- भारत की नदियाँ (गंगा, यमुना, सरस्वती, सिंधु, कृष्णा, कावेरी, ताप्ती, गोदावरी आदि); पंच सरोवर (पंपा सरोवर, पुष्कर झील, मानसरोवर आदि); सप्त पर्वत (हिमालय, मलयगिरि, अरावली आदि); चार धाम (बद्रीनाथ, रामेश्वरम, द्वारिका और जगन्नाथपुरी); सप्त पुरी (अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी आदि); द्वादश ज्योतिर्लिंग (सोमनाथ, केदारनाथ, विश्वनाथ, त्र्यंबकेश्वर, वैद्यनाथ, नागेश्वर, रामेश्वरम् आदि)।

51 शक्तिपीठ और समस्त संस्कृत वाङमय (4 वेद, 6 वेदांग, 6 दर्शन, 18 पुराण, 108 उपनिषद् के अतिरिक्त सूत्र, स्मृति, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रंथ, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवत गीता आदि) मिलकर भारत का भौगोलिक-सांस्कृतिक स्वरूप सुनिश्चित करते हैं। इनका सामान्य ज्ञान भारत-बोध का अनिवार्य अंग है।

'भारत-बोध' अपने भीतर अनेक आयामों को समाहित किए हुए है। ये आयाम हैं - भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, व्यावसायिक आदि। (जुगल किशोर शर्मा 2008)

भारत राष्ट्र के नामकरण का आधार 'भारत' शब्द का व्याकरणिक अर्थ जान लेने के पश्चात यह जानना भी आवश्यक है कि क्या भारत नाम भरत के नाम पर आधारित भी हो सकता है? यदि हाँ, तो कौन से भरत के नाम पर? हमारे पौराणिक ग्रंथों में भरत नाम के तीन वीर राजाओं का उल्लेख मिलता है। भरत नाम के ये तीनों ही राजा एक-से-बढ़कर-एक थे।

इनमें पहले हैं- चक्रवर्ती सम्राट भरत।

श्रीमद्भागवत (5/7/3) में कहा गया है -

'अजनाभंनामैतदवर्ष भारत मिति यत आराभ्य व्ययदिशंति।

हिंदी के यशस्वी लेखक आचार्य चतुरसेन ने अपने कालजयी उपन्यास 'वयं रक्षामः' में इस संबंध में लिखा है, "ईसा से कोई चार हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष के मूल पुरुष स्वायंभुव मनु उत्पन्न हुए। इनकी तीन पुत्रियाँ तथा दो पुत्र हुए। पुत्रों के नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद थे। प्रियव्रत के दस पुत्र हुए। इन्हें प्रियव्रत ने पृथ्वी बाँट दी। ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र को उसने जंबूद्वीप (एशिया) दिया। इसे इसने अपने नौ पुत्रों में बाँट दिया। बड़े पुत्र नाभि को हिमवर्ष-हिमालय से अरब समुद्र तक देश मिला। नाभि के पुत्र महाज्ञानी-सर्वत्यागी ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव के पुत्र महाप्रतापी भरत हुए। भरत ने अष्टद्वीप जय किए और अपने राज्य को नौ भागों में बाँटा। इन्हीं के नाम पर हिमवर्ष का नाम भारत, भारतवर्ष या भारतखंड प्रसिद्ध हुआ। (आचार्य चतुरसेन 2016)

लिंगपुराण में भी ऋषभ-पुत्र (नाभि के पौत्र) भरत के नाम से इस देश का नाम भारत होने की बात कही जाती है

सोऽभिषिच्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सलः।
हिमाद्रेर्दक्षिणं भागं भरताय न्यवेदयत॥
तस्मातु भारतं वर्ष तस्य नाम्ना विदुर्बुधा॥

(डॉ. हरिश्चंद्र बर्थ्वाल 1999)

भरत नाम के जिस दूसरे सम्राट के नाम पर हमारे देश का नाम भारत रखा गया माना जाता है, वे थे - हस्तिनापुर के राजा दुष्यंत और शकुंतला के पुत्र भरत। भरत की वीरता का उल्लेख करते हुए एक प्रसंग पढ़ने को मिलता है कि वह बचपन से ही अत्यधिक निडर था और सिंह का मुख खोलकर उसके दाँत गिना करता था। भरत एक निर्भीक, न्यायप्रिय तथा योग्य शासक था। वह अपने पिता के समान ही महान योद्धा था। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार हिमालय से लेकर विंध्य तक कर लिया था। वह अपनी प्रजा का पालन अपनी संतान की भांति करता था। उसके शासन काल में प्रजा सुखी थी, साम्राज्य खुशहाल था।

'राजा का बेटा ही राजा बनेगा' इस प्रचलित परंपरा को तोड़ने जैसा कठोर निर्णय प्रजाहित में लेने के कारण ही, भरत को भारत में प्रजातंत्र की स्थापना का कार्य करने वाले सम्राट के रूप में याद किया जाता है और संभवतः इसी कारण कुछ विद्वान दुष्यंत पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारत किया जाना मानते हैं। (एस. ए. कृष्णन, 2016)

भरत नाम के राजा का तीसरा उल्लेख त्रेता युग में मिलता है। अज के पुत्र दशरथ अयोध्या नरेश थे। इनके चार पुत्रों में से एक - भरत के नाम पर देश का नाम भारत होने का अनुमान भी कुछ लोग लगाते हैं। दशरथ पुत्र भरत ने त्याग और भ्रातृप्रेम का एक अनुपम-अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया, किंतु यह आधार अधिकतर विद्वानों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता।

मत्स्य पुराण, वायु पुराण, ब्रह्मांड पुराण इत्यादि के अनुसार प्रजाओं का भरण-पोषण करने के कारण मनु भरत कहलाते हैं और निरुक्त की व्याख्या से भरत का देश भारत कहलाता है अर्थात् मनु भरणकर्ता होने से मनु का देश भारत कहलाया।

भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्च्यते।
निरुक्त वचानाच्चौव वर्ष तद्भारतंस्मृतं।।

(डॉ. हरिश्चंद्र बर्थ्वाल 1999)

भारत शब्द के अर्थ और नामकरण के आधार को समझ लेने और बोध का आशय स्पष्ट हो जाने के पश्चात अब हम भारत-बोध के विविध आयामों पर विचार करेंगे।

भौगोलिक आयाम भारत-बोध हेतु हमें सर्वप्रथम भारत के भौगोलिक आयाम को जानना होगा। भारत का क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है, जो हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों से लेकर दक्षिण के उष्ण कटिबंधीय सघन वनों तक फैला हुआ है। विश्व के इस सातवें विशालतम देश को पर्वत तथा समुद्र, शेष एशिया से अलग करते हैं। भारत के उत्तर में महान हिमालय पर्वत है, जहाँ से यह दक्षिण में बढ़ता हुआ। कर्क

रेखा तक जाकर, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर के बीच हिंद महासागर से जा मिलता है।

यह पूर्णतया उत्तरी गोलार्ध में स्थित है। इसकी मुख्य भूमि 8°4' और 37°6' उत्तरी अक्षांश और 68°7' और 97° 25' पूर्वी देशांतर के बीच फैली हुई है। इसका विस्तार उत्तर से दक्षिण तक 3214 किलोमीटर और पूर्व से पश्चिम तक 2933 किलोमीटर है। इसकी भूमि-सीमा लगभग 15,200 किलोमीटर हैद्य मुख्य भूमि, लक्ष्यद्वीप समूह और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह के समुद्र-तट की कुल लंबाई 7,516 किलोमीटर है। (भारत 2004)

पुराणों में भी भारत की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है

उत्तरं यत समुद्रस्य हिमाद्रेश्चौव दक्षिणं।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र संतति।।

(विष्णु पुराण 2/अ.3)

अर्थात् हिंद महासागर के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित महान देश भारतवर्ष के नाम से जाना जाता है, यहाँ का पुत्र रूप समाज भारतीय है। (जुगल किशोर शर्मा 2008)

ऐतिहासिक आयाम भारत का इतिहास कितना प्राचीन है, इस संबंध में विद्वानों में सदा से ही मतभेद रहा है। बीसवीं सदी के प्रारंभ में कुछ विदेशी विद्वानों ने भारत का इतिहास ईसा से लगभग 1750 वर्ष पूर्व वैदिक युग से शुरू हुआ बताया। उनके अनुसार वैदिक सभ्यता ही भारत की प्राचीनतम सभ्यता थी। बाद में सन 1921 में सर दयाराम साहनी के नेतृत्व में और 1922 में राखालदास बनर्जी के नेतृत्व में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई से सिंधु घाटी सभ्यता (काँस्य युग) का अस्तित्व प्रकट हुआ।

भारतीय पुरापाषाण युग को 25 लाख वर्ष पुरातन माना जाता है। पुरापाषाण काल के औजार छेटा नागपुर के पठार में मिले हैं, जो एक लाख वर्ष ईसा पूर्व के हो सकते हैं। आंध्र प्रदेश के कुर्नूल जिले में 20,000 वर्ष ईसा पूर्व से 10,000 ईसा पूर्व के मध्य के औजार मिलते हैंद्य इसके साथ हड्डी के उपकरण और बकरी, भेड़, गाय, भैंस इत्यादि पालतू पशुओं के अवशेष मिलते हैं।

नव पाषाण युग के अंतर्गत ताम्र पाषाण युग और काँस्य युग के अवशेष पुरातत्त्वविदों को भारत के विभिन्न भागों में मिलते हैं। वैदिक युग के बाद उत्तर वैदिक युग के पश्चात् ईसा से छठी सदी पूर्व बौद्ध और जैन मत का प्रादुर्भाव हुआ। इसके पश्चात् सिकंदर के भारत पर आक्रमण, मौर्य साम्राज्य के उत्थान, भारत के स्वर्णयुग गुप्त साम्राज्य और दक्षिण भारत में चेर, चोल, चालुक्य, पल्लव तथा पाण्डय राजवंश के शासन के उल्लेख भारतीय इतिहास का अंग हैं। इसी काल में विज्ञान, कला, साहित्य, गणित, खगोल, प्रौद्योगिकी, धर्म, योग, दर्शन, ज्योतिष आदि अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचे। ईसा की पहली सदी से ही मध्य एशिया की ओर से कई आक्रमण भी हुए। (तिलकराज कटारिया 2013)

मध्य काल में 1000ईस्वी के आसपास भारत पर इस्लामी आक्रमणकारियों ने उत्तर भारत के अधिकांश भागों पर कब्जा कर लिया। तुलनात्मक रूप से दक्षिण भारत सुरक्षित रहा और वहाँ विजयनगर जैसा शक्तिशाली साम्राज्य विकसित हुआ। मुगल शासन के समानांतर अनेक यूरोपीय देश भारत से व्यापार करने के लिए आपस में लड़ते-भिड़ते रहे। अंततः अंग्रेज (ब्रिटिश) पुर्तगाल, डच, फ्रेंच के व्यापारियों को भारत में व्यापार करने से रोकने में सफल हुए और उन्होंने लगभग 1850 तक अधिकांश भारत पर शासन जमा लिया। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के असफल हो जाने से अंग्रेजों को 90 वर्ष तक भारत पर और शासन करने का अवसर मिल गया। 15 अगस्त 1947 को भारत लगभग 900 वर्ष की गुलामी से आजाद हुआ। लोकतंत्र की स्थापना हुई और भारत प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर पुनः अपने प्राचीन गौरव को पाने के लिए प्रयासरत हो गया।

सांस्कृतिक आयाम- भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत के कारण ही विश्वगुरु कहलाया। सभ्यता यदि मनुष्य का भौतिक एवं बाहरी विकास है, तो संस्कृति मनुष्य का आध्यात्मिक और भीतरी विकास है। मनुष्य पहले भौतिक विकास करता है, सभ्य बनता है, फिर भीतरी विकास की ओर उन्मुख होता है तथा सुसंस्कृत बनता है। संस्कृति किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है, उसकी रीढ़ होती है; जिस प्रकार बिना रीढ़ के कोई मनुष्य सीधा खड़ा नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना संस्कृति के कोई राष्ट्र गर्व से सर उन्नत करके विश्व में अपना गौरवशाली स्थान नहीं बना सकता। भारत राष्ट्र की रीढ़ और आत्मा उसकी संस्कृति ही तो है।

अविकसित आदिमानव को विकास के विविध सोपानों से पार उतारते हुए भारतीय ऋषि-मुनियों ने सहस्रों वर्षों के अथक

प्रयासों से सोलह संस्कारों से संपन्न सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नत, सभी प्राणियों में श्रेष्ठ प्राणी अर्थात् मनु की संतान मानव या मनुष्य के रूप में विकसित किया।

वैदिक और लौकिक संस्कृति में रचे गए विपुल साहित्य को ही भारतीय संस्कृति का मूलाधार माना जाता है। कृणवंतो विश्वर्माय वसुधैव कुटुंबकम सत्यमेव जयते मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीडनम तेन त्यक्तेन भुंजीथा सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामया असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतगमय बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी जैसे जीवन मूल्यों का दूसरा नाम ही भारतीय संस्कृति है।

प्राचीन भारत में अनेक विश्वविख्यात विश्वविद्यालय विद्यमान थे। इनमें नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय और वल्लभी विश्वविद्यालय प्रमुख हैं। इनमें विभिन्न देशों के हजारों विद्यार्थी विद्यार्जन के लिए आते थे। प्रत्येक गाँव में एक गुरुकुल तो अंग्रेजों के आगमन के समय भी होता था, जिसे अंग्रेजों ने योजनाबद्ध रूप से मैकाले की शिक्षा नीति के अनुसार नष्ट किया।

वैज्ञानिक आयाम भारतवासियों की भाषा, चिंतन, संस्कृति, धार्मिक मान्यताएँ, जीवन, रहन-सहन, खानपान, वेशभूषा सभी वैज्ञानिक आधार पर विकसित हुई हैं। विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान। भारत में चिंतन-मनन की सुदीर्घ परंपरा रही है। यह चिंतन तर्क-वितर्क, विचार-विमर्श, शास्त्रार्थ के आधार पर आगे बढ़ा। सहस्रों वर्षों की तपस्या और साधना से प्राप्त यह विशेष ज्ञान समय के साथ-साथ हमारी जीवन दृष्टि और जीवन शैली बनता चला गया।

भारत-बोध का अनिवार्य अंग है- भारत के गौरवशाली अतीत में निहित वैज्ञानिक उपलब्धियाँ। बिना इन्हें ठीक-ठीक जाने हमारा भारत-बोध अधूरा ही रहेगा। सहस्रों वर्षों में अर्जित भारतीय विज्ञान-सिंधु का वर्णन कुछ पृष्ठों में करना एक असंभव कार्य है। गणित के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियों से आज संपूर्ण विश्व अवगत है। शून्य से लेकर नौ तक अंक, दशमलव पद्धति, अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति आदि विश्व को भारत की ही देन हैं। भारत के प्रमुख गणितज्ञों में बौधायन, कात्यायन, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, आर्यभट्ट, लीलावती, श्रीधर, रामानुजाचार्य आदि शामिल हैं। वैदिक गणित का लोहा तो आज सारी दुनिया मानती है।

खगोल विज्ञान के क्षेत्र में तो भारतीय वैज्ञानिकों की उपलब्धियाँ सचमुच विस्मित करने वाली हैं। खगोल विद्या को वेद का नेत्र कहा गया है। प्राचीन काल से ही खगोल वेदांग का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों में विभिन्न नक्षत्रों, चांद्रमास, सौरमास, मलमास (पुरषोत्तम मास), उत्तरायण, दक्षिणायन, भाचक्र आदि का विस्तृत वर्णन विद्यमान है। यजुर्वेद के 18 वें अध्याय में यह उल्लेख मिलता है कि चंद्रमा सूर्य के प्रकाश से आलोकित होता है। भारतीय काल गणना विश्व में सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं प्राचीन है।

पाँचवीं शताब्दी में आर्यभट्ट के समय में पाटलीपुत्र में खगोलीय वेधशाला थी, जहाँ आर्यभट्ट, भास्कराचार्य तथा अन्य वैज्ञानिकों ने अनेक खगोलीय शोध किए। गुरुत्त्वाकर्षण की खोज न्यूटन से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व भारतीय वैज्ञानिक भास्कराचार्य ने कर ली थी और 'पृथ्वी गोल है' यह भी उन्होंने सिद्ध कर दिया था। भास्कराचार्य के ग्रंथ 'सिद्धांतशिरोमणि' में गुरुत्त्वाकर्षण का उल्लेख मिलता है।

आचार्य कणाद परमाणु विज्ञान के जनक माने जाते हैं। उन्होंने पश्चिमी अणुशास्त्रज्ञ जॉन डाल्टन से सैंकड़ों वर्ष पूर्व बताया कि 'द्रव्य के परमाणु होते हैं।' ऋषि अगस्त्य द्वारा रचित 'अगस्त्य संहिता' तथा अन्य ग्रंथों के आधार पर प्रख्यात भारतीय वैज्ञानिक राव साहब वझे ने विद्युत् के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया एवं अगस्त्य संहिता में विद्युत् द्वारा इलेक्ट्रोप्लेटिंग करने का विवरण भी दिया।

धातु विज्ञान की श्रेष्ठता का प्रमाण है - दिल्ली में कुतुबमीनार के पास स्थित लौह स्तंभ 'विष्णु स्तंभ'। 1600 से अधिक वर्ष बीत जाने पर भी इसमें जंग न लगना विश्व के धातु वैज्ञानिकों के लिए विस्मय का कारण बना हुआ है। रामायण, महाभारत, पुराणों, श्रुति ग्रंथों में सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, सीसा, लोहा, टिन आदि धातुओं का वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं चरक, सुश्रुत, नागार्जुन आदि ने स्वर्ण, रजत, ताम्र, लोहा, अभ्रक, पारा आदि के ओषधीय गुणों को पहचानकर चिकित्सा हेतु भी उनका उपयोग किया।

रसायन शब्द के मूल में रस है। प्राचीन ग्रंथों में रस का एक अर्थ पारद भी है। रसायन विज्ञान में विभिन्न खनिजों का अध्ययन किया जाता था। रसायन विज्ञान के क्षेत्र में नागार्जुन, वांगभट्ट, गोविंदाचार्य, रामचंद्र, सोमदेव आदि अपने समय के प्रसिद्ध रसायन

वैज्ञानिक माने गए हैं। नागार्जुन (300 ईस्वी के लगभग) ने पारे के प्रयोग से तौंबा इत्यादि धातुओं को सोने में बदलने की विधि भी खोज ली थी, ऐसी मान्यता है। 'रसहृदयतंत्र' (श्री गोविंद भगवतपाद द्वारा रचित) के अतिरिक्त रसेंद्रचूड़ामणि, रसप्रकाशसुधाकर, रसार्णव, रससार आदि ग्रंथ भी रसायन विज्ञान के प्रमुख ग्रंथ माने जाते हैं।

महर्षि अगस्त्य द्वारा विश्व में सर्वप्रथम बैटरी का अविष्कार किया गया। अगस्त्य संहिता में इसका उल्लेख मिलता है। समुद्र मंथन से कार्तिक त्रयोदशी को प्रकटे भगवान धन्वंतरी को आयुर्वेद का प्रादुर्भावकर्ता माना जाता है। इन्होंने ही अमृतरस ओषधियों की खोज की थी। महाभारत, ब्रह्मवैवर्तपुरण, हरिवंश पुराण तथा विष्णुपुराण में धन्वंतरी का उल्लेख मिलता है। इनके वंश में उत्पन्न दिवोदास ने 'शल्य चिकित्सा' का विश्व का प्रथम विद्यालय काशी में स्थापित किया, जिसके प्रधानाचार्य सुश्रुत बनाए गए। 'सुश्रुत संहिता' के लेखक आचार्य सुश्रुत (लगभग 600 ईसापूर्व) विश्व के प्रथम शल्य चिकित्सक थे।

आयुर्वेद को कुछ विद्वान ऋग्वेद का उपवेद मानते हैं, तो कुछ अन्य विद्वान अथर्ववेद का उपवेद। आयुर्वेद विज्ञान के आठ अंग हैं और चरक संहिता (लगभग 500 ईसापूर्व), सुश्रुत संहिता तथा कश्यप संहिता इसके प्रमुख ग्रंथ माने जाते हैं। आचार्य चरक को त्वचा चिकित्सक भी कहा जाता है। पतंजलि ऋषि द्वारा 150 ईसापूर्व में रचित 'योगशास्त्र' में कर्करोग (कैंसर) जैसी घातक बीमारी का उपचार बताया गया है।

विज्ञान की अन्य अनेक शाखाओं में समृद्ध ज्ञान की सहस्रों वर्ष की सुदीर्घ परंपरा है। उसका विस्तृत वर्णन इस लेख में संभव नहीं है। पाँचवीं सदी के प्रसिद्ध खगोलशास्त्री वराहमिहिर को ग्रहों के सूक्ष्म अध्ययन, फलित ज्योतिष विज्ञान का जनक माना जाता है। ऋषि भरद्वाज ने राइट बंधुओं से भी 2500 वर्ष पूर्व ही वायुयान की खोज कर ली थी। ऐसी मान्यता है कि 'विमानशास्त्र' नामक ग्रंथ में उल्लेखित अनेक विमानों का तो आधुनिक विमानशास्त्री अभी तक निर्माण भी नहीं कर पाए।

चार पुरुषार्थों में से एक 'काम' को भी भारतीय मेधा ने अपनी प्रतिभा से आलोकित किया। कामशास्त्र पर आधारित ऋषि वात्स्यायन द्वारा रचित 'कामसूत्र' सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है। इसमें 36 अध्याय हैं। 64 कलाओं का सरस वर्णन इस ग्रंथ की अन्यतम विशेषता है। कोक्क पंडित द्वारा रचित 'रतिरहस्य' या 'कोकशास्त्र' भी काफी चर्चित है।

प्राचीन काल में संपूर्ण जीवन, शासन, राजनीति आदि धर्मशास्त्र पर आधारित होती थी। मनु स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, पराशर स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति आदि स्मृति ग्रंथों में लोकनीति, राजनीति, अर्थनीति आदि का धार्मिक दृष्टिकोण से विवेचन एवं स्पष्टीकरण किया गया है।

हिंदू धर्म के अंतर्गत सभी रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, सोलह संस्कार, व्रत-उपवास आदि वैज्ञानिक आधार पर ही निर्धारित किए गए। 1000 वर्ष के अंधकार युग के कारण विज्ञान और तर्क का स्थान अज्ञान और अंधविश्वास ने ले लिया। हिंदू धर्म में प्रचलित मान्यताओं जैसे सिंदूर लगाना, शिखा (चोटी) रखना, जनेऊ धारण करना, तिलक लगाना, कलावा या मौली बाँधना, रुद्राक्ष या तुलसी की माला फेरना, शंख या मंदिर की घंटी बजाना, कुश के आसन पर बैठकर पूजा-पाठ या तपस्या करना, स्वास्तिक एवं ॐ का महत्त्व, सगोत्र विवाह निषेध, ग्रहण काल में भोजन निषेध, यज्ञ का महत्त्व, दक्षिणायन में मृत्यु श्रेयस्कर क्यों नहीं, दक्षिण की ओर पाँव करके क्यों नहीं सोना, नित्य स्नान, सूर्य नमस्कार, पितरों का श्राद्ध, सोलह संस्कार क्यों आदि अनेक मान्यताओं एवं जीवन जीने के नियमों के पीछे भी विज्ञान का आधार है, जिसे आज हम भूल गए हैं। (डॉ. सच्चिदानंद शुक्ल 2013)

अर्थशास्त्र का सर्वाधिक चर्चित ग्रंथ है कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र। 'अर्थशास्त्र' में धर्म, अर्थ, राजनीति, कूटनीति, दंडनीति, राजस्वनीति, युद्धनीति आदि का वर्णन किया गया है। इसे 15 अध्यायों या अधिकरणों में विभाजित किया गया है। इसमें कौटिल्य द्वारा वेदांग, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिष आदि विद्याओं के साथ अनेक प्राचीन अर्थशास्त्रियों के मतों को प्रतिपादित किया गया है। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र पर अन्य उल्लेखनीय ग्रंथ हैं कामंदकीय, नीतिसार, नीतिवाक्यामृत, लघुअर्थनीति आदि। (तिलकराज कटारिया 2013)

भारत में साहित्यशास्त्र के अंतर्गत छह सिद्धांतों - अलंकार सिद्धांत (प्रवर्तक आचार्य दंडी, भामह आदि), रस सिद्धांत (आचार्य विश्वनाथ), रीति सिद्धांत (आचार्य वामन), वक्रोक्ति सिद्धांत (आचार्य कुंतक), ध्वनि सिद्धांत (आचार्य आनंदवर्धन) और औचित्य सिद्धांत (आचार्य क्षेमेंद्र) में काव्य का स्वरूप, काव्य-लक्षण, काव्य-हेतु, काव्यात्मा आदि पर विशद विवेचन मिलता है। आदि आचार्य भरत ने आपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में नाटक का सांगोपांग वर्णन किया है।

और अंत में, प्राचीन भारत का वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक गौरव-गान जिस भाषा में किया गया, उस देवभाषा संस्कृत और उसकी लिपि देवनागरी की वैज्ञानिकता की चर्चा किए बिना यह शोधालेख अधूरा ही रहेगा। विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा संस्कृत में स्वरों और व्यंजनों का वर्गीकरण हो, संधि और समास हो, धातुओं से शब्द-निर्माण प्रक्रिया हो या उपसर्ग-प्रत्यय का प्रयोग हो यानी प्रत्येक चरण विज्ञान पर आधारित है। स्वर और व्यंजनों का ऐसा वैज्ञानिक वर्गीकरण और उच्चारण स्थान के आधार पर तार्किक विभाजन संभवत: विश्व की किसी भी भाषा में उपलब्ध नहीं है।

लगभग एक हजार वर्ष के लंबे समय तक भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। इस अंधकार युग में भारतीय आत्मा, भारतीय आस्था, भारतीय जीवन-दृष्टि, भारतीय वैचारिक उन्मेष, वैज्ञानिक उन्नति मानो कहीं लुप्त हो गई। अंग्रेजों ने अपने 90 वर्ष के अल्प शासन काल में भारत की परंपरागत शिक्षा, प्रशासन और न्याय प्रणाली को विधिवत रूप से कुचल डाला।

15 अगस्त, 1947 को भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता भले ही मिल गई, किंतु वैचारिक, बौद्धिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता आज तक नहीं मिली। इस सबके बावजूद पिछले एक हजार वर्षों में भारत ने स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद जैसे प्रबुद्ध चिंतक नेताजी सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, लाला लाजपत राय, चंद्रशेखर आजाद,वीर सावरकर, उधम सिंह, लोकमान्य तिलक जैसे क्रांतिकारी जगदीश चंद्र बसु, चंद्रशेखर वेंकट रमण, विक्रम साराभाई, डॉ. सतीश धवन, डॉ. होमी जहाँगीर भाभा, डॉ. माधवन नायर, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, डॉ. कस्तूरी रंगन, डॉ. पी.के अयंगर, डॉ. राजारमण जैसे उच्च कोटि के वैज्ञानिक पृथ्वीराज कपूर, दिलीप कुमार, राजेंद्र कुमार, राजकुमार, अमिताभ बच्चन, लता मंगेशकर, मुकेश, मन्ना डे, मोहम्मद रफी, पंडित जसराज, बिस्मिलाह खान, शिवप्रसाद चौरसिया, बिरजू महाराज जैसे कलाकार सुनील गावस्कर, सचिन तेंदुलकर, कपिल देव, महेंद्र सिंह धोनी, विराट कोहली, पी.टी. उषा, विश्वनाथन आनंद, प्रकाश पादुकोण, ध्यानसिंह, दारा सिंह, सतपाल, विजेंद्र कुमार, सानिया मिर्जा, सायना नेहवाल, डायना एडुल्जी, मैरी कॉम, राज्यवर्धन सिंह राठौर जैसे विश्वस्तरीय खिलाड़ी उत्पन्न किए, जो अपने-आप में एक उपलब्धि है। ये थोड़े से नाम तो केवल प्रतीकात्मक ही हैं, ऐसे ही हजारों श्रेष्ठ भारतियों ने विश्व में भारत माता का मस्तक गर्व से उन्नत किया है।

आज अनेक पश्चिमी देशों के विकास में भारतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आज भारत विश्व में सर्वाधिक युवा आबादी वाला देश होने के कारण 'युवाओं का देश' कहलाता है। कोरोना की आपदा में भारत को नरेंद्र मोदी जैसा सशक्त, प्रतिभाशाली, कुशल, योग्य नेता मिला है, जिसने भारतियों को 'आपदा में अवसर' तलाशने के लिए प्रेरित किया है। मोदी जी के प्रभावशाली नेतृत्व में आज भारत अपनी आर्थिक, सांस्कृतिक, कूटनीतिक सामर्थ्य का लोहा मनवा रहा है। आज सारा विश्व भारत की ओर आशाजनक नजरों से देख रहा है। निश्चय ही इक्कीसवीं सदी भारत की होगी तथा सभी भारतवासियों की प्रतिभा और संकल्पशक्ति के परिणामस्वरूप भारत पुन: 'सोने की चिड़िया' एवं 'विश्वगुरु' के गौरवशाली पद को प्राप्त कर लेगा। इसके लिए हमें समस्त देशवासियों में 'भारत-बोध'को जगाना होगा और हम ऐसा करने में अवश्य सफल होंगे। अंत में मुझे कवि गिरिजा कुमार माथुर की ये पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं

हम होंगे कामयाब, हम होंगे कामयाब एक दिन।
हो..हो.. मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास,
हम होंगे कामयाब एक दिन।

संदर्भ :

1. रामचंद्र वर्मा (2007) संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, काशी, उ. प्र., नागरी प्रचारिणी सभा
2. वामन शिवराम आप्टे (1987) संस्कृत-हिंदी कोश, वाराणसी, उ. प्र, चौखंबा विद्याभवन
3. जुगल किशोर शर्मा (2008) पुण्यभूमि भारत, नई दिल्ली, सुरुचि प्रकाशन
4. आचार्य चतुरसेन (2016) वयं रक्षाम:, दिल्ली, राजपाल एंड संस
5. S.A KRISHANAN, Stories from Hindu Mythology, Chapter 1 – Emperor Bharat chooses his successor- (Blog – rgennext.blogspot.com. 2016, June 1)
6. डॉ. हरिश्चंद्र बर्थ्वाल (1999) भारत परिचय, नई दिल्ली, सुरुचि प्रकाशन
7. भारत (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ) (2004) नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग
8. तिलकराज कटारिया (2013) जयतु भारतं, नई दिल्ली, विश्व हिंदी साहित्य परिषद्
9. डॉ. सच्चिदानंद शुक्ल (2013) हिंदू रीति-रिवाजों का शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक अध्ययन, नई दिल्ली, पी. एम. पब्लिकेशंस

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
श्री राम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007
निवास- सुर-सदन, डब्ल्यू० जेड० 1987, रानी बाग, दिल्ली-110034
ईमेल drrvshrma@gmail.com मोबाइल: 09811036140

भोजपुरी बोली में रामकथा

डॉ. राजेश श्रीवास्तव

हिंदी भाषा का वैशिष्ट्य उसकी बोलियों के गौरव में अन्तर्निहित है। सभी बोलियों में अन्तर्सम्बन्ध भी है। बोलियां चूंकि अपनी भौगौलिक एवं क्षेत्रीय स्थिति के अनुसार समय समय पर अपना स्वरुप परिवर्तन कर लेती है और भाषा और बोलियों का व्याकरण निर्धारण भी काल सापेक्ष ही होता है अतः यह सदैव विचारणीय है कि जब हम किसी भी भाषा अथवा बोली की चर्चा करते हैं तो हमारा तात्पर्य उसके बहुप्रयोग से ही होता है। भोजपुरी में रामायण का लिखा जाना भी स्वाभाविक ही था किन्तु मॉरीशस में एक कार्यक्रम में वहां के एक प्रतिष्ठित अधिकारी ने जब कहा कि रामचरितमानस की रचना बाबा तुलसीदास ने भोजपुरी में की तो मेरा चौकना स्वाभाविक था। हम तो सामान्य ज्ञान में मानस को अवधी की रचना ही मानते आये हैं

राम नाम के भक्त जगत से तरि जालन तत्काल।
कुतुबपुर के कहत 'भिखारी', बूढ़ जवान बाल॥
(भिखारी ठाकुर)

प्रभु राघवेंद्र के विराट स्वरूप को सारे विश्व में पहचान मिली है। संसार में किसी भी देव अथवा ईश्वर को इतनी लोकप्रियता नहीं मिली जितनी की राम को। रामकथा के विस्तार के भी अनेक रूप में हुए - मंदिर, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तु, ज्योतिष, उत्सव, पर्व, त्यौहार, जनजाति, रंगमंच, रामलीला, सिनेमा, टेलीविजन और हाँ साहित्य भी। सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस। सभी देशों, भाषाओं, बोलियों के मूर्त और अमूर्त विग्रहों में विराजित कृपानिधान कौशल्यानंदन राम भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं। विश्व की कोई भी भाषा राम साहित्य से अछूती नहीं।

हिंदी भाषा का वैशिष्ट्य उसकी बोलियों के गौरव में अन्तर्निहित है। सभी बोलियों में अन्तर्सम्बन्ध भी है। बोलियां चूंकि अपनी भौगौलिक एवं क्षेत्रीय स्थिति के अनुसार समय समय पर अपना स्वरुप परिवर्तन कर लेती है और भाषा और बोलियों का व्याकरण निर्धारण भी काल सापेक्ष ही होता है अतः यह सदैव विचारणीय है कि जब हम किसी भी भाषा अथवा बोली की चर्चा करते हैं तो हमारा तात्पर्य उसके बहुप्रयोग से ही होता है। भोजपुरी में रामायण का लिखा जाना भी स्वाभाविक ही था किन्तु मॉरीशस में एक कार्यक्रम में वहां के एक प्रतिष्ठित अधिकारी ने जब कहा कि रामचरितमानस की रचना बाबा तुलसीदास ने भोजपुरी में की तो मेरा चौकना स्वाभाविक था। हम तो सामान्य ज्ञान में मानस को अवधी की रचना ही मानते आये हैं (यद्यपि अवधी, भोजपुरी, बुंदेली आदि बोलियों के भाषा वैशिष्ट्य को बहुत कम ही लोग समझते हैं) उस समय मैंने उनकी बात का पुरजोर विरोध किया किन्तु बाद में बहुत विचार करना पड़ा। मानस लोकजीवन का काव्य है। यह हमारी आस्था के साथ जीवन की गहराइयों से भी जुड़ा है। कुछ लोगों का मानना है कि काशी भोजपुर क्षेत्र के अन्तर्गत ही आता है इसलिए भोजपुरी के संदर्भों के पड़ताल के लिए भी मुझे सूत्र देखना पड़े। दशरथजातक में कहा गया है कि दशरथ अयोध्या के नहीं बनारस के राजा थे। इसलिये परम्परा में यह बात किंचित विचारणीय है।

कहीं पढ़ा है कि भोजपुरी में प्रथम महाकाव्य की रचना करने वाले बाबू दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह 'नाथ' ने 'साहित्य

रामायण' की रचना की है। प्रख्यात आलोचक श्री महेंद्र शास्त्री जी ने इसका बहुविध उल्लेख किया है तथा उस पर समीक्षा भी लिखी है। 'साहित्य रामायण' के तीन खण्ड हैं – किष्किंधा और सुंदरकांड (1964 ई.), लंका कांड (1965 ई.) और अयोध्या और अरण्यकांड (1967 ई.)।

उमा राम नर ऊ पहिचनलें। धरम करत जे प्रेम उमतलें।
परम विवेक हृदय जे अनलें। उहे रूप प्रभु राम के जनलें॥
(अरण्यकाण्ड)

भोजपुरी के भारतेन्दु कहे जाने वाले पं महेंद्र मिश्र ने भी लगभग आठ सौ पृष्ठों की वृहद भोजपुरी बोली में 'अपूर्व रामायण' लिखी है। इसके गीत अत्यंत मनोरम हैं।
जनकपुर का एक प्रसंग –

–कइसे के तूड़िहें रामजी शिव के धनुहिया
से अबहीं त छोटे दुनों भइया हो लाल।

* * *

मंड़वा में अइलें रामजी चारों भइया
हाय रे संवरियो लाल।
अंगना भइले उजियार हाय रे संवरियो लाल।

* * *

कहां मिलिहें मोरा अवध बिहारी हो।
खान पान कुछ निको ना लागे तन मन दसा बिसारी हो।

बाबा बुलाकीदास ने भोजपुरी रामायण में अनेक प्रयोग किये हैं जो उनकी भक्तिभावना को प्रदर्शित करते हैं। अविनाश चन्द्र 'विद्यार्थी' का ग्रन्थ 'कौशिकायन' 1973 ई. में प्रकाश में आया। भोजपुरी भाषा के एक और प्रसिद्ध हुए महाकाव्य "कुंजन रामायण" की रचना कुंज बिहारी प्रसाद कुंजन ने २007 में की।

कुंज बिहारी 'कुंजन' के 'सीता के लाल' में निर्वासित सीता के पुत्र लव-कुश के द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा रोकने, राम के सेना से युद्ध, राम से परिचय तथा सीता पाताल प्रवेश की कथा का सुंदर चित्रण है।

लाल लाल मुंह कइले बा ,बा बड़ा जोर खिसिआइल।
चलत पसेना बड़हिस जइसे डूबकी मार नहाइल।।

अच्छा! त सरकारे राम हईं धरती के योद्धा।
रउवे धरती के सपूत रउरे बा गांव अयोध्या ?
रउवे काल्हे से इहंवा किरकिन्ह करववले बानी ?
कतना मूड़ी कटववलीं सब रउरे ह करदानी ?

पद्मश्री विंध्यवासिनी देवी की 'लोकरामायण' में भोजपुरी लोकगीतों का संग्रह है। – कर हो मन राम नाम धन खेती।

भोजपुरी में एक अन्य ग्रन्थ ने प्रसिद्धि पाई वह है – श्री रामरसायन। पं बद्रीनारायण दुबे बक्सरी की इस रामकथा में चार खंड हैं– प्रथम बालकाण्ड, दूसरा अयोध्याकाण्ड, तीसरा अरण्य, किष्किंधा एवं सुंदरकांड तथा चौथा लंका एवं उत्तरकाण्ड। दोहा और छंद के माध्यम से रचित इस रामायण में 1802 छंद, 719 दोहा तथा 100 सोरठा, 331 चौपाई और 99 भजन सम्मिलित हैं।

रामरसायन नाम बा भरल सुधारस धार।
चरित कथा रघुनाथ के सकल सुमंगल सार।।

वरिष्ठ कवि सिपाही पांडेय मनमौजी ने भी एक भोजपुरी रामायण लिखी। 'बनवासी की शक्ति साधना' (रामबचनलाल श्रीवास्तव), रामबृक्ष राय 'विधुर' रचित 'सीता स्वयंवर (1978 ई.), तारकेश्वर मिश्र 'राही' का 'लव कुश' (1982 ई.), विश्वनाथ प्रसाद 'शैदा' रचित 'रावण अंगद संवाद' (1982 ई.), श्री वीरेश्वर तिवारी के प्रबंधकाव्य' लंका विजय '(1986 ई.), व्रतराज दुबे ' विकल 'का' केकई माई '(1992 ई.), हीरा ठाकुर रचित 'अंजनी के लाल' (1997 ई.) और 'केने बाड़ी सीता' (2005 ई.), अमर सिंह रचित प्रबंधकाव्य 'मर्यादा पुरुषोत्तम' (2000 ई.), राम सुरेश पांडेय रचित 'रावन चरित मानस', श्री भगवान मिश्र 'श्रीदास' रचित 'बालकांड रामायण' (2013 ई.), शिवभजन राय 'वैरागी' का 'कवित रामायण' और 'भजन रामायण' (2010ई.), भगवान सिंह 'भास्कर' का 'भास्कर लोक रामायण' (2003 ई.), रामलाल गजपुरी के 'रामचरित दर्शन' (1993 ई.), रामप्रवेश शास्त्री का 'रामभक्त हनुमान', हीरा प्रसाद ठाकुर का 'सबरी' (2000 ई.) और 'रामजी के बिआह', बद्री नारायण दुबे का 'श्री राम चालीसा', गोरखनाथ शर्मा का 'सीताहरण' और व्रतराज दुबे 'विकल' का 'सती उर्मिला' (2016 ई.), व्रतराज दुबे 'विकल' का 'सिरिमद करुणाकर रामायण' (2014 ई.) और युवा कवि सुशांत शर्मा का 'जटायु' (2018 ई.) इसी क्रम में और भी रामकाव्य हैं। इन सभी ग्रंथों के बारे में पृथक पृथक मूल्यांकन

करने तथा रामरस का मधुर पान करने की आवश्यकता है।

सिने अदाकारा अनारा गुप्ता भोजपुरी रामायण नाम से एक फिल्म बनाने का प्रयास कर रही हैं।

राम का चरित्र भोजपुर की लोकसंस्कृति में गहरी पैठ रखता है। कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा सम्पादित भोजपुरी ग्रामगीत में सीता की अग्निपरीक्षा का रोचक वृतांत मिलता है। सीता ने

१- अग्नि हाथ में ली जो ठंडी हो गयी।
२- सूर्य को हाथ में लिया जो अस्त हो गया।
३- सर्प को हाथ में लिया जो फैन फैलाकर बैठ गया।
४- गंगा को हाथ में लिया तो वह सूख गयी।
५- तुलसी को हाथ में लिया तो वह सूख गयी।

भोजपुरी के राष्ट्रगीत 'बटोहिया' के कवि बाबू रघुवीर नारायण की भक्तिपरक रचना 'विजयी नायक रामायण' में राम जी के सुन्दर गीत हैं

लगन कब लगिहें राम सिया से।।
कब कृपालु मोह आपन करिहें, छूटब द्वन्द्व बला से।
प्रतिदिन बिनवों चारुशिला से, विमला चन्द्रकला से।
जन 'रघुवीर' युगल दर्शन हित, जांचल रूपकला से।

भोजपुरी के महाकवि भिखारी ठाकुर रामचरित मानस से बहुत प्रभावित हैं। उनके प्रत्येक नाटक के आरम्भ में मानस की चौपाई राम का पूत लगाकर गाई जाती हैं। विश्वामित्र जी के साथ राम लक्ष्मण जब बक्सर पहुंचे तो मुनि के यज्ञ की रक्षा तथा असुरों के संहार और अहिल्या उद्धार के सुन्दर चित्र उनके काव्य में मिलते हैं-

रामजी-लछुमन तजि के अवध नगरवा हो
डगरवा धइ के ना ,
चलत चलत में पहुंचलन बक्सरवा हो ,
डगरवा धइ के ना।

* * *

दूनों भइया मारी मारी के जरवा ओरववलन हो ,
महातमा भरवा ना,
बोले लागल जय जयकरवा हो, महातमा भरवा ना।

जटायु के चरित पर सुन्दर पंक्ति

रोवत बाड़े जटायु के नैन,
आ रोवत बाड़ी सीता मृगनैनी।
रोवत बा कविताई हमार,
की रोवत बाड़ी गिरा मृद बैनी।
नारीके लाज के राखे बदे,
कटवउलेसि रे गिद्धवा दुनु डैनी।
रोवत बाड़ी जी भारत माई ,
कि का रहनी अरू का बनि गइनी।

कमला प्रसाद मिश्र 'विप्र' ने रामचरित मानस पर 'रामकथा परम्परा में मानस' नामक समीक्षा ग्रन्थ 1978 ई. में लिखा। रामायण केंद्र भोपाल के अनेक शोधमित्र भारतीय बोलियों में रामकथा के तथ्यों का संकलन कर रहे हैं जिसमें नित नवीन ग्रंथों तथा परम्पराओं की सूचनाएं मिल रही हैं। भोजपुरी क्षेत्र की रामलीलाओं की छबि भी निराली है।

भोजपुरी लोकगीतों में रामकथा के अनेक सूत्र मिलते हैं - मंदोदरी सीता से प्रश्न करती है - तुम तो सत्यवती थी तो दूसरे के पति (रावण) के साथ क्यों चली आई? मंदोदरी के साथ उस समय 100 सखियाँ थीं।

* * *

आरे सिया मिलन जब आई मंदोदरी नव सौ सखियन संग ले आई
सुरुज जोति जब सिया जी के देखलसि सुधि बुधि सकल भुलाई
जो तुहु रहलू सत्य के सीआ अनका भतार संग काहे चली आई
आरे हम रहली सत्य के सीता तोहरे राजवा देखे चली आई
आतान वचन जल सुनली मंदोदरी नयन से नीर ढेराई ,
सिया जी से मिलने मंदोदरी आई।

* * *

एक भोजपुरी लोकगीत में राम के विवाह के समय माता कौशल्या प्रसन्न हैं किन्तु कैकई दुखी होकर कहती है - राम और लक्ष्मण का विवाह हो रहा है और मेरा बेटा भरत क्वारा है।

राम से लछमन विअहन चले ले भरत रहले कुँवार हो
जनि हो केकइया रानी लोढ़वा घुमावहु जनि नयन ढरि लोर हो।

अग्निपुराण और पद्मपुराण में रामकथा में मात्र राम और लक्ष्मण का विवाह ही बताया गया है।

भोजपुरी लोकगीतों तथा कथाओं में रामकथा के अनेक सूत्र छिपे हुए हैं जिनपर गहन पड़ताल की आवश्यकता है।

जय राघवेंद्र

❖

निदेशक रामायण केन्द्र, भोपाल
निवास बी-16 लेकपर्ल रेसीडेंस ई-8
अरेरा कालोनी, भोपाल 462039, मो. 7974004023

अपने पुराने घर में आखिरी दिन

अर्चना पैन्यूली

आज इस रात, अपने पुराने घर का मैं आखिरी बार चुंबन लेती हूँ, इसका एक-एक कोना निहारती हूँ। अभी भी काठ की बनी वह कॉटेज, मेरे बचपन का महल, विराजमान है जो पापा ने मेरे लिए पिछवाड़े में बनाई थी। जब मैं खुद माँ बनी और अपने छोटे बच्चों के संग यदा-कदा वहाँ आती थी तो पापा ने मेरे बच्चों के मनोरंजन के लिए कत्सुरा पेड़ के स्तम्भ के सहारे से ऊपर जाती सीढ़ीयाँ, और पेड़ की मोटी शाखाओं पर एक छोटा सा ट्रीहाउस बनाया था। बच्चे वहाँ बैठ कर अपना रोमांच करते, और वहाँ से नीचे घास में कूद भी पड़ते। धीरे-धीरे मेरे बच्चे भी बड़े हो गए, अपनी निजी जिन्दगी में व्यस्त हो गए। नाना-नानी के पास क्या जा पाते, मेरे पास भी बहुत कम आ पाते हैं। सब कुछ परित्यक्त सा, धूल-धूसित लग रहा था। घर का एक बार फिर मुआयना कर चाबियाँ मैंने एजेंट को पकड़ा दी। मुझे लेने के लिए सुधीर, पापा के एक आत्मीय दोस्त का बेटा पहुंच चुका है। उन्हीं के घर मैंने अपना डेरा जमाया हुआ है।

पहले मैं प्रत्येक कमरे से गुजरी। मैंने कोई वस्तु अलग नहीं रखी, सभी अवांछित लगी। एस्टेट एंजेट ने मुझसे एक-दो आइटम को अलग करने को कहा कि वे एंटीक हैं, उम्दा कलाकृति के। अगर बेचूं भी तो इनकी अच्छी कीमत मिल सकती है। मैंने उन पर एक उड़ी-उड़ी नजर डाली, और तटस्थ भाव से मना कर दिया। "जो कुछ मेडसन परिवार (नया खरीददार) रखना चाहे, रखें, बाकी सब रेडक्रॉस को दान कर दिया जाए," मैं बोली। मेरे अलावा कोई और इन चीजों पर दावा करने वाला भी नहीं है।

मम्मी-पापा बहुत ही सुनियोजित तरीके से काम करते थे। यह घर उन्हें हमारे परिवार के आकार के हिसाब से बिलकुल सही लगा था। जब हम पहली बार इस घर को देखने आये थे तो पापा बोले थे, "परफेक्ट! एक कमरा ईशु का, एक हमारा, एक गेस्टरूम, एक स्टडी, एक स्टोररूम...सभी कुछ है।"

मम्मी ने भी हर्ष से गर्दन हिलाई थी। उन्हें विशेषकर बड़ा सा लीविंगरूम और उससे लगा बड़ा-खुला किचन बेहद पसंद आया था। घर का सर्वश्रेष्ठ कमरा मुझे मिला था, सो मैं भी खुश थी। घर के डेक और गार्डन ने भी मुझे आकर्षित किया था। पिछवाड़े में खड़ा लम्बा-तगड़ा, हरी पत्तियों से आच्छादित कत्सूरा का पेड़ और उसकी मजबूत शाखा पर झूलता झूला मुझे रोमांचित कर गया था। सभी प्रसन्न थे अपने नये घर को लेकर।

पहले मैंने मम्मी-पापा को बड़े उत्साह और मनोयोग से सामान खरीद-जुटा कर इस घर को भरते-सजाते हुए देखा, बाद में उन्हें घर खाली करते हुए भी देखा। जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ती गई उनकी आवश्यकताएँ कम होती गई। उनके मित्रों की संख्या भी सिकुड़ती गई। कितनी ही पार्टियां वे अपने घर में आयोजित करते! बाहर भी जाते पार्टियों में। हर वीकेंड्स उनके बिजी रहते थे। जब भी मैं उन्हें फोन करती तो वे कहीं न कहीं व्यस्त। धीरे-धीरे वह सब कम होता गया। मुझसे कहते कि मैं जबसे बड़ी हुई और मेरी अपनी अलग जिन्दगी बनी, उनके मित्रों की संख्या सिकुड़ती गई। मैं एक बहुत बड़ा कारण थी उनका सामाजिक दायरा बनाने के लिए।

मम्मी कहती थी: 'जब ख्वाहिशें थी तो पैसा नहीं था, जब पैसा पास आया तो ख्वाहिशें नहीं रहीं।' मैं उनसे कहती रही कि अपने पर पैसा खर्च करो। दुनिया घूमो। सुदूर, आनन्दप्रद स्थानों का भ्रमण करो। लोकप्रिय स्थानों को देखो। किसी अच्छे

से रिसोर्ट में छुट्टियाँ बिताओ। और हवाई जहाज में इकोनॉमी नहीं, बिजनेस क्लास में सफर करो। मगर मेरे मितव्ययी माता-पिता ताउम्र पैसे बचाने में लगे रहें।

पाँच साल पहले मम्मी की मौत हो गई थी। वे आठ महीनों तक कीमोथेरेपी उपचारों के सहारे बड़ी बहादुरी और प्रेरणादायक तरीके से बीमारी से लड़ी, लेकिन अंततः अग्नाशय के कैंसर के साथ लड़ाई हार गई। मम्मी का जाना हम सभी, विशेष कर पापा के लिए बेहद कष्टप्रद था। उनमें एक वैराग्य सा आ गया। शून्य में कहीं देखते हुए खोये स्वर में बोले: "अपने मूलशहर देहरादून से बंगलौर, फिर मुम्बई महानगरी, फिर अपने देश की राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर डेनमार्क में बसना। इससे भी चौन नहीं मिला तो अपनी एकमात्र औलाद को यहाँ से पढ़ने के लिए यू.एस.ए. भेज दिया... जिन्दगी भर इतनी भटकन, इतनी आपाधापी से क्या नतीजा हुआ - वहीं ढाक के तीन पात।"

पापा ने घर को लगभग खाली कर दिया था। गिने-चुने, सिर्फ बेहद आवश्यक सामान के साथ वे अपनी दिनचर्या बिताने लगे थे। उनकी असली दौलत बैंक और लॉकर में थी, सारे दस्तावेजों पर मेरा नाम चढ़ा था। उस मोर्चे पर अधिक दिक्कत नहीं थी। उनका यह घर, जो मैं एस्टेट एजेंट की मदद से किसी मेडसन परिवार को बेच चुकी थी, खाली करना कष्टदायक था। कमरों, रसोई, गुसलखानों का चक्कर लगाने के बाद मैं अंत में स्टोररूम में घुसी। पांच कार्डबोर्ड के बॉक्स में पापा की निजी वस्तुएं कैद हैं- बीस साल पुरानी, तीस साल पुरानी, पचास या उससे अधिक, मालूम नहीं। बॉक्स बाहर से कुछ पुराने-खुरदरे, धूल-धूसरित लग रहें हैं। उनमें ऐसी चीजें हैं जिनका मतलब मुझसे है भी और नहीं भी है। हर बॉक्स पर एक चिट। पापा ने बहुत सारे काम निपटाए मगर यह काम मेरे लिए छोड़ दिया।

पहले बॉक्स में पापा का हार्डवेयर का सामान - तार, पेंचकस, कीलें, पाईप, रबर, रस्सी, हथौड़ा तथा अन्य उपकरण। घर में जब भी लाईट फिटिंग, पानी फिटिंग, नलसाजी या किसी भी तरह की मरम्मत की जरूरत होती, पापा लग जाते अपने औजारों के साथ। दूसरे बॉक्स में एल्बम, टेप, सीडी, डीवीडी और कैमरा मिला। कैमरा उठा लेती हूँ। इस पुराने डिजाइन के कैमरे से पापा ने मेरी कितनी ही तस्वीरें खींची थी। मैं अपने स्कूल के स्टेज पर डांस कर रही हूँ, पापा भीड़ में अपने लिए जगह बनाते हुए अधखड़े हैं, ताकि सही कोण से मेरी तस्वीरें खिंच सके। मैं घोड़े पर सवार हूँ, पापा दूर से मुस्कुराते हुए मेरी फोटो खींच रहें हैं।

एक एल्बम पलटने लगी हूँ। पुरानी यादें उमड़ पड़ी । भारत, जापान, स्विजरलैंड, पेरिस, लन्दन, आदि की ट्रिप फोटुएं। मेरे जन्मदिवसों की फोटुएं। हमारी उम्र और जीवन के अलग-अलग चरणों को बयाँ करती तस्वीरें...। एक फोटो को देख कर मैं हँस पड़ती हूँ - पापा दूल्हे के वेश में, साथ में मम्मी दुल्हन बनी हुई। दोनों कितने जवान और खूबसूरत लग रहे हैं! फिर अगली तस्वीरों में वे मुझे थामे हुए। मैं उनकी गोदी में क्रमशः बड़ी होती चली गई, फिर लगभग पापा जितनी लंबी हो गई...।

कुछ फोटुओं की तरफ मेरा विशेष ध्यान गया - मुंबई में हमारी बाई माया के साथ हमारी फोटो, कोपनहेगन में हमारी पुरानी पड़ोसन, फ्रेया के साथ हमारी फोटो। ऊं फ्रेया...। वह भी क्या चीज थी! हम डेनमार्क नए-नए आये थे, ब्रोंशॉय इलाके में हमने एक दो मंजिला किराये के घर में अपना बसेरा बसाया था। नीचे की मंजिल में एक अकेली डेनिश महिला रहती थी और ऊपर हम। हमें उस घर में शिफ्ट हुए दो-तीन हफ्ते हो गये थे मगर उस महिला के दर्शन नहीं हुए थे। बस उसकी नेमप्लेट से ही जान पाए थे उसका नाम - फ्रेया पीटरसन। कहीं गई होगी वह तब!

उस दिन मम्मी मुझे स्कूल से घर लेकर आ रही थी। मेरा स्कूल हमारे घर से बहुत दूर था, अच्छा-खासा पैदल चलना पड़ता था और दो बसें बदलनी पड़ती थी। मम्मी को मेरे स्कूल का मार्ग समझने और रटने में भी मुश्किल हुई थी। खैर जैसे ही हम अपने मकान में दाखिल हुए, और ऊपर अपने घर के लिए सीढ़ियाँ चढ़ने लगे, वह अपने घर से बाहर निकली - गोरी, हरी आँखे, सुनहरे बाल, उम्र चालीस के आसपास। हम पहली बार उससे मिल रहे थे। मम्मी ने मुस्कुराते हुए अपना हाथ बढ़ाया - हाथ मिलाने के लिए।

"आप लोग बहुत ही शौर करते हो! लगता है आपकी यह लड़की ऊपर खूब दौड़ती-भागती है। नीचे ठप्प-ठप्प आवाज गूँजती है, मेरा सिर दर्द होने लगता है।" उसकी शिकायतों के पुलिंदों से मम्मी अवाक् रह गई। अपना बढ़ाया उन्होंने हाथ नीचे कर लिया। उनसे विन्रमतापूर्वक कहा: "सॉरी!

क्रमशः ..... पृष्ठ 23 पर

अंतस उजास

वीणा उदय

वह अमावस की रात उसके जीवन में इतनी कालिमा भर गई थी, कि उसे अपने जीवन में सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा दिख रहा था। पुलिस द्वारा पूछे गए अनगिनत सवालों का उसके पास कोई जवाब नहीं था। वे कौन थे, कहाँ से आए थे? कैसे दिखते थे, गाड़ी कौन सी थी, नंबर क्या था? आदि प्रश्नों का उसके पास कोई उत्तर नहीं था। वह तो सिर्फ इतना जानती थी कि चार लोगों ने न सिर्फ उसके शरीर बल्कि उसकी आत्मा तक को बुरी तरह से घायल कर दिया था। वह अँधेरी तूफानी रात उसके सारे सपने, सारी खुशियाँ, उसका सब कुछ सैलाब बनकर अपने साथ बहा ले गई थी। वह दिन रात अपने कमरे के कोने में सहमी सी, दुबकी सी पड़ी रहती थी। घर से बाहर निकलना तो दूर यदि कोई घर भी आ जाए तो वह उससे मुँह चुराती और बात करने से कतराती थी।

कोमल का मन बहुत बेचैन है।वह उड़कर अपनी आर्या के पास पहुँच जाना चाहती है। कल रात आर्या ने फोन करके उसे बताया था, "मम्मा मेरे कॉलेज का एक लड़का संदीप मुझे बहुत परेशान कर रहा है। उसने मुझे कई बार प्रपोज किया, पर मैंने उसे साफ मना कर दिया। उस बद्तमीज ने सबके सामने मेरा हाथ पकड़ लिया और शादी के लिए प्रपोज करने लगा तो मैंने उसकी ऐसी धुनाई की, किबच्चू को जन्म भर याद रहेगा। मॉम मैंने प्रिंसिपल सर को उसकी रिटेन कंप्लेंट भी दे दी है।" यह सब सुनकर कोमल बहुत घबरा गई। उसने आर्या से कहा, "तुम तुरंत वापस आ जाओ और यही मेरे पास रहकर जो भी पढ़ाई करनी है करो।" उसने उसे समझाया "मॉम, आपने मुझे इतना स्ट्रांग बनाया है कि मैं ऐसे दुष्टों का अच्छी तरह सामना कर सकती हूँ। डरने की कोई बात नहीं है। आई एम एबलटू हैंडल एवरीथिंग।"

आर्या की बातें कोमल के उद्विग्न मन को शांत नहीं कर पा रही थीं। वह जानती है कि किस प्रकार से एक छोटी सी दुर्घटना किसी के जीवन को नष्ट कर सकती है और शूल बनकर जीवन भर चुभती रहती है।

उसे याद आ रहा है वह दिन जब 12वीं की परीक्षा उसने 97% अंकों के साथ उत्तीर्ण की थी और साथ-साथ मेडिकल प्रवेश परीक्षा भी। उसी समय उसका बर्थडे भी पड़ा था और उसके मम्मी-पापा ने इसी खुशी में एक बहुत बड़ी पार्टी भी दी थी। कुछ अंक कम रह जाने की वजह से उसे मनपसंद गवर्नमेंट कॉलेज नहीं मिल पाया था। उसने अपने पापा से रिक्वेस्ट की, "पापा मैं एक साल तैयारी करके फिर से मेडिकल प्रवेश परीक्षा देना चाहती हूँ। प्लीज, बेस्ट कोचिंग इंस्टीट्यूट में मेरा एडमिशन करवा दीजिए।" उसके पापा इसके लिए सहमत हो गए। वह जानते थे कि उनकी मेधावी बिटिया अपने लक्ष्य को हासिल करके ही रहेगी। वह जी-जान से अपनी पढ़ाई में जुट गई। उसने फ्रेंड्स, पार्टी, घूमना-फिरना सब कुछ त्याग दिया।दादी-नानी के घर भी मम्मी-पापा के बहुत जिद करने पर ही जाती थी। उसके भैया ने भी आई.आई.टी से इंजीनियरिंग की पढ़ाई की थी। इसी वर्ष उनका एक मल्टीनेशनल कंपनी में बहुत अच्छे पैकेज पर सेलेक्शन हुआ था। वह भी उसे उसके लक्ष्य प्राप्ति के

लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। वह बहुत सुंदर थी, पर आम लड़कियों की तरह बनाव-श्रृंगार और फैशन से कोसों दूर थी। उसकी दुनिया घर से कोचिंग सेंटर तकही सिमट गई थी। रोज समय से जाती थी और समय से वापस आ जाती थी।

उस दिन बारिश हो रही थी औरवह तेजी से अपनी स्कूटी से वापस घर लौट रही थी, तभी अचानक किसी ने धक्का देकर उसकी स्कूटी गिरा दी। इससे पहले वह कुछ समझ पाती, दो लोगों ने उसे खींचकर गाड़ी के अंदर घसीट लिया। गाड़ी में तेज म्यूजिक बज रहा था पीछे सीट पर बैठे दो लड़कों में से एक ने उसके हाथ पकड़ रखे थे और दूसरा उसके कपड़े फाड़ रहा था। वह मदद के लिए पुकार रही थी, पर उसकी चीखें तेज रफ्तार गाड़ी के बंद शीशों के बाहर नहीं जा पा रहीं थीं। वे दरिंदे उसकी इज्जत तार-तार कर रहे थे। कोई उसके मुँह में जबरदस्ती शराब उड़ेल कर मुँह चूमने (लगभग काटने) का प्रयास कर रहा था, तो अगला उसके शरीर को नोच-खसोट रहा था। उन कमीनों ने बारी-बारी से उसके साथ रेप किया। असह्य पीड़ा से बेहाल वह कुछ नहीं समझ पा रही थी। उसे बस इतना ही समझ में आ रहा था कि चार लड़के जानवरों की तरह उसके शरीर को नोच रहे हैं। नशे में धुत वे दरिंदे चलती गाड़ी में उसके साथ दरिंदगी करते रहे और जब जी भर गया तो उसे उसकी स्कूटी के पास निर्वस्त्र ही फेंक गए। बेहोशी की हालत में उसे उनके कार स्टार्ट करके जाने की आवाज सुनाई दी। घनघोर बारिश हो रही थी। वह उसी अवस्था में झाड़ियों में बेहोश पड़ी रही। जब 8:30 बजे तक वह घर नहीं पहुँची तो उसकी मम्मी को चिंता होने लगी। मम्मी- पापा ने बहुत बार उसका फोन ट्राई किया पर फोन स्विच ऑफ आ रहा था। अचानक बूंदा-बांदी शुरू हो गई थी इसलिए उसने फोन और किताबें स्कूटी की डिग्गी में रख दी थीं। वे अच्छी तरह से जानते थे कि उनकी कोमल बिना बताए कहीं नहीं जाती, फिर भी उन्होंने उसकी सारी सहेलियों और रिश्तेदारों को फोन मिला डाला। उसके पापा कोचिंग सेंटर जाकर भी देख आए पर वह बंद था। जब दस बज गया तो घबराहट के मारे उनका बुरा हाल होने लगा। इस घनघोर बारिश में उनकी बच्ची कहाँ फँस गई, इस चिंता से भी परेशान हो वे पुलिस स्टेशन पहुँच गए। वहाँ पुलिस वालों ने उन्हें टरकाने का प्रयास किया, "जवान लड़की है, दोस्तों के साथ कहीं गई होगी। आप परेशान न हो, अपने-आप आ जाएगी।" कोमल के मम्मी-पापा उनके सामने गिड़गिड़ाने लगे है, "मेरी बच्ची ऐसी नहीं है, कृपया उसे ढूँढिए।" मैंने उसकी सभी सहेलियों और रिश्तेदारों के यहाँ पता कर लिया है, वह कहीं नहीं गई है। उसकी माँ उनके सामने फूट-फूट कर रोने लगी। पर वे नही पिघले। जब उसके पापा ने अपने किसी पुलिस ऑफिसर दोस्त से बात की तब कहीं जाकर पुलिस सक्रिय हुई और उसे ढूँढने के लिए निकली। उसके फोन की लोकेशन ट्रेस करके वे लोग रात को एक बजे उसे ढूँढ पाए। उसकी हालत देखकर उसके पापा-मम्मी के होश उड़ गए। मम्मी बेहोश होकर गिर पड़ी। उसकी स्कूटी भी वही झाड़ियों में पड़ी मिल गई। उसे अस्पताल ले जाया गया और अज्ञात लोगों के खिलाफ बलात्कार का मुकदमा लिखवाया गया। उसकी हालत थोड़ी स्थिर होने के बाद पुलिस ने उससे पूछताछ आरंभ की, पर वह तो संज्ञा शून्य हो गई थी।

वह अमावस की रात उसके जीवन में इतनी कालिमा भर गई थी, कि उसे अपने जीवन में सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा दिख रहा था। पुलिस द्वारा पूछे गए अनगिनत सवालों का उसके पास कोई जवाब नहीं था। वे कौन थे, कहाँ से आए थे? कैसे दिखते थे, गाड़ी कौन सी थी, नंबर क्या था? आदि प्रश्नों का उसके पास कोई उत्तर नहीं था। वह तो सिर्फ इतना जानती थी कि चार लोगों ने न सिर्फ उसके शरीर बल्कि उसकी आत्मा तक को बुरी तरह से घायल कर दिया था। वह अँधेरी तूफानी रात उसके सारे सपने, सारी खुशियाँ, उसका सब कुछ सैलाब बनकर अपने साथ बहा ले गई थी। वह दिन रात अपने कमरे के कोने में सहमी सी, दुबकी सी पड़ी रहती थी। घर से बाहर निकलना तो दूर यदि कोई घर भी आ जाए तो वह उससे मुँह चुराती और बात करने से कतराती थी। अपने गंदे होने के अहसास से उसे अपने आप से ही घृणा होने लगी थी। उसे लगता घर में जो भी आया है उसकी आँखें उसे अंदर तक वेध रही हैं। गलती से उसे कभी नींद आ भी जाती तो वह डरावने सपने उसकी नींद छीन लेते। वह डर के मारे चीखने-चिल्लाने लगती। उसकी नींद-भूख-प्यास सब कुछ छिन गया था और उसके साथ-साथ उसके मम्मी-पापा का भी। हँसना तो मानो वह भूल ही गई थी।

भाग्य ने उन पापियों का साथ दिया। वह उनके बारे में कुछ भी नहीं बता पाई। उस स्थान के आस-पास कोई सी.सी.टी.वी. कैमरा भी नही था। अपनी लाड़ली बिटिया के साथ हुई इतनी बड़ी दुर्घटना, उसकी मनोदशा और उसका जीवन बर्बाद करने वाले दुष्टों को सजा न दिलवा पाने के गम में उसके मम्मी-पापा घुल रहे थे। छह महीने बीत जाने के बाद भी जब उसकी मनोदशा में कोई सुधार नहीं हुआ तो वे लोग उसे मनोचिकित्सक के पास ले गए। चिकित्सक के परामर्श और दवाइयों से वह धीरे-धीरे सामान्य जीवन की ओर लौटने लगी। फिर भी पूरी तरह से ठीक होने में उसे दो साल लग गए। पापा ने कला विषयों के साथ जिसमें एक विषय मनोविज्ञान भी था, उसका कॉलेज में एडमिशन करवा दिया। वह ठीक तो हो गई थी पर उसने अकेले कॉलेज जाने से साफ मना कर दिया। उसके पापा या मम्मी में से कोई एक उसे कॉलेज तक छोड़ने और लेने जाता था। साइकॉलजी से पोस्ट ग्रेजुएशन करने के बाद उसने नेट की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और पीएचडी करने के बाद डिग्री कॉलेज में अध्यापन का कार्य प्रारंभ कर दिया। पोस्ट ग्रेजुएशन करते समय आलोक उसका सहपाठी था। आलोक प्रैक्टिकल कक्षा में जबरदस्ती उसकी मदद किया करता था। वह उससे जितनी दूरी बनाकर रखने की कोशिश करती वह उतना ही समीप आने के बहाने ढूँढता। कोमल सामान्यत: किसी से बात नहीं करती थी परंतु आलोक में न जाने क्या बात थी कि वह न चाहते हुए भी उसे झिड़क नहीं पाती थी।

पोस्ट ग्रेजुएशन के बाद आलोक क्लीनिकल साइकोलॉजिस्ट की डिग्री हासिल करके अपनी प्रैक्टिस कर रहा था। वह शहर के प्रतिष्ठित डॉक्टरों में से एक था। इस बीच कई बार उनकी आपस में सामान्य मुलाकात हुई। एक दिन अचानक आलोक ने कोमल से फोन करके कहा, "कोमल मैं तुम्हारे एरिया में ही आया हूँ। क्या मैं तुमसे मिलने के लिए तुम्हारे घर आ सकता हूँ?" कोमल ने स्वीकृति दे दी। आलोक उसके घर आया तो कोमल ने प्रसन्नता पूर्वक उसका स्वागत किया और अपने माता-पिता से मिलवाया। वह आपस में बातचीत कर ही रहे थे कि तभी अचानक आलोक ने कोमल से कहा, "कोमल अगर तुम मुझसे वादा करो कि दोस्ती नहीं तोड़ोगी तो मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।" कोमल के वादा करने पर आलोक बोला, "कोमल, तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो, मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ। मेरे ख्याल से अंकल-आंटी को भी इस रिश्ते से कोई आपत्ति नहीं होगी।" यह सुनकर कोमल बोली, "आलोक आप बहुत अच्छे इंसान हैं। आप जैसे मित्र को पाना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। पर मैंने शादी न करने का प्रण लिया है। मैं मम्मी-पापा के साथ रहकर उनकी सेवा करना चाहती हूँ।" आलोक ने कहा, "उनकी सेवा तो तुम शादी के बाद भी कर सकती हो और तुम्हें ही करनी है, क्योंकि भैया-भाभी तो विदेश में हैं, हम दोनों मिलकर तुम्हारे और अपने मम्मी-पापा की देखभाल करेंगे।" कोमल दृढ़ता से बोली, "मुझे माफ कीजिए आलोक, मैं शादी ही नहीं करना चाहती। हम अच्छे मित्र ही ठीक हैं।"

वह अट्ठाइस साल की हो गई थी। उसके माता-पिता भी उसका घर बसा हुआ देखना चाहते थे, पर उसकी जिद के आगे हार मान जाते थे। आलोक की बात सुनकर उनके मन में उम्मीद की एक किरण जागी कि शायद उनकी बिटिया का घर भी बस जाएगा। उन्होंने आशा भरी नजरों से कोमल की ओर देखा। कोमल ने उनसे कहा, "पापा आप इस विषय में मुझसे कुछ नहीं कहेंगे। मैं अपना निर्णय नहीं बदलूँगी।" यह कहकर उसने उनसे क्षमा माँगी और उठ कर चली गई। "कोमल के जाते ही मानो उसके मम्मी-पापा को अवसर मिल गया। वे आलोक से बोले, "बेटा, हमें यह रिश्ता मंजूर है। आज से यह घर अपना ही समझो। तुम जब चाहो कोमल से मिलने के लिए आते रहना। उसे मनाना अब तुम्हारे हाथ में है। हम तुम्हारे साथ हैं, तुम्हारा पूरा सहयोग करेंगे।" उन्होंने रविवार को उसे अपने माता-पिता के साथ आने का निमंत्रण भी दे डाला जिसे आलोक ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

आलोक अपने माता पिता के साथ रविवार को कोमल के घर पहुँच गया और सब लोग कोमल को मनाने में जुट गए। उनकी इच्छा के आगे कोमल को झुकना ही पड़ा।

आलोक और कोमल का धूमधाम से विवाह हो गया। वह विदा होकर ससुराल आ गई। दिनभर की चहल-पहल के बाद वह घड़ी भी आ गई जिसके बारे में सोच कर उसकी रूह भी

कांप जाती थी। उसे उसके कमरे में सजा-धजा कर बैठा दिया गया। बाहर से हँसी-ठिठोली की आवाजें आ रही थीं। रिश्ते की भाभियों ने आलोक को उसके कमरे के भीतर धकेल दिया। आलोक ने धीरे से दरवाजा बंद कर दिया और उसके पास आकर बिस्तर पर बैठ गए। कोमल का हाथ-हाथों में लेकर बोले, "कोमल, तुम नहीं जानती मैं तुम्हें कब से प्यार करता हूँ। तुम उस दिन कॉलेज में सीढ़ियों पर डिसबैलेंस हो मेरी बाहों में आ गिरी थीं। उसी दिन तुम्हारी हिरनी जैसी भयभीत आँखों ने मेरा दिल चुरा लिया था। तुम्हारे सख्त और रिजर्व नेचर की वजह से मैं तुमसे कभी कुछ कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। आज मेरी बरसों की ख्वाहिश पूरी हो गई है। तुम मेरी जान हो। आई लव यू कोमल।" आलोक ने देखा, "कोमल पसीने से तरबतर हो बुरी तरह से कांप रही है। उसे समझ नहीं आया कि वह क्या करें। उसने उसे गले लगा कर सांत्वना देनी चाही तो कोमल ने उसे दूर हटा दिया। कमरे में ए.सी. चल रहा था, फिर भी उसने फुल स्पीड में फैन चला दिया और कोमल से कहा," मैं बालकनी में खड़ा हो जाता हूँ, तुम साड़ी बदल कर कुछ हल्के कपड़े पहन लो। थोड़ी देर बाद कोमल सामान्य हुई। अपने कपड़े बदले और चुपचाप एक कोने में सिमट कर सो गई। आलोक भी चुपचाप बिस्तर के दूसरे कोने में लेट कर अपनी नवब्याहता को निहारता रहा और उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार का कारण ढूँढता रहा। चार दिन कोमल ससुराल में रही। दिन में वह सामान्य रहती, पर रात होते ही पता नहीं उसे क्या हो जाता था।

चौथे दिन चौथी की रस्म हुई और उसके पिताजी उसे लिवा ले गए। आलोक दोस्तों की हँसी-ठिठोली का झूठी मुस्कुराहट के साथ प्रत्युत्तर दे रहा था, पर उसके मन में तो तूफान उठा हुआ था। उसे उसकी मनचाही मुराद मिल तो गई थी लेकिन मिलकर भी उनका मिलन अधूरा था। इतना तो वह जानता ही था कि कोमल का कहीं किसी से कोई अफेयर नहीं है, पर उसकी बेरुखी और डर का क्या कारण है? वह समझ नहीं पा रहा था। शादी के एक हफ्ते बाद उनका मॉरीशस के लिए हनीमून टिकट बुक था। कोमल अपने मम्मी-पापा से मॉरीशस न जाने के लिए तरह-तरह के बहाने बना रही थी, पर उसकी कोई टालमटोल काम न आई और उसे जाना ही पड़ा। आलोक ने तय कर लिया था कि इस एकांत का पूरा लाभ उठाएगा और कोमल के मन की गांठे खोल कर ही रहेगा। उसे कोमल का सिर्फ तन ही नहीं मन भी चाहिए था, जिसमें एक दूसरे के लिए ढेर सारा प्यार और विश्वास हो। हवाई जहाज में कोमल को आशंकित और भयभीत देख आलोक ने उसका हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, "कोमल हम हसबैंड-वाइफ बाद में हैं, पहले एक अच्छे दोस्त हैं। मैं एक अच्छे दोस्त की तरह तुम्हारा ध्यान रखूँगा और तुम्हारी मर्जी के बिना कुछ भी नहीं होगा। हमें जीवन भर साथ चलना है और हम अपनी इस पहली यात्रा को अपने प्यार और विश्वास से यादगार बनाएँगे।" कोमल कुछ नहीं बोली, पर उसकी आँखों की कोरें भीग गई। उसने आलोक का हाथ अपने हाथों से हटाया नहीं बल्कि कसकर थाम लिया। उसकी हथेलियों की गर्माहट उसे अपनेपन और सुरक्षा का अहसास करवा रही थी। उसकी आँखों की नमी भाँप आलोक चुपचाप उसका हाथ थामें बैठा रहा।

अगली सुबह वे मॉरीशस पहुँच गए। होटल में पहुँच फ्रेश होकर घूमने निकल गए। खूबसूरत वादियों में पहली बार आलोक ने कोमल को यूँ चहकते देखा तो बस देखता ही रह गया। हँसती हुई वह कितनी खूबसूरत लग रही थी। शाम ढले घूम-फिर कर वह होटल वापस आ गए। डिनर करने के बाद वे अपने कमरे में पहुँचे। कोमल नहा-धोकर रेड नाइटी में जब बाहर आई तो बिल्कुल लाल परी सी लग रही थी। आलोक उसे एकटक निहारता ही रह गया। उसका मन चाह रहा था वह उसे अपनी बाहों में समेट ले, पर अपनी भावनाओं पर बमुश्किल नियंत्रण करते हुए बोला, "कोमल तुम बेड पर सो जाओ, मैं इधर सोफे पर सो जाऊँगा।" कोमल कुछ अटकते हुए बोली, "इतना बड़ा बेड है, यही सो जाइए। सोफे पर आराम नहीं मिलेगा।" आलोक को तो मानो मन मांगी मुराद मिल गई हो। यही तो वह चाहता था। वह झट से बिस्तर पर पहुँच गया। उसने कोमल से कहा, "कोमल तुम दिन भर घूम-घूम कर बहुत थक गई हो। क्या एक कप कॉफी पिओगी।" वह कॉफी के बहाने कोमल के मन की गांठे खोलना चाहता था। बिस्तर पर बैठ दोनों दिन भर की बातें

करते रहे। बातें करते-करते कोमल ने अपना सिर आलोक के कांधे पर यूँ टिका दिया मानो वह उसके लिए सबसे सुरक्षित स्थान हो। आलोक ने धीरे-धीरे उसके बालों में उंगलियां फिराते हुए कहा, "कोमल तुम मेरी पत्नी हो, पर मैं तुम्हारी मर्जी के बिना कभी तुमसे पति के अधिकार नहीं मागूँगा। मैं तुमसे प्यार करता हूँ और यही चाहता हूँ कि यह चाँद सा मुखड़ा हरदम खिला हुआ रहे। मैं तुम्हारे डर और नफरत का कारण नहीं बनना चाहता।" यह सुन कोमल की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उसने कहा, "आलोक, मुझे तो पूरी पुरुष जाति से ही नफरत हो गई है। आपको और पापा को देखकर लगता है कि दुनिया में अभी कुछ अच्छे लोग बाकी हैं। मैं तो शादी ही नहीं करना चाहती थी पर आपके प्यार और मम्मी-पापा की वजह से मुझे हाँ करनी पड़ी।" यह कह कर उसने अपने साथ घटित पूरी घटना आलोक को बता दी। उसकी कोमल ने इतना दर्द सहा है, यह जानकर आलोक की रूह कांप गई। उसने निश्चय किया कि वह धीरे-धीरे उसे इस खौफ से बाहर लाएगा। आलोक के प्यार और विश्वास की गर्माहट में पिघल कर कब कोमल उसकी बाहों में समा गई उसे पता ही नहीं चला।

जब वह हनीमून से लौट कर आए तो उनका खिलखिलाता चेहरा देखकर कोमल के मम्मी-पापा को मानो संजीवनी मिल गई हो। अब वे कोमल के भविष्य के बारे में निश्चिंत थे। आलोक के प्यार और सहयोग से वह उस दुर्घटना को लगभग भूल ही गई थी। आज आर्या के फोन ने पुराने जख्मों को फिर से कुरेद दिया था।

आलोक के ऑफिस से आते ही कोमल ने जिद पकड़ ली आर्या को बेंगलुरु से वापस बुलवा लीजिए। हमें उसे कुछ भी नहीं बनाना है। यहीं मेरी आँखों के सामने रहकर जो भी पढ़ना-लिखना है पढ़े। कहीं मेरी आर्या को कुछ हो गया तो? वह समाज, पुलिस, सिस्टम और लड़कों के बारे में अनाप-शनाप बके जा रही थी। बड़ी मुश्किल से आलोक ने उसे शांत किया। चाय पीने के बाद आलोक ने कहा, "चलो कोमल पार्क तक टहल आते हैं।" बड़ी मुश्किल से कोमल तैयार हुई। रास्ते में आलोक ने कोमल से पूछा, "कोमल, तुम डॉक्टर नहीं बन पाई इस बात का तुम्हें आज भी अफसोस है न। तुम्हारे मम्मी-पापा तो तुम्हारे साथ थे, फिर भी तुम्हारे साथ वह दुर्घटना घटित हो गई। यदि वह दुर्घटना न घटी होती तो तुम्हारे मम्मी-पापा डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए तुम्हें बाहर अवश्य भेजते। तुमने तो अपनी आर्या की परवरिश ही इस तरह से की है कि वह हर समस्या का समाधान कर सकती है। वह बुद्धिमान ही नहीं बहादुर भी है। उसके सपनों को अपनी ममता की डोर से मत बाँधो। उससे लड़ना सिखाओ, डरना नहीं।

कोमल को याद आने लगा वह दिन, जब आर्या का जन्म हुआ था। लड़की होने पर वह कितना दुखी हुई थी। वह नहीं चाहती थी इस जालिम दुनिया का जुल्म सहने के लिए एक और लड़की का जन्म हो। उसने बचपन से ही आर्या को कभी फ्रॉक नहीं पहनाई। बड़ी हो जाने पर भी वह उससे सदैव पैंट- शर्ट और जींस ही पहनाती रही और उसके बाल भी लड़कों जैसे ही कटवा दिए थे। वह उसकी पढ़ाई से ज्यादा ध्यान उसकी फिजिकल ट्रेनिंग पर देती थी। फलस्वरूप खूबसूरत आर्या एक दबंग गर्ल के रूप में मशहूर थी। अर्जुन का जन्म होने पर कोमल बहुत प्रसन्न हुई थी। ऐसा नही कि उसे लड़कियों से नफरत थी। आर्या उसकी लाड़ली बिटिया थी। आर्या को डॉक्टर बनने का सपना भी उसी ने दिखाया था। आलोक के समझाने पर उसके मन की आँखें खुल गई। उसे समझ आ गया कि लड़कियों की सुरक्षा उन्हें घर की चार दीवारी में कैद करके नहीं की जा सकती। बेटियों को उड़ने के लिए खुला आसमान और मजबूत पंख देने चाहिए। उसने अपनी आर्या को न सिर्फ शिक्षित बल्कि सशक्त भी बनाया है। उसने निश्चय किया कि वह अपनी आर्या के पंख नहीं कुतरेगी बल्कि उन्हें ऊँची उड़ान भरने की शक्ति प्रदान करेगी।

❖

एल आई जी 143ए, महाऋषि दयानंद विहार
फेस-2, कानपुर, उत्तर प्रदेश 208026
मो. 9936452464, ईमेल: veena7singh@gmail.com

..... पृष्ठ 17 का शेष (अपने पुराने घर में आखिरी दिन)

हम ख्याल रखेंगे।" मुझे उसी के सम्मुख चेतावनी दी: "ईशु, देखो, आंटी क्या कह रही हैं ! आंटी को डिस्टर्ब होता है। आहिस्ते से घर में चला करो। उछल-कूद, शैतानी मत किया करो।"

मैं असमंजस में चुपचाप गर्दन हिलाती रही। मम्मी उससे स्नेहपूर्वक बोली, "आपसे मिल कर बहुत अच्छा लगा!"

"मुझे भी!" वह बोली, थोड़ी शर्मिंदा भी हुई। "दरअसल घर लकड़ी का है और बहुत पुराना है, इसलिए जरा सी आहट से गूँजता है। थोड़ा ख्याल रखियेगा।"

"अवश्य!" मम्मी बोली।

फ्रेया के साथ हमारी तस्वीरों ने मुझे उस घर की बहुत सारी यादें दिला दी। बाद में वह हमें बहुत पसंद करने लगी थी। उसने मम्मी को बताया कि वह नि:सन्तान तलाकशुदा है। शहर में उसके माता पिता और छोटा भाई रहता था, जो कभीकभार ही उसके पास आते थे। उनके आलावा हमने किसी को भी उसके पास आते नहीं देखा।

जब भी कम्यून (नगरपालिका) या कहीं से हमारे कोई दस्तावेज आता मम्मी उसके पास जाती, क्योंकि सारे दस्तावेज डेनिश में लिखे होते। वह उन्हें अंगरेजी में उनका अर्थ बताती। एक दस्तावेज से मम्मी को थोड़ी हैरानी हुई थी। वह दस्तावेज कोपनहेगन कम्यून से मम्मी के नाम पर था, चार हजार क्रोनर के एक चौक के साथ। यह तो मम्मी समझ गई कि उनके नाम पर डेनिश सरकार से पैसे आये हैं, मगर क्यों आये हैं।

मम्मी वह कागजात लेकर फ्रेया के पास गई। वह बोली, "यह बौर्ने-पेंगे (चाइल्ड अलाउंस) हैं।"

"मेरे नाम पर क्यों हैं? यहाँ मेरे पति नौकरी करते हैं, टैक्स भरते हैं। मैं तो अभी हाउसवाइफ ही हूँ।"

वह मुस्कुराते हुए बोली, "तुम माँ हो न ! यहाँ की सरकार माताओं पर ही विश्वास करती है।"

मम्मी मुझे चूमते हुए बोली, "यहाँ की सरकार ने मुझे माँ होने का और भी गौरव प्रदान किया।"

फ्रेया और हमारा संयुक्त गार्डन था। हम अक्टूबर में वहाँ शिफ्ट हुए थे, नवम्बर से ही बर्फ गिरनी शुरू हो गई थी। छह महीने तक गार्डन ठंडा, जमा पड़ा रहा। मगर मई-जून आने तक गार्डन लहरा गया, घास भी बहुत लम्बी हो गई थी। मम्मी और फ्रेया के बीच तय हुआ कि आने वाले रविवार को सुबह दस बजे वह दोनों मिल कर एक साथ गार्डन की घास काटेंगे। मम्मी को नाश्ता बनाने में देरी हो गई। वे पापा से बोली: "डेनिश लोग समय के बड़े पाबन्द होते हैं। आप घास काटने चले जाओ, मैं अभी आती हूँ।" पापा ने किचन की खिड़की से नीचे गार्डन में झांका, बोले, "मैं कैसे जाऊं? देखो तो सही... ।"

मम्मी और मैंने भी खिड़की से नीचे झाँका। नीचे फ्रेया सिर्फ एक कसी चड्डी पहने गार्डन की घास काटने में व्यस्त थी। तेज धूप होने की वजह से आक्रान्त होकर उसने अपने सारे कपड़े, यहाँ तक कि ब्रा भी उतार दी थी। हम भौचक्के हो गये। मम्मी तो मुझे तोलिया लपेटे भी गुसलखाने से बाहर नहीं निकलने देती थी। सख्त हिदायत: "अब तू बड़ी हो गई है। सारे कपड़े पहन कर बाथरूम से बाहर निकला कर।" और यहाँ फ्रेया पूरी निवस्त्र... ।

पापा क्या मम्मी भी जा न सकी गार्डन में घास काटने के लिए। हमें बहुत खला कि फ्रेया अकेले घास काट रही है, मगर हम शर्म से घिर गए थे। पापा मम्मी से बोले, "इस बार अगर वह घास काट रही है तो अगली बार हम काटेंगे।" उसके बाद भी गर्मियों भर हमें फ्रेया अपने डेक में कई बार निवस्त्र लेटी, धूप तापते दिखी। हमें हमारे भारतीय मित्रों, जो डेनमार्क में एक अर्से से रह रहें थे, ने बताया कि गर्मी इनसे बर्दास्त नहीं होती। जाड़ों में धूप बिलकुल निकलती नहीं, उसकी भरपाई ये गार्मियों में देर तक खिली धूप से करते हैं। नग्नता को खराब नहीं समझते, सहज, स्वाभाविक मानते हैं।

खैर सवा साल बाद हमने वह घर बदल लिया। मेरे स्कूल के नजदीक एक पैनसम नामक रेजीडेंट कॉम्प्लेक्स में किराए पर एक अपार्टमेन्ट ले लिया। इंडियन एम्बेसी के तीन भारतीय परिवार भी उस कॉम्प्लेक्स में रहते थे। फ्रेया को जब मम्मी ने बताया कि हम वहाँ से जा रहे हैं, उसे बहुत दु:ख हुआ, कहने लगी, " मैं नहीं चाहती कि आप लोग यहाँ से जाओ। आप लोग बहुत अच्छे हो।"

पैनसम कॉम्प्लेक्स में हम सभी, विशेषकर मम्मी बहुत खुश थी। मेरा स्कूल पास था, चहल-पहल वाला शहरी इलाका था, भारतीय परिवारों का सान्निध्य। उस अपार्टमेन्ट में हम पूरे पाँच साल रहें, फिर हमने हरलेव में अपना खुद का घर खरीद लिया।

स्टोररूम में रखी तस्वीरें मुझे स्मृतियों के गह्वर में ले जा रही हैं। आह... फालेड पार्कन (पार्क) में होली खेलती

हमारी तस्वीरें..। मम्मी बहुत जीवंत और खुशमिजाज व्यक्ति थी। डेनमार्क में वह क्रिसमस के आलावा हमारे भारतीय त्यौहार – दीवाली, होली भी बड़े जोश-खरोश से मनाती थी, और अपने उत्साह में कईयों को सम्मिलित कर लेती। होली पर गुझिया बनाने के लिए वह देशी दुकानों में खोए, मावे, चिरौंजी, जायफल इत्यादि सामाग्रियों को ढूँढती। उनका गुझिया और मटरी बनाने का अभियान बड़े पैमाने पर चलता। कभी-कभी उनकी सखी – अनुराधा आंटी भी उनका साथ देने के लिए घर आ जाती। मैं अनुराधा आंटी की बेटी, मोनिका के साथ खेलती और हमारी माताएं सूजी-मावा की गर्म-गर्म गुझिया तेल से उतारती। घर भीनी-भीनी खुशबू से महक जाता। सबसे पहले भगवान को भोग लगता, फिर हमें ग्रहण करने को मिलती। खुशी क्या होती है, मुझ नादान को महसूस हुआ। हम अबीर गुलाल, पिचकारियाँ, मिठाई और अन्य व्यंजनों के साथ किसी न किसी बाग में इकट्ठा होते और पूरी मौज-मस्ती के साथ होली का आनन्द लेते। पहले सूखी होली खेलते, फिर पानी पर उतर आते। मम्मी सभी को गुझिया बांटते हुए कहती: "होली की शान – गुझिया।" मगर धीरे-धीरे मम्मी-पापा का सामूहिक तौर पर होली मनाना कम होता गया, और फिर बंद ही हो गया।

मैंने तीनों एल्बम एक तरफ रख दी, अपने साथ ले जाने के लिए।

यकायक रैक पर करीने से रखे एक बॉक्स पर मेरी नजर पड़ी। चिट लगी है – ईशा' चाइल्डहुड। मैं उत्सुकता से भर गई। बॉक्स खोला – अंदर मेरे बचपन की कुछ पुरानी पोशाकें, मेरा प्यारा टेडीबियर, स्कूलबैग, तीसरी-चौथी कक्षा की मेरी कॉपियां जिनपर मेरी बचपन की लिखावट। मेरा बचपन उन्होंने संजो कर रखा हुआ है। मैं कुछ और कागजातों को टटोलने लगी।

एक लाल डायरी मेरे हाथ में आई, पेज पलटने लगी। अरे यह मैंने ग्यारह वर्ष की उम्र में अपने कमरे में अकेले बैठ कर लिखनी शुरू की थी। मेरे लिए भारत से डेनमार्क आकर एक इंटरनेशनल स्कूल में विभिन्न राष्ट्रीयता वाले बच्चों के साथ पढ़ना और उनके साथ मेल-मिलाप करना आसान नहीं था। मैं आई भी सत्र शुरू होने के तीन महीने बाद। मेरा कोई मित्र न बन सका। मैं अलग-थलग सी बैठी रहती। अपना टिफिन अकेले बैठ कर खाती। ब्रेक के समय खेल के मैदान में अकेली ही मंडराती। यहाँ शिक्षण शैली, पाठ्यक्रम, टीचर्स का रवैया सब कुछ एकदम भिन्न था। मेरे ग्रेड्स भी अच्छे नहीं आ रहें थे। पढ़ाई में मैं फिसड्डी हो रही थी। एक बार गणित के टीचर, मिस्टर लोडर ने मुझसे एक सवाल पूछा, मैं जवाब न दे सकी। उन्होंने सभी के सामने मुझे फटकार दिया, और क्लास से बाहर निकल जाने का आदेश दिया। क्लास की सबसे होशियार लड़की, सोफिया ने इसका प्रतिवाद भी किया। मैंने डायरी में स्कैच खींचा हुआ था – मिस्टर लोडर क्रोधित मुखमुद्रा में, मुझे क्लास से बाहर निकलने का संकेत करते हुए, मैं गर्दन झुकाए मायूस सी, क्लास के बाकी बच्चे हँस रहें।

मम्मी को भी शुरू में डेनमार्क रास नहीं आया था। वह भारत अपनी परमानेंट नौकरी से त्यागपत्र देकर आई थी। वह अपनी नौकरी, अपने भारतीय परिवेश को मिस करती थी। हमारे घर की बातूनी, रौनकदार माया बाई भी उन्हें खूब याद आती थी। यहाँ मम्मी को माया जैसी कोई बाई मिल ही नहीं सकती थी, उन्हें सारा काम खुद करना पड़ता था। माया को अक्सर याद कर वह उदास स्वर में पापा और मुझसे कहती, "मुंबई में जब माया रोज घर में काम करने आती थी तो घर में एक बहार आ जाती थी। यहाँ कोई भी हमारे घर नहीं फटकता। यहाँ बहुत अकेलापन है, बोझिलता है।" कभी-कभी मम्मी झल्ला जाती और पापा से लड़ पड़ती कि हम अपना मुल्क छोड़ कर क्यों यहाँ आ गये हैं। मैं पहले से ही कम बोलने वाली, गम्भीर लड़की इस अनजाने देश में आकर और अन्तर्मुखी हो गई। डरी और सहमी-सहमी सी रहती। मम्मी, जो खुद ही अवसाद से घिरी थी, उन्हें अपनी परेशानी क्या बताती। मैंने डायरी लिखनी शुरू करदी थी।

उस दिन मैं स्कूल में थी, और मम्मी घर में।

मम्मी घर साफ कर रही थी...। हालांकि मैं अपनी डायरी छुपा कर रखती थी मगर मेरा कमरा साफ करते हुए उन्हें वह लाल डायरी हाथ लग गई। जब मैं स्कूल से घर आई, उन्होंने मुझे रोज की तरह खाना परसा, फिर मुझसे पूछा कि क्या मैं अपने स्कूल में खुश नहीं हूँ। मेरी रुलाई फूट गई। "क्या आपने मेरी डायरी पढ़ ली?" मम्मी मुझे अपनी बांहों में भरते हुए बोली, "ईशु, तेरी डायरी मैं हूँ। जो कुछ परेशानी है मुझे बता, मुझसे डिसकस कर।"

मम्मी ने यह नियम बनाया कि आज से मैं अपने कमरे में अकेले बैठ कर नहीं पढ़ूंगी। लीविंगरूम में मम्मी-पापा के

सामने बैठ कर पढ़ूंगी। छोटे-बड़े, जो कुछ भी मेरे कार्यकलाप होंगे, उनकी नजरों के सामने होंगे। मम्मी डायरी लेकर मेरे स्कूल भी पहुंची। मेरे सारे अध्यापकों से व्यक्तिगत तौर पर बात की। कहा कि मैं स्कूल में बिलकुल भी खुश नहीं हूँ। मिस्टर लोडर से कहा कि उनकी इस पड़ताड़ना ने मुझ पर किस हद तक मनोवैज्ञानिक रूप में प्रभावित किया है। वे सकपका गए, मम्मी से माफी माँगी। मेरे सभी अध्यापकों ने मम्मी को आश्वासन दिया कि वे मेरी स्कूल में एडजस्टमेंट होने में मदद करेंगे। जो छात्राएं मेरे जैसे स्वभाव की हैं, उनकी तरफ वे मुझे धकेलेंगे ताकि मेरी उनसे दोस्ती हो सके।

मम्मी ने मुझे बाद में बताया कि वह मेरी डायरी पढ़ कर बहुत रोई थी, साथ ही उन्हें मेरी रचनात्मकता का भी पता चला। उन्हें महसूस हुआ कि मुझमें लिखने की क्षमता है, मैं बहुत अच्छा लिख सकती हूँ। घर में मम्मी मुझे पढ़ाने लगी। तीन महीने में ही मेरे ग्रेड्स सभी विषयों में में 'डी' और 'ई' से 'ए' और 'ए-स्टार' हो गए। स्कूल के सारे टीचर्स चकित। मेरे सहपाठी भी मुझे सराहने लगे। मैं क्लास की जीनियस कहलाने लगी, सभी की नजरों में मेरा रूतबा बढ़ता गया।

मुझे सफलता का चस्का लग चुका था। मैं थमी नहीं। पढ़ना-लिखना मेरा शौक बन चुका था। पांच साल बाद आईजीएससी बोर्ड की परीक्षाओं के बाद मैंने जब वह स्कूल छोड़ा तो अध्यापक बोले: मैं एक चूहे के रूप में उस स्कूल में आई थी और एक शेर के रूप में वह स्कूल छोड़ रही हूँ।

मैं सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ती गई और मुझे प्रिंसटन विश्वविद्यालय में स्कोलरशिप मिली। मैं डेनमार्क से अमेरिका चली गई। डेनमार्क की तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका बहुसंख्यक और बहुसांस्कृतिक था, इसलिए मेरे लिए अपनी भीड़ को ढूंढना आसान था। और भाषा कोई बाधा नहीं थी। डेनमार्क में जहाँ मेरे सीमित मित्र थे, अमेरिका में अपने विश्वविद्यालय में मेरे कई दोस्त बन गए। मुझे अमेरिका रास आ गया। जिन्दगी में माता-पिता महत्वपूर्ण हैं मगर दोस्त होना भी बहुत महत्वपूर्ण है।

जिन्दगी का सफर आगे बढ़ता रहा। पापा तो भारत से ही डेनमार्क में लगी-लगाई नौकरी पर आये थे, अगर किसी ने इस देश में अपने को आबाद करने के लिए संघर्ष किया तो वह मम्मी थी। मम्मी ने यहाँ अपने लिए नौकरी खोजी, ड्राईविंग सीखी, डेनिश भाषा सीखी और डेनिश नागरिकता भी हासिल की। हम तीनों में बस पापा ही अपने इन्डियन पासपोर्ट के साथ चिपके रहें, उन्होंने उसे नहीं बदला। डेनमार्क में रहते हुए भी भारत उनके दिल में बसा रहा - इंडियन खबरें सुनना, इंडियन अखबार पढ़ना...। वहां की राजनीति और अर्थव्यवस्था की जानकारी रखना।''

''कमरे तो आपने बहुत जल्दी निपटा दिए, स्टोररूम में फंस गई हो,'' स्टेट एजेंट ने मेरे पास आकर उलाहना दी।

अतीत छुपा है यहाँ हमारा। यहाँ पड़ी वस्तुएं मुझे याद दिला रही है कि हम कौन हैं, हम कहाँ से आये और हमने क्या हासिल किया है। अड़तीस वर्ष पूर्व 1982 में मेरे साइंटिस्ट पापा, मुंबई से डेनमार्क आये थे, डेनमार्क की नेशनल लेबोरेटरी में सीनीयर एनर्जी प्लानर का कार्यभार संभालने। उस वक्त मैं दस साल की थी। आये तो वे सिर्फ तीन साल के लिए थे, मगर कभी वापस न जा पाए। मम्मी-पापा यह भी कहते थे कि मैं एक बहुत बड़ा कारण थी कि वे वापस न जा पाए। पहला मेरा आईजीएससी बोर्ड, फिर मेरा आईबी बोर्ड, फिर मैं पढ़ने के लिए अमेरिका चली गई। वे सोचते थे कि अमेरिका भारत की अपेक्षा डेनमार्क से अधिक नजदीक है, फिर डेनिश करेंशी में मेरी महंगी पढ़ाई का खर्चा उठाना उनके लिए अधिक सरल था। मम्मी-पापा की सारी बातें मुझ पर अटक जाती थी।

बहरहाल वे डेनमार्क से कभी वापस भारत न जा पाए और मैं कभी अमेरिका से डेनमार्क वापस न जा पाई। वे अपने मातापिता को भारत में छोड़कर डेनमार्क बस गए थे और मैं अपने मातापिता को डेनमार्क में अकेला छोड़ कर अमेरिका बस गई थी। मेरे प्रति उनके प्रेम ने उन्हें डेनमार्क में रोके रखा, और मुझे नैथन के प्रेम ने अमेरिका में जकड़ लिया। हम प्रिंसटन यूनीवर्सिटी में एक ही वर्ष में थे। वह फाइनेंस में ग्रेजुएशन कर रहा था, और मैं मार्केटिंग में। मुलाकात तो हमारी प्रथम वर्ष में ही हो गई थी, मगर चौथे वर्ष तक हमें लगने लगा था कि हम एक दूसरे के लिए बने हैं। एक दूसरे के बगैर नहीं जी पायेंगे। ऐसा नहीं था कि मम्मी-पापा ने मेरे मुख से उसका नाम न सुना हो, कई बार हमारी बातचीत में मैंने नैथन का जिक्र किया था। जब वे मेरे छात्र-जीवन के दौरान मेरे पास दो बार न्यूजर्सी आये तो उससे उनका मिलना भी हुआ था।

पढ़ाई पूरी करके मैंने एक एडवर्टाइजिंग कम्पनी में इन्टर्नशिप शुरू कर दी थी। नैथन की तो एक फाइनेंस कम्पनी में

अच्छी नौकरी लग गई थी। एक दिन फोन पर बात करते हुए मैंने मम्मी-पापा को कहा, "मुझे आप दोनों से कुछ कहना है...।"

"तेरा परमानेंट जॉब लग गया?" मम्मी बोली।

"आप लोगों की सारी बातें पढ़ाई या जॉब को लेकर होती है... ।"

चुप्पी।

"मुझे आप लोगों से यह कहना है कि मैं और नैथन करीब आ रहें हैं। हम एक दूसरे को लेकर सीरियस हो चुके हैं।"

"अरे, हमारे पास अपनी ही गढ़वाली बिरादरी से तेरे लिए अमेरिका से रिश्ते आ रहें हैं। कहाँ तू एक गोरे, क्रिश्चियन अमेरिकन लड़के के चक्कर में फँस रही है? ये लोग विवाह की प्रतिबद्धता नहीं समझते।"

"मम्मी, मैं उससे चार सालों से डेटिंग कर रही हूँ। ऐसे ही मैं उसे लेकर सीरियस नहीं हुई हूँ। वह एक जेंटलमैन है।"

"मगर हमारे टाइप का नहीं है," मम्मी बोली।

"हमारे कल्चर में डेटिंग नहीं होती," पापा बोले।

"मैंने तुझे वहाँ पढ़ने के लिए भेजा था, बसने के लिए नहीं। वापस आ यहाँ," पापा गुर्राए।

आसान नहीं था मम्मी-पापा के लिए नैथन को दामाद के रूप में स्वीकार करना। खैर मुझे और नैथन को खुशहाल दाम्पत्य बिताते हुए देख उनके कई पूर्वाग्रह टूटे। इंसान अगर बुनियादी रूप में अच्छा हो तो जात-पांत, रंगभेद और नस्लभेद सबसे ऊबर जाता है। जीवन के विविध आयामों का संयुक्त प्रभाव उसके अलग-अलग प्रभावों के जोड़ से अलग होता है। महान दार्शनिक अरस्तू ने सही कहा: संपूर्ण इसके घटक भागों के योग से अधिक है। एक बार मम्मी यहाँ तक बोली कि मेरे और नैथन के बीच अधिक समझदारी और आत्मीयता है, पापा और उनके बीच से। मेरे तीनों बच्चों के पैदा होने पर मम्मी मेरे पास न्यूजर्सी आई। मैंने मम्मी-पापा का अमेरिका में वीजा स्पोंसर के लिए प्रयास भी किया। मैं चाहती थी कि वे अमेरिका आकर मेरे पास बस जाए। कुछ उनकी गैरदिलचस्पी, कुछ अमेरिकन सरकार के भारतीयों को लेकर सख्त इमीग्रेशन नियम, यह सम्भव नहीं हो पाया। फिर वे डेनमार्क में सहूलियत भी महसूस करने लगे थे।

एक बॉक्स में पापा की किताबों के साथ उनकी मेडिकल फाइल भी मिली। ब्लड रिपोर्ट्स, एक्सरे और अल्ट्रासाउंड रिपोर्ट्स...। ट्यूबरक्लोसिस ! पापा को टीबी कब हुई? तारीख बता रही थी चौबीस साल पहले। मैं यूनीवर्सिटी के अंतिम वर्ष में थी तब। मम्मी-पापा ने इसकी मुझे जरा भी भनक नहीं पड़ने दी। पापा के स्वास्थ्य के बारे में सोचने लगती हूँ। उन्होंने चौरासी वर्षों का स्वस्थ और सक्रिय जीवन जिया। इस उम्र में भी घर में अकेले रहते थे। मुझ पर उन्होंने एक बहुत बड़ी अनुकम्पा की। अपने जाने का स्थान बहुत अच्छा चुना, वर्ना 6184 किमी दूरी से मेरे लिए संभव नहीं होता एकदम से उनके पास पहुँचना। सच कहूँ तो मम्मी की बीमारी और उपचार के दौरान मेरे लिए बहुत मुश्किल हो गया था अमेरिका और डेनमार्क के चक्कर लगाना। चाहते हुए भी मैं उनकी उतनी सेवा नहीं कर सकी, जितनी करना चाहती थी। पापा ने सब कुछ बहुत आसान कर दिया था। मेरे पास अमेरिका आये उन्हें पन्द्रह दिन हुए थे। भले-चंगे थे। मगर एक रात वे सोये और सुबह उठे ही नहीं। पापा की मृत्यु के बाद के ये दो-तीन महीने कठिन और अत्यधिक व्यस्त रहें। पापा के जाने की टीस तो थी ही, ढेर सारे कामों की सूची भी लम्बी थी।

चार बॉक्सों को खंगालने के बाद मैंने पांचवा और अंतिम बॉक्स खोला। यह बॉक्स कागजात और पुलिंदो की फाइल, फोल्डर तथा अन्य दस्तावेजों से भरा है। मैंने एक फोल्डर निकाला, इसमें रखी एक फाइल जमीन पर गिर गई। मैंने फाइल उठाई और खोली। इसकी जैकेट में दो प्लास्टिक कार्ड मिले, जिसमें प्लास्टिक के पाउच में सोने के सिक्के चिपके थे। कार्ड पर लिखा था - इंडसइंड बैंक। सुवर्णा मुद्रा। एक शुद्ध सोने का निवेश। मैं बुरी तरह चौंक गई... विश्वास ही नहीं हुआ कि मैं क्या देख रही हूँ। तो ये हैं वे सिक्के...। एक बार भारत यात्रा के दौरान पापा ने इंडसइंड बैंक के दो स्वर्ण सिक्के खरीदे थे। वैसे वे सिक्के खरीदने में बहुत उत्सुक नहीं थे। बैंक को अपनी चीजें बेचनी होती हैं। बैंक के युवा कर्मचारी के आग्रह पर, उसका मन रखने के लिए उन्होंने सिक्के खरीद लिए। पापा भूल गये कि सिक्के खरीद कर उन्होंने कहाँ रख दिए। इन्हें खोजने में उन्होंने रातदिन एक कर दिया था। एक बार नहीं, कई बार इन्हें खोजा गया, अलग-अलग प्रकार से। मैं जब छुट्टियों में घर आई तो मैंने भी अपनी तरफ से खोजा, कहीं नहीं मिले

सिक्के। हार कर मान लिया गया कि पापा ने भारत में ही या फिर भारत से डेनमार्क के सफर में इन्हें खो दिया। उन्हें बीस ग्राम के सोने के उन सिक्कों के गुम हो जाने का उतना दुःख नहीं हुआ था जितना कि अपनी लापवाही का। कोफ्त में कहते, "मैं बहुत भुलक्कड़ हो गया हूँ।" मम्मी से कहते, "सौम्या, तुम्हें ही पकड़ा देता संभालने के लिए।"

आज लगभग बीस साल उपरान्त वे सिक्के मेरे हाथ में हैं - टैम्पर प्रूफ पैकिंग में बिलकुल सही-सलामत। पापा ने गलती से वह फाइल एक फोल्डर में डाल दी थी, बाद में वह फोल्डर कार्डबोर्ड के इस बॉक्स में बंद हो गया। रो पड़ी हूँ मैं उन सिक्कों को अपने से चिपका कर...। काश पापा जिंदा होते तो कितने खुश होते इन्हें देख कर। भावुक हो कर मैं बाहर निकल कर एस्टेट एजेंट को वे सिक्के दिखाने लगी - "मेरे पापा ने इन गोल्ड कॉइन को बहुत ढूँढा था। उन्हें कभी नहीं मिले। मुझे मिले आज यहाँ।"

"तो इस स्टोररूम में सिर्फ बेकार का सामान नहीं, कीमती सामान भी भरा है। और टटोलिये... शायद कोई और खजाना हाथ लग जाए," एजेंट सिक्कों को निहारते हुए, ठहाका लगाते हुए बोला।

मैं भी हल्का सा हंस पड़ी।

एक दस्तावेज पर मेरी नजर अटक गई - ग्रेस होम। गरीब, मासूम बच्चों की तस्वीरें। पापा एक अनाथालय के बच्चों को स्पोंसर करते थे ! मुझे कभी बताया भी नहीं। बताया भी होगा, मैंने ही ध्यान नहीं दिया होगा। मगर यह फाइल यहाँ परित्यक्त क्यों है?

दस्तावेज पर ग्रेस होम का पूरा पता अंकित था। मैंने ग्रेस होम फोन लगाया। फोन तुरंत उठ गया।

"राजीव कुमार गैरोला!"

"वे हमारे बहुत बड़े स्पोंसर थे, इधर दो-तीन सालों से उनसे अनुदान मिलना बंद हो गया।"

"वे अब इस दुनिया में नहीं रहें।"

"ओह ! सो सॉरी ! आप उनकी कौन?"

"बेटी हूँ। बाद में बात करते हैं।"

पापा के लिए क्या मायने रखता था ! क्या थे आखिर पापा? बहुत सारी यादें हैं यहाँ...। उन वस्तुओं को फेंकना अभी भी बहुत मुश्किल था। पापा की सांस, गंध, आत्मा यहाँ लटकी हुई थी।

कमरों से मैंने कोई भी वस्तु अपने लिए नहीं रखी, मगर स्टोररूम में मिली कितनी ही वस्तुओं को मैंने अपने साथ ले जाने के लिए अलग रख दिया। रात हो गई, घर खाली करते-करते।

आज इस रात, अपने पुराने घर का मैं आखिरी बार चुंबन लेती हूँ, इसका एक-एक कोना निहारती हूँ। अभी भी काठ की बनी वह कॉटेज, मेरे बचपन का महल, विराजमान है जो पापा ने मेरे लिए पिछवाड़े में बनाई थी। जब मैं खुद माँ बनी और अपने छोटे बच्चों के संग यदा-कदा यहाँ आती थी तो पापा ने मेरे बच्चों के मनोरंजन के लिए कत्सूरा पेड़ के स्तम्भ के सहारे से ऊपर जाती सीढ़ीयाँ, और पेड़ की मोटी शाखाओं पर एक छोटा सा ट्रीहाउस बनाया था। बच्चे वहाँ बैठ कर अपना रोमांच करते, और वहाँ से नीचे घास में कूद भी पड़ते। धीरे-धीरे मेरे बच्चे भी बड़े हो गए, अपनी निजी जिन्दगी में व्यस्त हो गए। नाना-नानी के पास क्या जा पाते, मेरे पास भी बहुत कम आ पाते हैं। सब कुछ परित्यक्त सा, धूल-धूसित लग रहा था। घर का एक बार फिर मुआयना कर चाबियाँ मैंने एजेंट को पकड़ा दी। मुझे लेने के लिए सुधीर, पापा के एक आत्मीय दोस्त का बेटा पहुंच चुका है। उन्हीं के घर मैंने अपना डेरा जमाया हुआ है।

अब कोई और इस घर में रहेगा। हॉगकॉग से डेनमार्क नया-नया आया एक मेडसन परिवार - पति डेनिश है और पत्नी चाइनीज। दोनों से मैं मिल चुकी हूँ। उन्हें यह घर बेहद पसंद आया। कह रहें थे - सकारात्मक स्पंदन महसूस किया उन्होंने इस घर में । मुझे बस एक मलाल है - काश मैं यहाँ और अधिक आ पाती जब पापा जिन्दा थे। क्या नहीं किया पापा ने मेरे लिए ! मैंने उनके लिए क्या किया? इन प्रश्नों के कशमकश में अब मेरी बाकी की जिन्दगी गुजरनी है। उम्र के इस पड़ाव पर उनका नजरिया, उनकी शिकायते, अपेक्षाएं...सब समझ में आने लगी हैं। पापा का चिरपरिचित मुहावरा दोहराने लगी हूँ- ढाक के तीन पात!

बहरहाल ग्रेस होम दिमाग में घूम रहा है। वहाँ के मासूम बच्चे! पापा का वह काम अब मुझे करना है।

❖

Islevhusvej 72 B
2700 Bronshoj, Copenhagen, Denmark
Mobile: +4571334214

महात्मा गांधी और छात्र राजनीति

प्रो. सत्यकेतु सांकृत

असहयोग आन्दोलन की तरह ही गांधीजी के 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' को विद्यार्थियों का भरपूर समर्थन मिला। 26 जनवरी, 1930 को भारत का पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। लाहौर में रावी के तट पर जवाहरलाल नेहरू नें झण्डा फहराया और सारे देश में छात्रों नें पूर्ण स्वराज्य का जश्न मनाया। छात्रों ने प्रभात फेरियाँ निकालीं। छात्र संघों नें छात्रों के बीच झण्डे बाँटे और सभी को झण्डों के साथ कक्षा में जाने की सलाह दी। इस प्रकार इस घटना ने सारे विश्वविद्यालय परिसर को आंदोलित कर दिया। 12 मार्च 1930 को गाँधीजी ने दांडी यात्रा शुरू की। इसमें नवजवान भारत सभा, यूथ लीग और पंजाब कॉलेज तथा हिन्दू कॉलेज के छात्र भारी मात्रा में सम्मिलित हुए। दिल्ली, बंगाल, महाराष्ट्र, बिहार और संयुक्त प्रांत के छात्रों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में खुलकर हिस्सा लिया।

दक्षिण अफ्रीका में एक सफल आन्दोलन के संचालन के उपरान्त मोहनदास करमचंद गांधी का भारतीय राजनीति में आगमन एक ऐसी युगांतकारी परिघटना थी जिसने भारतीय राजनीति के स्वरूप को ही बदल कर रख दिया। 1885 ई. में काँग्रेस की स्थापना हुई तो उसका एक प्रमुख मुद्दा भारतीय छात्रों को ऊँची सरकारी नौकरियों में शामिल करने की सरकार से प्रार्थना भी थी। काँग्रेस के नेता इस बात की भरपूर कोशिश करते थे कि उन्हें 'राजभक्त' समझा जाए और छात्रों के लिए भी राजभक्ति परम आवश्यक मानी जाती थी। पर धीरे धीरे समय की माँग के अनुरूप परिस्थितियाँ बदलने लगीं और उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में छात्र परिषदों, अध्ययन परिषदों, वाद-विवाद परिषदों और विद्यार्थी संघों की स्थापना होने लगी। इन परिषदों और संघों ने सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलनों की आवश्यकता अनुभव की और उदारवादी तथा सुधारवादी विचारों को समाज के समक्ष रखा। कलकत्ता में सतीशचन्द्र मुखर्जी ने 1902 में 'इंडियन युनिवर्सिटी कमीशन रिपोर्ट' के विरोध स्वरूप 'डॉन सोसाइटी' नामक एक छात्र संगठन की स्थापना की जिसका उद्देश्य छात्रों को उनके अध्यापन में मदद करना तथा ज्ञान से सम्पन्न करना था ताकि समाज को बदल सकें, उसे आधुनिक रूप प्रदान कर सकें। इसमें छात्रों को कुछ सामाजिक सेवा भी करनी पड़ती थी। इन सारी गतिविधियों के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन, खास कर छात्र आन्दोलन एक नई दिशा की और उन्मुख हुआ। 1905 के बंग-भंग के आन्दोलन से भारत में विद्यार्थियों की राजनीतिक गतिशीलता की शुरुआत मानी जा सकती है। कलकत्ता के इडेन हिन्दू छात्रावास के विद्यार्थियों ने विभाजन के विरोध में लार्ड कर्जन का पुतला जलाया और परीक्षाओं का बहिष्कार किया। कर्जन की नीतियाँ, उसका नौकरशाही नजरिया, भारतीय संस्कृति के प्रति उसकी हिकारत भरी दृष्टि और अंत में बंगाल का विभाजन, इन सब ने मिलकर भारत के छात्र समुदाय को आंदोलित कर दिया। इसी दौरान स्वदेशी आन्दोलन की धूम मची और छात्र इस आन्दोलन के अगुआ बने वस्तुतः छात्रों की भागीदारी के बिना यह आन्दोलन सफल न हो पाता। स्वदेशी आन्दोलन ने छात्रों की शक्ति को संगठित होने का मौका दिया।'

गाँधी जी के भारतीय राजनीति में प्रवेश के बाद भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस जन-आन्दोलन का रूप ग्रहण करने लगी। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान संगठित हो चुकी छात्र शक्ति को गांधी जी ने भाँप लिया था और यही कारण है कि 1920 ई. में उनके नेतृत्व में

कॉंग्रेस ने जो असहयोग- आन्दोलन आरम्भ किया उसमे छात्रों ने अहम भूमिका निभाई। 6 अप्रैल, 1920 को गाँधीजी ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अहिंसक युद्ध का शंखनाद कर दिया। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक, शहरों से लेकर गाँवों तक, सारे भारत में पूर्ण हड़ताल रही।[2] इस हड़ताल की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें गांधीजी के आह्वान पर छात्रों ने जमकर हिस्सा लिया। भारतीय राजनीति में यह पहला मौका था जबकि शैक्षिक परिसर राजनीतिक दृष्टि से इस स्तर तक आंदोलित हुआ था। अप्रैल 1920 से जुलाई 1920 तक का समय राजनीतिक दृष्टि से बहुत उत्तेजनापूर्ण रहा। अगस्त 1920 को असहयोग आन्दोलन की घोषणा हो गई।[3] इस जनांदोलन के कार्यक्रम में एक विषय सरकार द्वारा स्थापित, सहायता प्राप्त या स्वीकृत स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार और राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना से भी सम्बद्ध था। यद्यपि पं. मदन मोहन मालवीय आदि कई राष्ट्रीय नेता इसके पक्ष में नहीं थे, पर इसके पक्ष में गाँधीजी के अपने तर्क थे और छात्रों ने भी उन्हें अनसुना नहीं किया। आन्दोलन के प्रारम्भ में ही बड़ी संख्या में छात्रों ने स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार किया। अधिकतर प्रमुख शैक्षिक संस्थाओं के छात्र अनिश्चित कालीन हड़ताल पर चले गए। 12 अक्टूबर, 1920 को अलीगढ़ कॉलेज के छात्रों ने यूनियन क्लब में एक सभा की और गाँधीजी तथा अलीबंधुओं को छात्रों को संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया। उसके बाद छात्र अपने वर्गों में नहीं गए और कई राजनीतिक बैठकें कीं। उस समय अलीगढ़ कॉलेज के छात्रों पर किसी का नियंत्रण नहीं रह गया था और इस बात की जोरों से चर्चा चल पड़ी थी कि अलीगढ़ कॉलेज को राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में रूपांतरित कर दिया जाएगा।[4] बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में असहयोगी छात्रों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती रही। पर साथ ही वहाँ कक्षाएँ नियमित रूप से चलती रहीं। गांधीजी चाहते थे कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थी कक्षाओं का बहिष्कार करें पर पंडित मदन मोहन मालवीय जी इससे सहमत नहीं थे। गांधीजी ने छात्रों पर आत्म-निर्णय का भार छोड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग दो सौ छात्रों ने विश्वविद्यालय छोड़ने का निर्णय किया। औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध विद्यार्थियों की शक्ति को पहचान चुके गांधी जी इलाहाबाद गए और छात्रों को संबोधित किया। उन्होंनें वहाँ भी कक्षाओं के बहिष्कार का अपना निर्णय दोहराया और स्वदेशी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रीय विद्यालय खोलने के लिए राशि इकट्ठी करनी शुरू की। 25 दिसम्बर, 1920 को लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में प्रथम अखिल भारतीय कॉलेज सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में विद्यार्थी सभा की स्थापना हुई। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के खिलाफ छात्र आन्दोलन के विकास में नागपुर का सम्मेलन एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ। इस सम्मेलन में विश्वविद्यालय के बहिष्कार का एक स्वर से समर्थन किया गया। इस निर्णय को सबसे पहले कलकत्ता के छात्रों ने कार्यरूप प्रदान किया। 13 जनवरी, 1921 को बड़ी संख्या में छात्र गलियों में निकल पड़े। प्रोफेसर और शिक्षकों ने भी छात्रों का खुलकर समर्थन किया। छात्रों की यह हड़ताल इस तरह सफल रही कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति ने कहा कि यदि असहयोग आन्दोलन के अगुआ 100 करोड़ रूपये का इंतजाम कर दें, तो सरकार से सारा नाता तोड़ लिया जाएगा और इसे राष्ट्रीय विश्वविद्यालय बना दिया जाएगा।[5]

विद्यार्थी सभा के आह्वान पर मेरठ कॉलेज के छात्रों ने भी अपनी कक्षाओं का बहिष्कार किया। उन्होंने अलीगढ़ और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों को अपना सन्देश भेजा। छात्र गांधी टोपी पहनने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के तहत कॉलेज और स्कूलों में गांधी टोपी पहनने पर बंदिश लगा दी गई। छात्रों ने लगातार गांधी टोपी पहनकर इस निर्णय का विरोध किया। पंजाब में भी छात्रों ने असहयोग-आन्दोलन में हिस्सा लिया। पंजाब के डी.ए.वी.कॉलेज, दयाल सिंह कॉलेज और एस.डी. कॉलेज के लडकों ने कक्षाओं का बहिष्कार किया। डॉ. एस. डी. किचलू की अध्यक्षता में पहला पंजाब छात्र सम्मेलन 30 और 31 जनवरी को गुजराँवाला में संपन्न हुआ। इसमें खालसा कॉलेज अमृतसर, मुनेर कॉलेज सियालकोट के साथ साथ लाहौर के सभी कॉलेजों के विद्यार्थी सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने 'महात्मा गांधी की जय' के नारों के बीच असहयोग आन्दोलन में हिस्सा लेने का प्रस्ताव पारित किया। लाला लाजपत राय ने छात्रों को राष्ट्र की पुकार पर अपनी पढ़ाई त्यागने के लिए बधाई दी। लाहौर के कॉलेजों को अधिकारियों ने बंद कर दिया।[6] 21 जनवरी, 1921 को गाँधीजी की अध्यक्षता में बम्बई में छात्रों की एक सभा हुई। गांधीजी ने कहा कि अगर वे स्वराज्य चाहते हैं, तो उन्हें स्कूल और कॉलेज अवश्य छोड़ने पड़ेंगे। कॉलेज और फोरमेन महात्मा गांधी की बात का तेजी से असर हुआ और उसी दिन से छात्रों ने कक्षा का बहिष्कार शुरू कर दिया। बनारस, आगरा, मेरठ, इलाहाबाद, अहमदाबाद, सूरत, नागपुर, आदि में सैकड़ों छात्रों ने अपनी कक्षाओं का परित्याग किया और असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। छात्रों के लिए वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में राष्ट्रीय महाविद्यालयों/ विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। शिक्षकों ने भी विश्वविद्यालय छोड़े और राष्ट्रीय कॉलेज में अध्यापन करने लगे या किसी अन्य राष्ट्रीय कार्य में जुट गए। इस प्रकार गाँधीजी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन को छात्रों का जोरदार समर्थन प्राप्त हुआ।[7]

असहयोग आन्दोलन की अचानक वापसी ने विद्यार्थियों को

हतप्रभ एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना दिया। गांधीजी के 'रचनात्मक कार्यक्रम' कार्यक्रमों के प्रति उनकी कोई विशेष रूचि नहीं दिखी। वे तो स्वराज्य प्राप्ति की महत्वकांक्षा से महासमर में कूदे थे। अचानक यह सक्रिय रास्ता बंद हो गया। शून्य में लटके छात्र बहुत तेजी से क्रांतिकारी आतंकवाद की ओर मुड़े। इस दौरान छात्रों के बीच इसका खूब, प्रचार हुआ। जतिन दास, भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी विद्यार्थियों का उदय इसी काल में हुआ और उन्होंने हँसते-हँसते अपने प्राण तक देश की आजादी के लिए न्यौछवर कर दिए। इस दौरान छात्रों ने अपने संगठन और यूनियन बनाईं। यह नौजवान भारत सभा का सक्रिय दस्ता था। लाहौर स्टुडेंट्स यूनियन ने छात्रों के बीच क्रांतिकारी भावनाओं का प्रचार-प्रसार किया और छात्रों को क्रांतिकारी कदम उठाने के लिए प्रोत्साहित किया। साइमन कमीशन के भारत आगमन पर एकाएक चारों तरफ आग फैल गई। शहर-शहर में विद्रोह की आवाजें गूँज उठीं। इसमें छात्रों की आवाजें सबसे ऊपर थीं। असहयोग आन्दोलन के दौरान द नेशनल वालेंटियर लीग की स्थापना हुई थी, जो असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद शिथिल पड़ गई थी। 1928 ई. में साइमन कमीशन के आगमन पर यह सक्रिय हो उठा और छात्रों ने कमीशन के विरुद्ध अनेक प्रदर्शन आयोजित किए। राष्ट्रवादी नेताओं ने जगह-जगह छात्रों को संबोधित किया और उन्हें साइमन कमीशन का विरोध करने की प्रेरणा दी। लाहौर में नौजवान भारत सभा ने साइमन कमीशन-विरोध का नेतृत्व किया। लखनऊ में भी छात्रों ने अग्रणी भूमिका निभाई। 29 नवम्बर, 1928 को 'लाला लाजपत राय दिवस' मनाया गया और साइमन कमीशन के बहिष्कार का निर्णय लिया गया। कानपुर के छात्र भी हड़ताल पर चले गये और साइमन कमीशन के विरोध में उन्होंने जबरदस्त प्रदर्शन किये। जनवरी-फरवरी 1929 में गुजरात कॉलेज, अहमदाबाद के छात्रों ने अनिश्चित कालीन हड़ताल कर दी। कॉलेज के प्राचार्य फिंडले जी शिर्रास ने साइमन बहिष्कार आन्दोलन में भाग लेने वाले छात्रों पर जुर्माना लगा दिया था। शिर्रास छात्रों को गांधीजी की सभाओं में भाग लेने से रोकता था, अत: छात्रों ने 'शिर्रास हटाओ' आन्दोलन शुरू कर दिया। इस हड़ताल में आचार्य कृपलानी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वे रोज छात्रों को संबोधित करते थे और उनमें शक्ति तथा उत्साह का संचार करते थे। अंतत: हड़ताल वापस ली गई, प्राचार्य तुरंत तो नहीं हटे, पर जल्द ही उन्हें जाना पड़ा। गुजरात कॉलेज की हड़ताल का पूरे देश के छात्रों ने समर्थन किया।[4]

असहयोग आन्दोलन की तरह ही गांधीजी के 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' को विद्यार्थियों का भरपूर समर्थन मिला। 26 जनवरी, 1930 को भारत का पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। लाहौर में रावी के तट पर जवाहरलाल नेहरू ने झण्डा फहराया और सारे देश में छात्रों ने पूर्ण स्वराज्य का जश्न मनायाद्य छात्रों ने प्रभात फेरियाँ निकालीं। छात्र संघों ने छात्रों के बीच झण्डे बाँटे और सभी को झण्डों के साथ कक्षा में जाने की सलाह दी। इस प्रकार इस घटना ने सारे विश्वविद्यालय परिसर को आंदोलित कर दिया। 12 मार्च 1930 को गाँधीजी ने दांडी यात्रा शुरू की। इसमें नवजवान भारत सभा, यूथ लीग और पंजाब कॉलेज तथा हिन्दू कॉलेज के छात्र भारी मात्रा में सम्मिलित हुए।[5] दिल्ली, बंगाल, महाराष्ट्र, बिहार और संयुक्त प्रांत के छात्रों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में खुलकर हिस्सा लिया। अनेक छात्रों ने अपनी परीक्षाएँ छोड़ दीं और अपने को सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया। दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों ने भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन में हिस्सा लिया। अंग्रेजी हुकूमत ने दिल्ली के चीफ कमीश्नर को आदेश दिया कि वह सविनय अवज्ञा में छात्रों की भागीदारी को नियंत्रित करे। दिल्ली के शिक्षा अधीक्षक ने प्राचार्यों की बैठक में कहा कि यूथ लीग सेवादल और नवजागरण सभा जैसे संगठन राजनीतिक दलों से जुड़े हुए हैं, अत: छात्रों को इनसे वास्ता नहीं रखना चाहिए। तब दिल्ली के छात्रों ने अपना एक स्वतंत्र छात्रसंघ बनाया जिसनें सविनय अवज्ञा आन्दोलन को खूब बल प्रदान किया। दरअसल सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने छात्रों को अपेक्षाकृत ज्यादा आकृष्ट किया। कलकत्ता, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, आगरा और पटना के छात्रों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान अपने अपने शिक्षा- संस्थानों का बहिष्कार किया, पिकेटिंग की और जेल गये। इस दौरान इन क्षेत्रों का विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय नारों से गूँज रहा था और देशप्रेम की भावनाएँ छात्रों के हृदय में हिलकोरें मार रही थीं। छात्रों ने अपने आवासों पर भी झण्डे फहराने की कोशिश की और कहीं कहीं छात्रों ने यह निर्णय भी लिया कि जो शिक्षक खद्दर पहन कर नहीं आएँगे, उनकी कक्षाओं का बहिष्कार किया जाएगा। इस दौरान गांधीजी के दिशा निर्देशों के अनुरूप छात्रों ने हडतालें कीं, जुलूस निकाले और शराब तथा विदेशी कपड़ों की दुकानों के सामने पिकेटिंग की।[6]

8 अगस्त 1942 ई. में गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस संचालित 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन में विद्यार्थियों की भागीदारी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई।[7] अगस्त को गांधीजी सहित प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इन नेताओं की गिरफ्तारी के बाद छात्रों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में ले ली। वस्तुत: भारत छोड़ो आन्दोलन छात्रों का ही आन्दोलन था। गाँधी, नेहरू जैसे नेताओं की गिरफ्तारी के बाद आन्दोलन को उन्होंने ही आगे बढ़ाया इससे हिन्दुस्तान के समस्त कॉलेज और विश्वविद्यालय परिसर प्रभावित थे। छात्र तो छात्र, शिक्षकों ने भी इस आन्दोलन को आगे बढ़ने में सक्रिय भूमिका निभाई। ब्रिटिश

सरकार को जैसे ही महसूस हुआ कि इस आन्दोलन में छात्र अगुवा की भूमिका निभाते जा रहे हैं, वैसे ही स्कूल और कॉलेज तीन महीने के लिए बंद कर दिए गये। आन्दोलनकारी छात्रों पर जुर्माना लगाया गया। उन्हें शिक्षण संस्थाओं से निलंबित किया गया और उन्हें परीक्षा देने की अनुमति नहीं दी गई। छात्रों के जुलूस पर लाठी और गोली से प्रहार किया गया। उनमें कई छात्रों ने स्वतंत्रता की खातिर मौत को गले लगा लिया।

मद्रास सरकार और बम्बई प्रेसिडेंसी ने सर्कुलर जारी कर छात्रों को न केवल निलम्बित ही किया बल्कि उन्हें हतोत्साहित करने के लिए उनकी छात्रवृत्ति भी रोक दी। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अधिकारियों को दंडित करने के लिए औपनिवेशिक सरकार यह प्रस्ताव रखा कि क्यों न उस परिसर को मिलिटरी अस्पताल में बदल दिया जाये! पर यह प्रस्ताव भारी विरोध के कारण कार्यान्वित न किया जा सका। जब कोई सरकार किसी विश्वविद्यालय को अस्पताल में बदलने की बात करने लगे तो स्थिति की गंभीरता का सहज ही अंदाज लगाया जा सकता है। दरअसल ब्रिटिश सरकार विश्वविद्यालयों को ज्ञान के मन्दिर के रूप में विकसित नहीं करना चाहती थी, बल्कि वह ऐसा कारखाना बनाना चाहती थी जिसमें बने-बनाये सरकारी पिट्ठू पैदा किये जा सकें। 1942 का आन्दोलन जल्द ही दबा दिया गया, पर छात्रों ने इसकी चिनगारी को जीवित रखने की कोशिश की। अपने राष्ट्रीय नेताओं को आजाद करने के लिए वे लगातार संघर्ष करते रहे। 22 फरवरी 1943 को लाहौर छात्रसंघ के आह्वान पर पूरी हड़ताल रही और सारे शैक्षणिक कार्य ठप्प रहे। इसी महीने लखनऊ में भी छात्रों की बैठक आयोजित की गई। इस बैठक में सहमति से गाँधीजी की रिहाई का प्रस्ताव पारित किया गया। कोच्चि, मालावार और त्रावणकोर के कॉलेजों में भी गाँधीजी की रिहाई को लेकर हडताल हुई। इस तरह 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान विद्यार्थियों का जो लड़ाकापन था वह स्वाधीनता आन्दोलन के अंत तक बना रहा।

इस प्रकार स्वाधीनता आन्दोलन में विद्यार्थियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। चाहे वह 1905 का बंगभंग विरोध हो या स्वराज्य की मांग को लेकर चलाया जानेवाला आन्दोलन हो,चाहे वह गांधीजी का असहयोग आन्दोलन हो या सविनय अवज्ञा आन्दोलन, सभी में विद्यार्थियों ने जमकर हिस्सा लिया। 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन तो वस्तुत: विद्यार्थियों का ही आन्दोलन था। गांधीजी के आह्वान पर औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के विरुद्ध चलाए गये 'असहयोग' और 'सविनय अवज्ञा' के साथ साथ 'भारत छोड़ो' जैसे आंदोलनों में छात्रों ने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद जमकर अपनी भागीदारी सुनिश्चित की। इन आंदोलनों के दरमियान सम्पूर्ण भारत में विश्वविद्यालयीय परिसर अशांत रहे और विद्यार्थियों के साथ साथ शिक्षकों ने भी इनमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। छात्रों ने अपनी पढ़ाई जारी रखी, पर साथ साथ ब्रिटिश शासन का विरोध भी करते रहे। जब-जब गांधीजी ने इन छात्रों का आह्वान किया, वे आजादी की लड़ाई में कूद पड़े। जिन छात्रों को सरकारी पदों का लोभ था उन्होंने गुलामी के सिद्धांत, नस्लवाद आदि को स्वीकार किया पर जो अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीति को समझ रहे थे, उन्होंने गांधीजी द्वारा दिखाए गए रास्ते पर चलते हुए आन्दोलन का रास्ता अख्तियार किया। निश्चित रूप से इस समय ऐसे छात्रों की संख्या ज्यादा थी, जो राष्ट्रीय जरूरत को समझते हुए गाँधीजी के आह्वान पर स्वाधीनता आन्दोलन में संघर्षरत थे। आई.एन.ए. के सैनिकों की रिहाई हेतु निभाई गई इनकी भूमिका तो अत्यंत सराहनीय है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान जब-जब बड़े नेता गिरफ्तार कर लिए गये और राजनीति में एक शून्य बनता गया तब-तब विद्यार्थियों ने अपनी जान की प्रवाह न करते हुए इस शून्य को भरने का प्रयास किया, जब-जब जरूरत पड़ी उन्होंने राजनीति की बागडोर अपने हाथ में ले ली। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की दमनकारी नीति के खिलाफ न केवल इन्होंने अपने को संगठित ही किया बल्कि कई ऐसे संगठनों का भी निर्माण किया जिसका एकमात्र ध्येय महात्मा गांधी के दिखाए रास्तों पर चलकर देश को आजादी दिलाना था। निश्चित रूप से इसमें राष्ट्रवाद का वह स्वर मुखरित हो उठा था जिसकी अनुगूँज आज 'सबका साथ सबका विकास' के रूप में चहुँओर गुंजायमान हो रही है।

संदर्भ :

1. सुवास चन्द्र हजारी: स्टुडेंट पॉलिटिक्स इन इंडिया, आशीष पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1957, पृ. 55-56
2. मोहनदास करमचंद गाँधी, एन ऑटोबायोग्राफी, 1948, पृ.563
3. ताराचंद, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, खंड-3, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1972, पृ. 494
4. भारतीय वार्षिक रजिस्टर, 192, पृ.130-131
5. अमृत बाजार पत्रिका,20 जनवरी, 1921
6. एस.एम.जाफर. (सं) स्टुडेंट अनरेस्ट इन इंडिया डाक्यूमेंटेनेन्स सर्विस,भूमिका, पृ. 11
7. द बाम्बे क्रॉनिकल्स, 22 जनवरी,1921
8. द मराठा, 13 जनवरी 1929
9. राष्ट्रीय अभिलेखागार, होम पौल, संदर्भ 256/1,1938 प्रचारिणी सभा
10. अर्पणा बसु, ड ग्रोथ ऑफ एजुकेशन एंड पॉलिटिक्स डेवलपमेंट इन इंडिया, पृ.221

❖

प्राध्यापक हिन्दी
संकायाध्यक्ष (साहित्य अध्ययन पीठ) एवं कुलानुशासक
अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली। मो. 8826252403

तुलनात्मक साहित्य-अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण

सिराजुल हक

रूस में तुलनात्मक साहित्य का दृष्टिकोण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद परिलक्षित होता है। प्रथम पर्याय में रूसी साहित्यकारों ने तुलनात्मक साहित्य की श्रेष्ठता प्रदान नहीं की। क्योंकि उन्होंने तुलनात्मक साहित्य को जातीय साहित्य का विचार-विश्लेषण तथा विषय-वस्तु नहीं माना है। उनकी दृष्टि में मार्क्सवादी दृष्टिकोण रहा है। उनका मानना है कि- "विभिन्न जातीय साहित्य के बीच समग्रता और सटीक द्वन्द्वात्मक एकता पर दृष्टि प्रदान करते हुए जातीय साहित्य की गंभीरता उपलब्ध कर सकते हैं।" लेकिन यह स्वीकार्य नहीं है कि सब साहित्यकार केवल मार्क्सवाद को सपोर्ट करते हैं। इनमें E. G. Neypokov, Andrey. A. Zhudanov आदि उदाहरणस्वरूप है। इन्होंने नई पृष्ठभूमि, गणतांत्रिक सचेतनता तथा विश्व पूँजीवाद के स्वार्थ के लिए तुलनात्मक साहित्य के प्रति समर्थन किया है।

तुलनात्मक साहित्य का सबसे बड़ा योगदान अंतरराष्ट्रीय मंच रहा है। जिसे तुलनात्मक साहित्य का उद्भव-विकास का श्रेय दिया जाता है। मैथ्यू अर्नाल्ड ने 1848 में 'तुलनात्मक' शब्द का प्रयोग किया है, जिसे तुलनात्मक साहित्य का पुरोधा व्यक्ति के रूप में विभूषित किया है। कालांतर में यह शब्द साहित्य का पर्याय बन गया तथा तुलनात्मक साहित्य का सृजन हुआ। इस तुलनात्मक साहित्य के विचार-विमर्श के लिए अंतरराष्ट्रीय पर्याय में काफी संस्था भी बन चुकी है। साहित्यकारों ने इस साहित्य के सपक्ष-विपक्ष में बात रखी है। इसी तरह वाद-विवाद के माध्यम से तुलनात्मक साहित्य का विस्तार होने लगा।

तुलनात्मक साहित्य इतिहास और साहित्य का द्वन्द्वात्मक संबंध है। जो सामाजिक-सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक प्रवृति का पुनः उद्धार की प्रक्रिया है। रेने वेलेक के तुलनात्मक साहित्य और उनकी विचारधारा को लेकर विद्वानों के बीच वाद-विवाद हुआ, किंतु फ्रेंच के प्रसिद्ध तुलनाशास्त्री रेने एटीमबल 1996 में अपनी पुस्तक La crise de la literature में वेलेक का समर्थन करते हुए कहते हैं कि "तुलनात्मक अध्ययन लोगों को समझने की भावना समृद्धि करते हैं और एकता की वृद्धि से मानवजाति का विकास होता हैं।" रेने वेलेक ने तुलनात्मक साहित्य से विश्वसाहित्य की चिंता-चर्चा में बहुत अवदान दिया है। विविध मतभेद की दीवार तोड़कर तुलनात्मक साहित्य ने विश्व दरबार में अपनी पहचान तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर में एक सशक्त प्लेटफॉर्म बना लिया है। अब हम अंतरराष्ट्रीय देशों की विचारधारा तथा सिद्धान्त को देखने की कोशिश करेंगे।

फ्रेंच सिद्धांत-

तुलनात्मक साहित्य 20वीं शती का वरदान है। फ्रेंच विचारधारा के प्रमुख तुलनाशास्त्री- Brunel, Pichois, Van Tiegham, Robert Jonus, Fernand baldensperger, Rene Etimble आदि। उनका कहना है कि यूरोप की क्रांति इस साहित्य की भूमिका में रही है। जैसे- यूरोप में नये-नये कल-कारखाने तथा उद्योग, कला-कौशल का सृजन हुआ। उस समय तुलनात्मक साहित्य का विकास हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य-विभिन्न देशों के पाठ्यक्रम से इसकी मौलिकता और

प्रभावात्मकता का विस्तार करना। अर्थात् तुलनात्मक साहित्य का किसी भी साहित्य पर प्रभाव विस्तार कर सकते हैं। इसी तरह प्रभाव विस्तार के साथ तुलनात्मक साहित्यिक क्षेत्रों में चिंतन-प्रक्रिया का भी विकास हुआ। इसका मूल स्त्रोत ऐतिहासिकता है। इसी ऐतिहासिकता में बौद्धिक और सांस्कृतिक बिंब समाहित हैं। जो इसका मुख्य विषय माना गया है। डेवियल हेनरी पेजी के अनुसार- "तुलनात्मक साहित्य से गृहीत विचारों का इतिहास, मानसिकता व बौद्धिकता के अध्ययन से पूर्ण किया जाता है।"[2] इसी तरह अध्ययन से अंतरराष्ट्रीय और भाषिक विविधता का पारस्परिक संपर्क की स्थापना की जा सकती है। जिसमें जाति का जातीय साहित्य और इतिहास का सम्मिश्रण है और कर्म, धर्म, ज्ञान-अज्ञान, लोक-परंपरा आदि सारे तथ्यों को तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत रखा गया है। फ्रांसीसी विद्वानों का मानना है कि कोई भी साहित्य अपनी सांस्कृतिक-साहित्यिक परंपरा से अलग और स्वयंपूर्ण नहीं है। किन्तु भौगोलिक और भाषिक सीमा पार करते हुए एक साहित्य से दूसरे साहित्य तक पहुँचते-पहुँचते विषय-वस्तु, धारणा तथा मानवीय चरित्र का आदर्श आदि विशेषताओं का स्थानांतर होता है। रेने वेलेक ने तुलनात्मक साहित्य को मानवता, मानव जाति और प्रगति के सपक्ष में अपनी बात रखी। इसे Rene Etimble ने समर्थन करते हुए कहते हैं कि- "History and historicism are not always progressive, nor aesthetics always reactionary; it would help to develop a comparative literature which, which combining thehistorical methods with the critical sprit,.....the prudence of sociologist with the boldness of the aestheticism, would at last, at one stroke, give our discipline a worthy purpose and appropriate methods-"[3] इस प्रकार की चीजों के अध्ययन के लिए फ्रांसीसी स्कूल तथा विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य को शामिल किया है और तुलनात्मक पाठ्यक्रम निर्धारित किया तथा अध्ययन-अध्यापन अनिवार्य कार्य माना है।

अमरीकी सिद्धांत-

अमरीका में तुलनात्मक साहित्य का दौर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुआ। अमरीका के विद्वान तुलनात्मक साहित्य के प्रति विशेष प्रेरणादायक तथा आग्रही देखने को मिलता है। क्योंकि उस समय विभिन्न देशों से अमरीका की ओर विस्थापन तथा प्रवजन हुआ। इन प्रवजन वाले लोगों में चिंतन-मननशील, बुद्धिजीवी, विशिष्ट प्रतिष्ठित तुलनात्मक साहित्यकार अमरीका में गये थे। जोकि अमरीका के साहित्य, इतिहास तथा राजनीतिक क्षेत्रों में भी दृष्टिगोचर होता है। जिसके सांस्कृतिक, सामाजिक, भाषिक विविधता में एकता का समन्वय विस्तार करना अमरीकी तुलनात्मक साहित्य का मूल उद्देश्य है। अमरीकी तुलनात्मक साहित्यकारों में Rene Wallek, Austin waren, Harry lavin, H. H. Henrry Remark, Paul warner, Freedrich, Owen Alridge आदि उल्लेखनीय है। इन्होंने इस साहित्य को आगे बढ़ाने के लिए अहम रोल निभायी। सन 1960-70 के आस-पास अमरीका में यह साहित्य काफी चर्चित हुआ। अमरीका के कॉरनल विश्वविद्यालय में प्रथम तुलनात्मक साहित्य का विभाग खुला है। सन 1985 में chapel Hill के North Carolina विश्वविद्यालय में International Comparative literature Association का द्वितीय कॉंग्रेस अधिवेशन आयोजित हुआ। इस अधिवेशन में तुलनात्मक साहित्य का विस्तार तथा परिसीमा के संपर्क में चर्चा हुई। रेने वेलेक के अनुसार तुलनात्मक साहित्य का उद्देश्य- "It will study all literature from an international perspective, with a consciousness of the unity of all literary creation and experience. In this conception....comparative literature is identical with the study of literature independent of linguistics, ethnic and political boundaries. It cannot be confined to a single method; description, characterization, interpretation, narration, explaination, evaluation are used in its discourse just as much as comparison"[4]

अमरीका के कैथलिक विश्वविद्यालय की रोमन भाषा के अध्यापक Helmut Hatzfeld है, उसकी पुस्तक 'The disciplines of criticism' में तुलनात्मक साहित्य के संदर्भ में कहते हैं कि- कला का इतिहास किसी जातीय सीमा स्वीकार नहीं करते हैं, किन्तु वहाँ एक सामान्य भाषा का प्रयोग किया है। यहाँ मुख्यत: दो चीज हैं, एक इतिहास और दूसरी भाषा तथा साहित्य। इस प्रकार साहित्य और इतिहास के अध्ययन से सौंदर्यशास्त्र तथा विचार-विश्लेषण, सादृश्य, शैली, प्रभाव,

परंपरा, अनुकरण आदि बिन्दुओं पर ज्यादा जोर प्रयोग किया गया है। अत: साहित्य के बीच सौंदर्य की खोज करना संभव है, अन्यथा असंभव। Owen alridge का मानना है कि साहित्यिक शोध के जरिए नये-नये विचार-विश्लेषण के प्रति अत्यधिक ध्यान आकर्षण करना। अमरीकी तुलनाशास्त्री ने मानवतावाद को काफी महत्व प्रदान किया है। जिससे विश्वसाहित्य के पक्ष में अपना अभिमत व्यक्त किया है।

कनाडियन सिद्धांत-

भारत की तरह कनाडा एक बहुभाषिक देश है। फिर भी कनाडा में मूख्यत: फ्रेंच, क्वीबिक और अंग्रेजी क्रेंद्रीय भाषा है। कनाडा में प्रवासी भाषा के साथ-साथ उनके साहित्य की भी भरमार है। जैसे-उक्रेनियन, जर्मन, नॉर्वेजियन, ऐसलडिक और दक्षिणी एशियाई आदि। इनका निजी जातीय साहित्य है। समयानुसार इनके साहित्य कनाडा भाषा में उपलब्ध होने लगा। एक बात उल्लेखनीय है कि कनाडा के विश्वविद्यालय में इंलैण्ड, अमरीका तथा विदेश के अध्यापक थे। जिसके परिणाम स्वरूप कनाडियन भाषा में प्रतिबंधित की समस्या हुई थी। कालांतर में कनाडा साहित्य हो मर्यादा प्राप्त हुआ। इस प्रकार वाद-विवाद तथा समस्याओं के कारण काफी विलंब में तुलनात्मक साहित्य की चर्चा हुई। इस क्षेत्र में कनाडा के ऑलबंटा विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य का पाठ्यक्रम प्रारंभ किया। बाद में कनाडा के अधिकांश विश्वविद्यालय के स्नातक पाठ्यक्रम में भी तुलनात्मक साहित्य को शामिल किया गया है। जैसे- सन 1960 शेरबूक विश्वविद्यालय में अंग्रेजी और फ्रेंच विभाग के सहयोग से तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन शुरु हुआ। सन 1971 में चुदारलैण्ड नामक एक लेखक ने 'Second image', 'Comparative study in Quebec/Canadian Literature' पुस्तक में विभिन्न विषयों के साथ अनुवाद अध्ययन महत्व प्रदान किया। जो तुलनात्मक अध्ययन की महत् शैली है। उसकी दवितीय पुस्तक 'The New Hero; Essays in Comparative Quebec Canadian Literature' जिसमें कनाड़ियन भाषा क्वीबिक तथा अन्य भाषा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन पर जोर दिया है। उस समय एलिपस नामक द्विभाषी पत्रिका निकलती थी, जिसमें फ्रेंच और कनाड़ियन विविध भाषा साहित्य का अनुवाद होता था। जोकि तुलनात्मक साहित्य का अहम योगदान देता था। ऑलबंटा विश्वविद्यालय की 'Canadian Review of Comparative literature' नामक पत्रिका विशेष उल्लेखनीय है, जिसने तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में विश्व की पत्रिका के रूप में पहचान बनाई। यदि हम कनाड़ियन इन्साइक्लोपीडिया को देखें तो पता चलता है कि कनाड़ियन साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में अपरिसीमित भूमिका रही। जिसमें Northop Frye, Eugene Joliat, Victor Graham, Paul Zumthor, D. M. Hayne, D. G. Jones, M. V. Dimic, E. D. Blodgett, Philipstrat ford आदि नाम चर्चित है। इसके अतिरिक्त डी.जी.जोंस, रोनाल्ड सथरलैण्ड, क्लीमेंट मोइजन, ई. डी. ब्लॉडगैट आदि नाम बहुत चर्चा में है। इन्होंने भाषा, संस्कृति, इतिहास, भाव पर बल प्रयोग करते थे। साथ-साथ विषय-वस्तु के अध्ययन के जरिए कनाड़ियन साहित्य में एक साहित्यिक मित्रता और पारस्परिक संबंध स्पष्ट किया है। कनाड़ियन साहित्यकारों में मोइजन, जोंस, मेकटेनन जैसे साहित्यकारों ने अंग्रेजी और फ्रेंच साहित्य की संस्कृतियों का अध्ययन समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में किया है। सथरलैण्ड कहते हैं कि- "फ्रेंच-कनाड़ियन और इंग्लिश-कनाड़ियन साहित्य में दर्शनीय समांतर प्रयोग यदि कोई महत्व रखते हैं तो उसका कारण यह होगा कि सामान्य राष्ट्रीय डलौहनम नियंत्रक शक्तियों की एक सामान्य पंक्ति (a common act of continuing & forces) अभिन्न की चेतना का अद्‌भुत मंत्र है।"[5] इस प्रकार कनाड़ियन साहित्यकारों ने बहुभाषिक साहित्य के विविध विधाओं पर तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि डाली है।

रूसी सिद्धांत-

रूस में तुलनात्मक साहित्य का दृष्टिकोण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद परिलक्षित होता है। प्रथम पर्याय में रूसी साहित्यकारों ने तुलनात्मक साहित्य की श्रेष्ठता प्रदान नहीं की। क्योंकि उन्होंने तुलनात्मक साहित्य को जातीय साहित्य का विचार-विश्लेषण तथा विषय-वस्तु नहीं माना है। उनकी दृष्टि में मार्क्सवादी

दृष्टिकोण रहा है। उनका मानना है कि- "विभिन्न जातीय साहित्य के बीच समग्रता और सटीक द्वन्द्वात्मक एकता पर दृष्टि प्रदान करते हुए जातीय साहित्य की गंभीरता उपलब्ध कर सकते हैं।"[6] लेकिन यह स्वीकार्य नहीं है कि सब साहित्यकार केवल मार्क्सवाद को सपोर्ट करते हैं। इनमें E. G. Neypokov, Andrey. A. Zhudanov आदि उदाहरणस्वरूप है। इन्होंने नई पृष्ठभूमि, गणतांत्रिक सचेतनता तथा विश्व पूँजीवाद के स्वार्थ के लिए तुलनात्मक साहित्य के प्रति समर्थन किया है। रूस में तुलनात्मक साहित्य की केंद्र स्थापना के लिए सबसे पहले ऑलकजेंडर वेलिओवस्की ने कोशिश की। झिमुनस्की के अनुसार रसल पलनस्की की पुस्तक 'इंग्लिश साहित्य और रशिया नवजागरण' में उल्लेख किया कि- "ऑलकजेंडर रशिया में तुलनात्मक साहित्य का चर्चित नाम है और 19वीं शती का यूरोपीय साहित्यकारों का सर्वश्रेष्ट प्रतिनिधि नाम है।"[7] इसके बाद हम देखें तो 1860 में रशिया के सेंट पिटार्सबर्ग विश्वविद्यालय में रूसी भाषा में विश्व साहित्य का अध्ययन प्रारंभ हुआ। इसके साथ-साथ कला, इतिहास, नृत्य-ज्ञान और लोक संस्कृति के जरिए तुलनात्मक साहित्य का अंतः श्रृंखलात्मक अध्ययन का सृजन हुआ। Fedorbuslaev के अनुसार यूरोपीय लोक-संस्कृति का मूल स्त्रोत पूर्वयूरोप है। इसलिए उन्होंने रशियन और पश्चिमी पौराणिक कथा के आधार पर साहित्य के बीच सादृश्य का अन्वेषण किया है। अश्वलकजेंडर का मानना है कि- "तुलनात्मक अध्ययन साहित्येतिहास अध्ययन की सर्वोत्कृष्ट पद्धति है।"[8] Victor Zhirumansky ऑलकजेंडर की इस विचारधारा को सही दिशा माना है। इतना ही नहीं, उसके Sravnitelnoie literate rovedenie नामक शीर्षक ग्रंथ में बौद्धिक अवदान भी है। कालांतर में मार्क्सीय साहित्य को तुलनात्मक परिप्रेक्ष में देखा है। मानववाद इसका केंद्रीय बिंदु है। मार्क्सीय साहित्य और राष्ट्रीय स्तर के साथ तुलनात्मक अध्ययन विशेष भूमिका रखता है। इसी तरह तुलनात्मक साहित्य प्राथमिक स्तर से सार्वजनीन स्तर का अस्त्र बन गया है। 1992 में रशियन स्टेट यूनिवर्सिटी में तुलनात्मक अध्ययन का विभाग खुला है। जिसमें मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण समाहित है। लेकिन तुलनात्मक साहित्य में भी मार्क्सवादी ताकतवर रूप देखने को मिलता है। जैसे- सन 2008 में प्रकाशित 'comparative Literature', 'Russia and the west' शीर्षक ग्रंथ में 'Liliiachernets and Vladimir kateav' का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस प्रकार रूसी साहित्य में तुलनात्मक साहित्य स्वरुप परिलक्षित होता है।

चीनी सिद्धांत-

20वीं शती में चीनी साहित्य की गोद में तुलनात्मक साहित्य का विकास हुआ है। जिसकी लहर ने जर्मन से चीन में प्रवेश किया। इसका उद्देश्य-बौद्धिक-सांस्कृतिक अध्ययन। बौद्ध धर्म का समाज-संस्कारों का प्रभाव अनेक देशों में पड़ा था। जैसे-भारत, रशिया, यूरोप आदि। जोकि चीनी साहित्य में देखने को मिलता है। बौद्ध संस्कृति ही तुलनात्मक अध्ययन का केंद्रीय विषय रहा है। इस क्षेत्र में Hu Shi, Chen Dunin, Lu Xun, ZhonZuoren, जैसे साहित्यकारों का अपरिसीमित योगदान रहा है। ये पश्चिमी दर्शन से अनुप्रेरित है। Hu Shi चीनी नव्य सांस्कृतिक आन्दोलन का पितृ माना जाता है। कालांतर में बौद्धिक अनुशीलन के तहत् तुलनात्मक साहित्य का विस्तार हुआ। तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा सर्वप्रथम चीन के Suzhou University के प्रो. कवि, समालोचक Huang Reh ने दी थी। Huang Reh ने एक वक्तव्य में पसनैट का कम्परेटिव लिटरेचर का उल्लेख किया था। Lu Xun आधुनिक चीनी साहित्य का पितास्वरूप है। क्योंकि उन्होंने जपानी शिक्षा के साथ-साथ पाश्चात्य साहित्य जगत् के तुलनात्मक अध्ययन से भी परिचित थे। Xu shonshang Frederic lolieedh जापानी में अनुदित पुस्तक Histoire des Litteratures Comparees des origins an xxesiede जो सन 1911 में Xu shonshangr कि एक चिट्ठी लिखी थी, जिसमें सन 1906 की कथा-कहानी निहित है। इतना ही नहीं, सन 1907 में साहित्यिक मूल्यांकन में तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया। इसी तरह चीन में पाश्चात्य संस्कृति और चिंतन-मनन की प्रक्रिया व्यापक रूप में

प्रचार-प्रसार हुआ। इसके साथ ही चीनी साहित्य और पाश्चात्य अनुवादित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन शुरु हुआ। जैसे- 1930 में Fudonghuaus Loliee की पुस्तक 'Historie des literatures' और Paul van Tiegham की पुस्तक 'La Litterature comparee' तुलनात्मक अध्ययन विशेष चर्चित है। इसके बाद सन 1936 में Dai wangshu की अनुदित पुस्तक में तुलनात्मक अध्ययन देखने को मिलता है। Beizing National Tsinghua University में तुलनात्मक साहित्य का एक स्वतंत्र विभाग खुला। और सन 1930 में बेइजिंग के Qinghua University में तुलनात्मक साहित्य की अनुसंधान प्रक्रिया शुरु हुई। सन 1950 के आस-पास तुलनात्मक साहित्य की प्रासंगिकता अत्यधिक बढ़ी। इसका मूल कारण चीनी जीवन का जातीय स्वार्थ का विकास हेतु विश्व की ओर अग्रसर होता है। इस क्षेत्र में Zhu Guangian, Qian Zhogshu, Ji xianliu जैसे अनुसंधान कर्ता उल्लेखनीय है। जिसकी लेखन-प्रक्रिया विश्वजनीन थी। चीन में 1970 के आस-पास तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन तेजी से हो रहा था। जैसे- Qian के 'Partial views' नामक ग्रंथ सन 1979 में प्रकाशित हुआ, जो तुलनात्मक साहित्य का Frontier Discipline साबित हुआ। सन 1985 में पेरिस में आयोजित अंतराष्ट्रीय तुलनात्मक साहित्य सम्मेलन अधिवेशन में Rene Etimbleds वक्तव्य उल्लेखनीय है जो 'The Revival of Comparative literature in China' में विस्तृत व्याख्या की गई है। जिसमें उन्होंने कहा कि- "The awakening of comparative literature in china will, without doubt, greatly contribute to the development of world comparative literature-"[1] इतने में चीन के तुलनात्मक साहित्य में संकट परिलक्षित होता है। जैसे- Ulrich weissteindh iqLrd 'The permanent crisis of comparative literature' आदि। फिर भी तुलनात्मक साहित्य की रफ्तार चलता रहा। जैसे- Xan yLdh की पुस्तक 'Mighty opposite: From Dichotomise to Differences in the comparative study of china.' Sussan Bassnett की पुस्तक 'Comparative literature: Critical Introduction' Varn Heimarh की पुस्तक 'Comparative Literature in the Age of Multiculturalism' आदि। इसके बाद काफी नव्य तुलनात्मक साहित्यकारों का भी सृजन हुआ, जिसमें Li Zehou, Liu Mingjiu, Yue Daiyun, Ziang Kongyang आदि प्रमुख है। इन्होंने तुलनात्मक साहित्य के संप्रेषण के लिए काफी कोशिश की। इससे स्पष्ट होता है कि चीन में तुलनात्मक साहित्य की वृद्धि बहुत तेजी से हो रही है।

उपरोक्त सिद्धांत तथा विचारधारा से यह स्पष्ट होता है कि तुलनात्मक साहित्य विविध देशों को जुड़ने की एक सशक्त कड़ी है। जो विविध भाषा-साहित्य के कला, संस्कृति, इतिहास, साहित्य, दर्शन और साहित्य की विविध शैली की एक पद्धति भी है। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काफी वाद-विवाद होते हुए भी तुलनात्मक साहित्य को विश्व दरबार में खड़ा करने की कोशिश की है। अतः आज तुलनात्मक साहित्य की चाहत पूरी दूनिया में चर्चा का केंद्रीय विषय बन चुका है।

संदर्भ (हिंदी, असमिया पुस्तकें)

1. डॉ. प्रफुल्ल कटकी-तुलनामूलक साहित्य आरु अनुबाद बिचार, पृ-16 ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, पाँचवीं संस्करण-2017
2. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर-तुलनात्मक साहित्य, पृ-34, विद्या विहार, दरियागंज, प्रथम संस्करण-2004
3. दिलीप बरा-तुलनात्मक साहित्य, पृ-56 चन्द्रप्रकाश, गुवाहाटी, तृतीय संस्करण-2016
4. डॉ. प्रफुल्ल कटकी-तुलनामूलक साहित्य आरु अनुवाद विचार, पृ-15
5. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर-तुलनात्मक साहित्य, पृ-42
6. दिलीप बरा-तुलनात्मक साहित्य, पृ-63
7. डॉ. करबी डेका हाजरिका-तुलनात्मक साहित्य आरु अनुवाद कला, पृ-18 बनलता, गुवाहाटी, द्वितीय संस्करण-2014
8. दिलीप बरा-तुलनात्मक साहित्य, पृ-64
9. दिलीप बरा-तुलनात्मक साहित्य, पृ-61

❖

(शोधार्थी), हिंदी विभाग
पुडुचेरी विश्वविद्यालय
आर.वी. नगर, कलापेट, पुडुचेरी 605014
मो. 7598608859 ईमेल shirazulhoque354@gmail.com

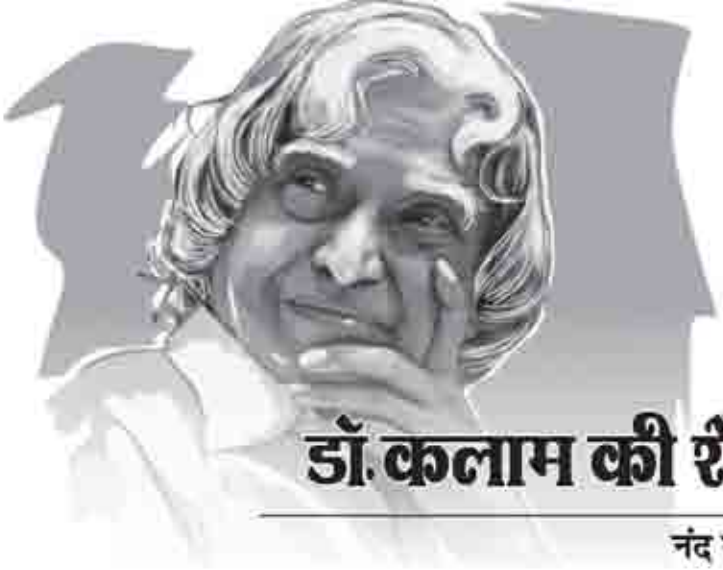

डॉ. कलाम की शैक्षणिक अभिदृष्टि

नंद कुमार झा

सभ्य समाज का निर्माण इन बातों पर निर्भर करता है कि हम युवाओं को किस प्रकार से शिक्षित करें ताकि वे प्रबुद्ध वयस्क एवं जिम्मेवार, विचारवान एवं उद्यमशील नागरिक बन सकें। न यह सेवा उद्योग की इकाई है और न ही यह कोई सरकारी सेवा है! यह वास्तव में एक चुनौतीपूर्ण तथा दुरूह कार्य है, जिसके निर्वहन के लिए शास्त्रीय सिद्धांतों, नैतिक मूल्यों, राजनैतिक संकल्पनाओं,सौन्दर्यबोध एवं अर्थशास्त्र की गहरी समझ आवश्यकता है। इसके मध्य सबसे मुख्य तथ्य यह है कि इस कार्य को करने की पात्रता को पाने के लिए अपने स्वयं के अंदर अवस्थित शिशु का ज्ञान तथा समाज में रहने वाले बच्चों की मानसिकता का सम्यक् बोध अति आवश्यक है। विडम्बना यह है कि न तो इस महत कार्य को सरकार के उपर छोड़ा जा सकता है, और न ही यह महज पैसों के बल पर हासिल हो जानेवाली चीज है!

नगर उच्च विद्यालय की 75वीं जयंती समारोह में भाग लेने के लिए मैं 2006 ई. के पाँच जुलाई को दक्षिणी उड़ीसा के ब्रह्मपुर नगर पहुँचा। वहाँ हजारों छात्रों की विशाल उपस्थिति एवं उनका अति उत्साहपूर्ण स्नेह मेरे हृदय के मर्म का स्पर्श कर गया। वहाँ मेरे साथ मेरे मित्र कोटा हरिनारायण उपस्थित थे, जो स्वदेशी हल्के लड़ाकू विमान विकास कार्यक्रम के अध्यक्ष रह चुके थे, तथा इस विद्यालय के मेधावी पूर्व छात्र भी थे । अतः मैंने उनसे पूछा, "जब आप इस विद्यालय के छात्र थे, तो क्या आपने उस समय यह बात सोची थी,कि एक दिन आप लड़ाकू विमानों का विकास करेंगे ?"

मेरे प्रश्नों को सुनकर कोटा ने अपनी चिर-परिचित शैली में हंसते हुए उत्तर दिया, "मेरे मन में उस समय लड़ाकू विमानों को विकसित करने की कोई अवधारणा तो नहीं थी, लेकिन इस बात के लिए मैं दृढ़ संकल्पित था, कि एक दिन महत्वपूर्ण कार्यों को मैं अवश्य ही करूँगा।"

क्या विशेषताओं के बीज पूर्व से ही छुपे होते हैं! जो कालांतर में पोषण पाकर भावी जीवन में प्रस्फुटित हो जाते हैं?

शायद हाँ! 1941 ई. में जब मेरे 'रामेश्वरम् पंचायत समिति विद्यालय के आदरणीय शिक्षक शिवसुब्रमण्यम अय्यर ने उस समय जब मुझ दस वर्षीय बालक को यह जानकारी दी थी किपक्षी किस क्रिया-विधि के द्वारा उड़ान भरते हैं, तो इस वर्णन के साथ ही साथ उन्होंने मेरी अनुभूतियों के द्वार भी खोल दिये थे- वह एक समग्र तार्किकता थी, जिसने सैद्धांतिक रुपों में व्यावहारिक पटल पर उड़ान भरने के लिए सदैव ही मुझे अभिप्रेरित किया।

प्राथमिक शिक्षक सर्वथा एक महान उत्तरदायित्व का परिवहन करते हैं, बच्चे अपनी वंशानुक्रम की अनुवांशिकता से जो गुण-धर्म ग्रहण करते हैं, उन गुण-धर्मों के उत्स-अभिवर्धन हेतु सिद्धांतों को सूत्रित कर अभ्यासों के असीम आकाश उन्हें प्रदान करते हैं।

इस पृथ्वी ग्रह पर अपने जीवन के पचहत्तर वर्ष बिताने के बाद तथा लाखों युवा शिक्षार्थियों के साथ वार्तालाप के फलस्वरूप आज मैं इस निष्कर्ष में विश्वास करता हूँ, कि शिक्षा वास्तव में एक समन्वयात्मक-तंत्र है, जो अनेक उप-तंत्रों से निर्मित है। जो कारक आपस में मिलकर इस समग्र शिक्षा-तंत्र का निर्माण करते हैं, उन्हें हम चार प्रमुख कारकों में अपघटित

कर सकते हैं। अपने समग्र रुप में यह तंत्र नि:संदेह अपने आंशिक कारकों से व्यापक एवं विशिष्ट होते हैं, परन्तु बिना इन चारों अंतर्युग्मित कारकों की उपस्थिति के शिक्षा का कोई भी स्वरूप शिक्षार्थी को उनके जीवन के सार या बहुप्रतिक्षित लक्ष्य की साधना में सहायता प्रदान करने के योग्य नहीं हो सकता, जिसकी निकट भविष्य में उन्हें अपने वास्तविक रूप में प्रकट होने के लिए आवश्यकता है।

वास्तव में वे चार तत्व कौन-कौन से हैं, जो शिक्षा को पूर्णता प्रदान करते हैं?

शिक्षा के प्रथम स्तर में शिक्षण के ठोस, व्यावहारिक एवं विशिष्ट पक्ष आते हैं। इसका दूसरा स्तर प्रणाली तथा क्रिया-विधि पर आधारित है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि अधिकांश लोग इस स्तर की अवस्था तक पहुँच जाते हैं। शिक्षा के तृतीय स्तर में अध्येता इन्द्रियोचित सामान्य अनुभवों से परे जाकर अंत:प्रज्ञा की सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त कर लेता है। निष्कर्षत: इस स्तर की अवस्था विकसित आत्मा के प्राकृतिक विकास को दर्शाती है।

चतुर्थ स्तर अथवा शिक्षण की अंतिम अवस्था मानव अस्तित्व के सारगर्भित दार्शनिक अभिप्रेषण के प्रकाशन या परा-सम्मेलन को इंगित करती है। विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की शब्दावली के मानकों का प्रयोग कर इन चार अवस्थाओं को वर्णित किया गया है :

हिन्दू-समाज में जीवन की जिन चार अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है, उन्हें वर्णाश्रम-व्यवस्था के नाम से जाना जाता है, यथा- प्रथम अवस्था अर्थात् 'ब्रह्मचर्याश्रम' (विद्यार्थी जीवन); द्वितीय अवस्था अर्थात् 'गृहस्थाश्रम' (पारिवारिक जीवन); तृतीय अवस्था अर्थात् 'वानप्रस्थाश्रम' (अर्ध-मुक्त पारिवारिक जीवन); तथा चतुर्थ एवं अंतिम अवस्था अर्थात् 'संन्यासाश्रम' (पूर्ण-मुक्त जीवन)। इन समस्त अवस्थाओं के धर्म या कर्तव्य अलग-अलग निर्धारित किये गए हैं। ये चार अवस्थाएं मानव जीवन क्रम में 'विरचन या उपक्रम', 'उत्पादन', 'सेवा', एवं 'प्रस्थान' का प्रतिनिधित्व करती हैं।

हिन्दुत्व व्यावहारिक जीवन में किसी लौकिक प्रशिक्षण सिद्धांतों में विश्वास नहीं करता । इसके मतानुसार किसी व्यक्ति को कैसे प्रसन्न रहना है, तथा किस प्रकार से अपने मित्रों एवं आत्मीय जनों का सम्मान और स्नेह अर्जित करना है! यह प्रशिक्षण का विषय नहीं हो सकता। हिन्दू मान्यता के अनुसार प्रत्येक विलक्षण मनुष्य में अपनी-अपनी सहज अभिरुचियों के अनुरूप जीवन-मूल्यों के प्राकृतिक परिवर्धन होते हैं। प्राकृतिक जीवन-मूल्यों के माध्यम से यही उत्परिवर्तन चार आश्रमों के सूक्ष्म बोध के रूप में प्रत्येक मनुष्य के मन में संस्थापित होते हैं।

बौद्ध दर्शन के अनुसार यह प्रबोधन की प्रक्रिया चार चरणों में वर्णित हैं, यथा- सोतापन्न: आंशिक रूप से प्रबुद्ध वह व्यक्ति जिसने अपने मन के तीन अवरोधको को विनष्ट कर लिया है, ये तीन अवरोधक हैं- आत्म-दृष्टि, संशय तथा संस्कार-संग्रह।

सकदागामी: वह व्यक्ति जिसके मन में दुर्भावनाओं एवं कामुकता की प्रबलता व्याप्त रहती हो!

अनागामी: वह व्यक्ति जिसका मन हर प्रकार की दुर्बलताओं एवं कामुकता से मुक्त हो चुका हो! तथा

अरहन्त: वह व्यक्ति जो जन्म-जन्मान्तरो से संचित समस्त संस्कारों से विमुक्त हो चुका है, अत: उसकी जैविक-मृत्यु के उपरांत जीवन के किसी भी क्रम में पुन: उसका जन्म नहीं हो सकता।

पाश्चात्य शास्त्रीय मत भी मानव जीवन के चार आध्यात्मिक चरणों का उल्लेख करते हैं

प्रथम अवस्था: यह अवस्था एकदम अराजक, अस्त-व्यस्त एवं लापरवाही वाली होती है। व्यक्ति अपने अहंकार से परे या स्वार्थ से इतर कुछ भी सोच नहीं पाता तथा उसके मन के अंदर अवहेलना के दृढ़ स्वर मुखर रहते हैं। अपराधी मानसिकता वाले लोग तथा लीक से हटकर चलने वाले लोग सदैव इसी अवस्था में बने रहते हैं, कभी भी इससे बाहर निकल नहीं पाते।

द्वितीय अवस्था: इस अवस्था अंतर्गत वो लोग रहते हैं, जो अंधविश्वासी होते हैं। जब बच्चे अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करना सीख जाते हैं, तो वे इस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। अधिकांशत: तथाकथित धार्मिक लोग आवश्यक रुप से इसी अवस्था में बने रहते हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि वे ईश्वर पर अंधविश्वास रखते हैं, इसलिए वे कभी उनके अस्तित्व पर प्रश्न नहीं करते! अंधविश्वास के माध्यम से नम्रता तथा आज्ञाकारिता एवं सेवा भाविता का व्यक्ति के अंदर जन्म होता है। नियम-कानूनों से बंधे हुए सभ्य नागरिक सदैव इसी अवस्था में

बने रहते हैं, तथा कभी भी इससे उपर नहीं उठ नहीं पाते।

तृतीय अवस्था: इस मानसिक अवस्था में वैज्ञानिक अभिदृष्टिवाले तर्कशील लोग रहते हैं, जो परीक्षणों के उपरांत ही ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। जो लोग वैज्ञानिक-शोध एवं आविष्कारों में संलिप्त रहते हैं, वे सभी इसी मानसिक अवस्था के होते हैं।

चतुर्थ अवस्था: इस मानसिक अवस्था में पहुँचने पर मनुष्य प्रकृति के सौन्दर्य एवं रहस्यवाद का आनंद लेने लगते हैं। उन्हें प्रकृति की महान संरचनाओं का आभास या अनुभूति होना प्रारंभ हो जाता है। इनकी धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता द्वितीय अवस्था को प्राप्त मनुष्यों से सर्वथा भिन्न होती है। ऐसा कहने का अभिप्राय यह है कि ये अंधविश्वास के कारण किसी अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते वरन् वास्तविकता के धरातल पर ये अपने विश्वास का निर्माण करते हैं। परन्तु इस चतुर्थ अवस्था को प्राप्त मनुष्य भी रहस्यवादी होते हैं।

इस्लामी परंपरा या सूफी रहस्यवाद अथवा तसव्वुफ के अनुसार बढ़ते हुए क्रम में ये चार अवस्थाएं बतलाए गये हैं:

(1) शरीयत: यह नियम, अमल या कानून की पुस्तिका है, जिसे बिना किसी द्वैत के मानना होता है ।

(2) तरीकत: यह मानव जीवन के लिए प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्थापना प्रस्तुत करता है ।

(3) मार्फत: यह जीवन सशरीर परमात्मा प्रदत्त उपकरण है, जिसके परिष्करण से जीवन में महान लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है।

(4) हकीकत: यह आत्मा एवं परमात्मा के सम्मेलन की वह चरम अवस्था है, जिसे विलय प्रत्यक्षीकरण कहते हैं ।

सभ्य समाज का निर्माण इन बातों पर निर्भर करता है कि हम युवाओं को किस प्रकार से शिक्षित करें ताकि वे प्रबुद्ध वयस्क एवं जिम्मेवार, विचारवान एवं उद्यमशील नागरिक बन सकें। न यह सेवा उद्योग की इकाई है और न ही यह कोई सरकारी सेवा है! यह वास्तव में एक चुनौतीपूर्ण तथा दुरूह कार्य है, जिसके निर्वहन के लिए शास्त्रीय सिद्धांतों, नैतिक मूल्यों, राजनैतिक संकल्पनाओं,सौन्दर्यबोध एवं अर्थशास्त्र की गहरी समझ आवश्यक है। इसके मध्य सबसे मुख्य तथ्य यह है कि इस कार्य को करने की पात्रता को पाने के लिए अपने स्वयं के अंदर अवस्थित शिशु का ज्ञान तथा समाज में रहने वाले बच्चों की मानसिकता का सम्यक् बोध अति आवश्यक है। विडम्बना यह है कि न तो इस महत कार्य को सरकार के उपर छोड़ा जा सकता है, और न ही यह महज पैसों के बल पर हासिल हो जानेवाली चीज है!

प्रत्येक व्यवहारिक क्षेत्र में विकास मनुष्य की उस क्षमता पर निर्भर करता है, जो क्षमता उन्हें विद्यालय शिक्षण के माध्यम से प्रदान कर सकता है। अत: शिक्षा वह स्रोत है, जो मनुष्य के भविष्य के विकास एवं उन्नति का वाहक बनता है। किसी भी व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व का विकास तथा स्वयं के उद्देश्यों की आपूर्ति की क्षमता उसके बाल्यकाल की कुशल तैयारियों का प्रतिफल होती है। बाल्यकाल के निर्माण की नींव जितनी मजबूत एवं प्रखर होगी, व्यक्ति उतना ही अपने जीवन में सफलताओं को प्राप्त कर सकेगा। सहज एवं मौलिक शिक्षा बच्चों को सफलता की महानतम ऊँचाईयों पर पहुँचा सकती है।

शिक्षा के केन्द्रीभूत सिद्धांत विलक्षण रुप से यह सत्य उद्घाटित करते हैं कि "ज्ञान का अवदान" बहुत मौलिक स्तर से होना चाहिए। यह उद्देश्य मुख्य रुप से ज्ञान की प्रकृति, उत्पत्ति तथा संभावनाओं के उपर कार्य करती है। लेकिन इसका विश्लेषण करना उतना ही महत्वपूर्ण है कि ज्ञान की प्रकृति एवं प्रकार कैसे हैं, तथा इसके समरूप विचार सत्य तथा विश्वास से यह किस प्रकार से सम्बद्ध हैं! हम ऐसी शिक्षा अपने बच्चों को हर्गिज नहीं दे सकते जो अन्य देशों के विचारों से ओतप्रोत हो, और निष्कर्षत: हमारी राष्ट्रीयता के पतन का कारण बने!

भारत परंपरागत रूप से एक प्रबुद्ध समाज रहा है। यहाँ महान दार्शनिकों तथा विद्वानों ने जन्म लिया है। भारतीय परंपरा विचारों के वृहत् पटल की संरचना प्रस्तुत करती है। शिक्षा की क्रिया-विधि एवं लक्ष्य के अनुसार मुझे रवींद्र नाथ टैगोर एवं जिद्दू कृष्णमूर्ति की लेखनी से दो ध्रुवीय अवस्था प्राप्त हुई।

रवीन्द्र नाथ टैगोर कहते हैं कि संस्कृति रचनाशीलता के पोषण एवं परिवर्धन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना पुष्पों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए उद्यान आवश्यक है! दूसरी ओर जिद्दू कृष्णमूर्ति कहते हैं, संस्कृति हमारी रचना धर्मिता को विनष्ट करती है। वे बौद्धिक प्रवरता में आवश्यक रूप से क्रांतिकारिता की मांग करते हैं। मेरी अभिदृष्टि मध्य की स्थिति

का अनावरण करती है। पारंपरिक शिक्षा के महत्व को अंतर्निहित करती है, शरीयत एवं तरीकत की अवस्थाओं को सन्निहित करती है, जो कभी भी महत्वहीन या आधारहीन नहीं हो सकते, तथा यह मार्फत की आत्मा को लक्षित करती है।

मैंने यहाँ केवल उन्हीं तथ्यों को लिखा है,जो मैंने स्वयं ही देखा-भाला है, तथा स्वयं ही अनुभूत किया है। पाँच दशकों से भी अधिक समयावधि तक मैंने विशाल योजनाओं पर कार्य किया है, तथा मुझे अनेक प्रेरक प्रणेताओ के साथ कार्य करने का सौभाग्य मिला है, प्रबुद्ध सहकर्मियों का सौजन्य एवं कृत-संकल्पित कनिष्ठो का सानिध्य मिला है, जिसने मुझे कुछ विशिष्ट बातें सिखलाई, जो मुझे अवश्य ही अपनी भावी पीढियों से साझा करना है। मार्फत के संबंध में मेरी व्याख्या यह है कि किसी भी व्यक्ति की आनुवांशिक रूप से प्राप्त वैशिष्ट्य जब ब्रह्मांडीय शक्तियों से जुड़ती है, तो वह प्रकट होती है, या उसका प्रकाशन होता है। इस सत्य के तथ्य का अनुभव मैंने अपने कार्य निष्पादन की कठिनतम अवधियों में कई बार किया है। इसे मैं पराप्राकट्य या सामान्य से आगे की ओर विकास के चरण के रूप में मानता हूँ।

भारतीय परंपरा में ऐसे उदाहरणों की भरमार है। तिरुवल्लुवर, कबीर, तथा विवेकानंद ब्रह्मांडीय शक्तियों से संपन्न थे तथा उन्होंने परा-साक्षात्कार किया था। इनमें से प्रत्येक ने अपने पथ पर अपनी समयावधि में नये विचारों के आयाम स्थापित किए थे, तथा उसका परावर्तन प्रस्तुत किया था। इसके अतिरिक्त हमारे पास विज्ञान की महान परंपरा रही है, विशेषकर भौतिकी तथा गणित के क्षेत्रों में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। तथापि आज नौकरी या सेवा प्राप्त करने का चलन अनुसंधानिक कार्यों के बनिस्पत अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं। आज ऐसी सार्वजनिक विचारधारा विकसित हो गई है कि जो कुछ बना बनाया है, उसी को ग्रहण कर लिया जाए उसकी खोज करने की बजाय!

जबकि आधुनिक संसार में समृद्धि का आगमन आविष्कारों, अनुसंधानों के माध्यम से ही हुआ है। नैनो तकनीक की प्रौद्योगिकी का विशद् क्षेत्र आज वैश्विक पटल पर उभर रहा है, और यह प्रत्येक मनुष्य के अनुसंधानार्थ खुला हुआ है। भारत इस क्षेत्र में नेतृत्वकर्ता बन सकता है। सूचना तकनीकी के क्षेत्र में आज भारत वैश्विक आकार एवं महत्व प्राप्त कर चुका है, यद्यपि इसका प्रतिफल अभी कुछ सौ-हजार सेवाओं तथा विदेशो से होने वाली आय के कुछ हिस्सों तक ही सीमित है, लेकिन अब यह आकड़े आवश्यक रुप से वर्तमान परिदृश्य से आगे विकसित होंगे, जो इस क्षेत्र में नवोन्मेष एवं शोध हेतु सेवाएं उपलब्ध करवाएंगे।

युवाओं के मन को यह एहसास दिलाने के निमित्त एक सद्प्रयास है, कि शिक्षा के क्षेत्र में प्रचुर संसाधन तथा सहायक तंत्र उपलब्ध हैं, लेकिन यह सभी सुविधाएं तब तक अदृश्य रहेंगी जब तक कि युवा इसके लिए प्रयत्नशील नहीं होंगे।

यह पुस्तक उन अनेक विचारों को समाहित करती है, जो विगत पाँच वर्षों में लाखों छात्रों से वार्तालाप करने के क्रम में मुझे प्रेरक लगे, लेकिन परमावश्यक होने के बाद भी शायद ही पारंपरिक शिक्षाविदो के द्वारा ये कभी रखे गए हों! मुझे वेबसाइट से कुछ रोचक प्रश्न मिले:

हम क्यों किसी वृत्त को 360 अंशों में विभाजित करते हैं? जोड़ तथा घटाव के चिन्ह गणित में कब ज्ञात हुए?

जिन तथ्यों की खोज आर्यभट्ट ने 499 ई में की थी,उन्हीं तथ्यों को ठीक हजार वर्षो के बाद कोपर निकस ने खोजा इसका क्या औचित्य है?

आज हम आतंक प्रेरित युग में रह रहे हैं, जहाँ ऐसे लोग भी हैं, जो इस बात पर विश्वास रखते हैं, कि वो एक निरा स्वप्न के लिए अपना बलिदान देकर जन्नत (स्वर्ग) में अपना स्थान सुरक्षित कर लेंगे। जन्नत के विषय में यह विचित्र सोच आखिर आती कहाँ से है?

क्या यह पृथ्वी, मानव जाति के लिए सर्वोत्तम निवास स्थान नहीं है?

क्या इस जीवन में पल्लवित, पुष्पित होना प्रत्येक मानव की तकदीर नहीं है?

यह पुस्तक इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देती, वरन् यह एक प्रश्न पूछती है:

क्यों नहीं हर कली के भाग्य में फूल की तरह खिलना लिखा है?

❖

लेखक, चिंतक एवं अध्यक्ष "अमृताङ्क समाज"
ई.3/578, सोनिया विहार, दिल्ली110090
मो. 9971206938 ई मेल: kavivansh05@gmail.com

ब्रज लोक-काव्य

हरदेव सिंह 'निभौतिया'

ब्रज के गेय लोक-काव्य में संस्कार गीत, ऋतु गीत, भक्ति गीत, कथा गीत और ढोला गायन के रूप में बड़ा ही महत्व रहा है। ब्रज का गेय लोक काव्य वहाँ की सम्पूर्ण लोक-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। ब्रज के गेय लोक काव्य में ही ब्रज-संस्कृति की मनमोहक झलक देखने को मिलती है और साथ ही उत्तर भारत की धर्मपरायण संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व ब्रज गेय लोक-कव्य करता है। यह गेय लोक-काव्य अपने ब्रज लोक में सामाजिक संस्कृति के प्रति चेतना जागृति का कार्य करता है। ब्रज लोग-गीतों में संस्कार-गीत जन्म से मरण तक सोलह संस्कारों के रूप में जुड़े हुए हैं। सोहर, जच्चा, पालनौं, झूलना, बधाई गीत, पूजा अनुष्ठान, मुंडन और बालकों की पट्टी- पूजा से जुड़े लोक-गीतों से लेकर के विवाह गीत ब्रजवासियों के जीवन को साकार रूप देते हैं। ब्रज लोक-काव्य में भक्ति-गीत ब्रज लोक-गीतों की रीढ़ माने जाते हैं।

'ब्रज' शब्द संस्कृत धातु 'व्रज' से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- 'गतिशीलता'। प्राचीन धर्म ग्रन्थों में 'ब्रज' शब्द का अर्थ गोष्ठ[1], गौचर-भूमि[2] आदि रूपों में पाया गया है। मथुरा, वृन्दावन एवं गोवर्धन के आस-पास का क्षेत्र ब्रज प्रदेश कहलाता है, जिसकी राजधानी मथुरा थी जो प्राचीनकाल से ही शूरसेन[3] नाम से जानी जाती थी। इस प्रकार इस ब्रज मंडल में मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, गोकुल, महावन, बलदेव, नंदगांव, बरसाना, डीग, कामवन (आधुनिक नाम कामां) आदि स्थल शामिल हैं जो भगवान श्रीकृष्ण की गोपियों संग रचाई पावन रासलीलाओं एवं सखाओं संग गौचारण क्रीड़ाओं से सुशोभित हैं। इन सभी स्थलों को ब्रज चौरासी कोस की दर्शनीय और पावन परिक्रमा में शामिल किया गया है। ब्रज भाषा अपने नाम को चरितार्थ करती हुई ब्रज क्षेत्र के लोगों की वाणी है। इसने लंबे समय से काव्य की वाणी बनाने के साथ ही अपना विकास किया है जिस कारण इस बोली ने भाषा का स्वरूप धारण किया। ब्रज भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है। संस्कृत व प्राकृत भाषा का प्रचलन कम होने के बाद काव्य रचनाएँ ब्रज भाषा में की जाने लगीं। वह समय ब्रज भाषा का स्वर्ण काल कहा जाने लगा। ब्रज भाषा मुख्यत: मथुरा, आगरा, अलीगढ़, भरतपुर, धौलपुर आदि जिलों में बोली जाती है।

'लोक-काव्य' शब्द 'लोक' और 'काव्य' दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ लोक का काव्य अर्थात लोक द्वारा रचा गया काव्य है। ऐसा काव्य जो लोक कवियों द्वारा रचा गया हो तथा जो अपनी प्राचीन मान्यताओं, विश्वासों व परम्पराओं को जीवित बनाए रखता है और लोक जीवन की अभिव्यक्ति को वाणी का स्वरूप देता है, वह काव्य ब्रजलोक-काव्य कहलाता है। इस ब्रजलोक काव्य की प्रमुख विशषता यह है कि यह अनेक काव्य रूपों में होते हुए भी एक सामूहिक भावना के रूप से निर्मित काव्य है। ब्रजलोक काव्य की भाषा साहित्यिक भाषा न होकर सीधे सादे लोगों की भाषा है।

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार – "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार और पांडित्य कि चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।"[4] ब्रज लोक काव्य ब्रजवासियों के प्रमुख अंगों जैसे साहित्य, संस्कृति, परम्परा आदि से सुशोभित है। ब्रजलोक-काव्य को हम मख्यत: तीन बिन्दुओं में विभाजित करते हैं –

1. ब्रज का गद्य लोक-काव्य – लोककथा, ब्रज लोकोक्ति आदि।
2. ब्रज का गेयलोक-कव्य –लोकगीत, लोक गाथा, ढोला गायन आदि।
3. ब्रज का दृश्य लोक-काव्य – लोकनाट्य[5] (रासलीला,

रामलीला, स्वांग, नौटंकी, बहुरूपिया आदि।)

ब्रज के गद्य लोक-काव्य में लोक-कथाएँ एवं ब्रज-लोकोक्तियों का प्रमुख महत्व रहा है। 'लोक-कथा' शब्द 'लोक' और 'कथा' दो शब्दों से मिलकर बना है। लोक हमारे चारों ओर फैला हुआ लोगों का वह समूह है जो अपने बहुआयामी ज्ञान और अभिरुचियों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तथा अपने चारों ओर मौखिक रूप से विस्तारित करता है। 'कथा' शब्द 'कथ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है- कहना। यहाँ पर ब्रज के गद्य लोक-काव्य से अभिप्राय ब्रज लोक परिवेश में पाई गई उस भाषा-शैली या मौखिक अभिव्यक्ति से है जिसमें ब्रज से जुड़ी लोक-प्रचलित मान्यताएं हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का मत है- "जो कथा मौलिक परंपरा द्वारा निरंतर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होती रहती है, वह लोक-कथा है।" ब्रज का गद्य लोक-काव्य मनुष्य के लिए केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं बल्कि इसके माध्यम से हमें अपनी ब्रज-संस्कृति, जीवन-दर्शन, जीवन मूल्यों और अभिरूचियों से सरल साक्षात्कार होताहै तथा मानव समाज के आचार-विचार, प्रेम, मैत्री, वीरता, शत्रुता, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, परंपरा, रहन-सहन, सुख-दु:ख आदि की सुंदर झांकी मिलती है। इससे लोगों में सामाजिक चेतना का विकास होताहै। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक-कथा को छ: भागों में विभाजित किया है -

1. उपदेश कथा।
2. व्रत कथा
3. प्रेम कथा
4. मनोरंजन कथा
5. सामाजिक कथा
6. पौराणिक कथा

ब्रज के गेय लोक-काव्य में संस्कार गीत, ऋतु गीत, भक्ति गीत, कथा गीत और ढोला गायन के रूप में बड़ा ही महत्व रहा है। ब्रज का गेय लोक काव्य वहाँ की सम्पूर्ण लोक-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। ब्रज के गेय लोक काव्य में ही ब्रज-संस्कृति की मनमोहक झलक देखने को मिलती है और साथ ही उत्तर भारत की धर्मपरायण संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व ब्रज गेय लोक-कव्य करता है। यह गेय लोक-काव्य अपने ब्रज लोक में सामाजिक संस्कृति के प्रति चेतना जागृति का कार्य करता है। ब्रज लोग-गीतों में संस्कार-गीत जन्म से मरण तक सोलह संस्कारों के रूप में जुड़े हुए हैं। सोहर, जच्चा, पालनौं, झूलना, बधाई गीत, पूजा अनुष्ठान, मुंडन और बालकों की पट्टी-पूजा से जुड़े लोक-गीतों से लेकर के विवाह गीत ब्रजवासियों के जीवन को साकार रूप देते हैं। ब्रज लोक-काव्य में भक्ति-गीत ब्रज लोक-गीतों की रीढ़ माने जाते हैं। भक्ति-गीत ऐसे लोक-गीत होते हैं जिसमें ईश्वर के प्रति आस्था और श्रद्धा का भाव पाया जाता है। भगवान के भजन से ही लोगों में विश्वास और उत्साह पैदा होता है जिसके फलस्वरुप लोग अपने सही मार्ग पर बने रहते हैं। प्रभु भक्ति से ही मानव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। ब्रज भाषा के लोक-कवि डॉ. सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मीतल, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, पं.गोपाल प्रसाद मुद्गल आदि ने ब्रज का गेय काव्य की रचना करने में बहुत योगदान दिया है। ब्रज के गेय लोक-काव्य में ऐसे ऋतु गीत और पर्व गीत मिले हैं जो वर्ष के महीनों और विभिन्न ऋतुओं में होने वाले त्योहार, मिले और व्रत के समय गाए जाते हैं। इन गीतों में प्रकृति का निरूपण एवं त्योहार, व्रत विशेष का चित्रण पाया जाता है। इस संदर्भ में गाए जाने वाले कुछ लोक-गीत इस प्रकार हैं -

1. 'देवी मैया के भवन में घुटु अनखे लैलां गुरिया 8...।
2. 'चरखी चल रही बरकेनी चौरसुपी जालां गुरिया...।'
3. 'सावन आयौ अम्मा मेरी सुहावनौ जी...।'
4. 'झूला तौ परिगयौ अमुआं की डार पै...।'
5. 'केसूला-के सूला घंट्यार बजाइयो...।'
6. 'मैं व्रतो ही करवा चौथ, दहीन के अरघ दये...।'
7. 'कान्हा बरसाने में आजाइयौ बुला गयी राधा प्यारी...।'

ब्रज का दृश्य लोक काव्य रासलीला, रामलीला, स्वांग, नौटंकी आदि रूपों में देखने को मिलता है। ब्रज में प्रचलित दृश्य काव्य के अनेक रूप हैं, जिन्हें रासलीला, रामलीला, महारास, नौटंकी, स्वांग आदि रूपों में बांटा गया है। यह ब्रज भूमि प्रभु श्रीकृष्ण और उनकी प्रियतमा रसिक कुँवारी राधा रानी जी की पावन लीलाओं से सुशोभित है अत: यहाँ पर श्रीकृष्ण ने गोपियन संग बहुत रासलीलाएँ रचाई हैं। नाच, गायन वादन और अभिनय का मिला-जुला रूप रास लीला कहलाता है। इसमें शृंगार रस की प्रधानता पाई जाती है परन्तु यह पूरी तरह से श्री कृष्ण अरु राधा के प्रेम व भक्ति भावना से रचा गया रूप महारास कहलाता है। भारत के अनेक भागों में होने वाले सांस्कृतिक समारोह में ब्रज की रास मंडलियां भाग लेती हैं। लोग इनमें महारास का प्रदर्शन करके श्रीकृष्ण की प्रेम व भक्ति-भावना का रस-पान करते है।

"बहुरिस्याम मुखरास कियौ।
भुज भुज जोरि जुरी ब्रज बाला, वैसे ही रस उमंगि हियौ।।"9

रामलीला को ब्रज प्रदेश का प्राण माना जाता है। ब्रज में रामलीलाओं का साल भर आयोजन होता रहता है, जिसमें लोक कवियों के लिखे संवाद बोले जाते हैं। ब्रज प्रदेश की मंडलियाँ पूरे उत्तरी भारत में घूम-घूम कर रामलीला का प्रदर्शन करते हैं। यह परम्परा बहुत लोगों के लिए उदर-पूर्ति का साधन बन गई है। स्वाँग नाटक का एक अलिखित रूप है। स्वाँग किसी व्यक्ति द्वारा धारण किया गया बनावटी रूप है। हास-परिहास से भरा खेल तमाशे, नकल और लोगों को छलने के लिए बनाया गया

बहुरूपिया किया गया आडंबर है। ब्रज प्रदेश में स्वाँग परम्परा बहुत ही पुरानी है तथा नौटंकी इसका विकसित रूप माना गया है। बहुरूपिया या नक्काल भी लोक नाटक का ही अन्य रूप है। ये नक्काल कोई अधिकारी, सेठ, नेता, देवी-देवता आदि की हु-व-हु नकल करके डराने का प्रदर्शन करते हैं और उसके बाद में अपना वास्तविक परिचय देकर पैसे मांगते हैं।

निष्कर्ष: – ब्रज लोक-काव्य आलेख के अंत में यह कहा गया है कि ब्रजलोक-काव्य के गद्य, गेय और दृश्य काव्य रूपों में ब्रज लोक-कथा और लोक-गीतों के साथ-साथ लोक नाटक की परपंरा का भी बहुत महत्व रहा है जिसके फलस्वरूप ब्रजलोक-काव्य का बड़ा ही समृद्ध एवं विकसित रूप सामने आया है। इसका मुख्य उद्देश्य आधुनिक समाज में अपनी संस्कृति एवं परम्परा के प्रति सामाजिक चेतना जागृत करना है। जिसके फलस्वरूप ब्रज-लोक की कला, संस्कृति एवं परम्परा का अस्तित्व बना रहे।

संदर्भ

1. प्रसाद, रत्नशंकर (1977), प्रसाद ग्रंथावली-1, लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ-542

1. गोष्ठ – वह स्थान जहां गोधन बांधा जाता है। जिसे गायों का 'खिरक' (बाड़ा) कहते हैं।
2. गोचर भूमि – वह भूमि जहां गाएं चलती व चरती हैं।
3. शूर सेन नाम पर ही इस भू-भाग का नाम 'शूर सेन प्रदेश' पड़ा।
4. डॉ. सत्येन्द्र – लोक साहित्य विज्ञान, पृष्ठ संख्या –3
5. लोक में प्रचलित परंपरागत और बिना पर्दे के नाटक जिनमें संकेतों और गीतों की प्रधानता होती है और वार्तालाप अधिकतर पद्य में होता है, जैसे- रामलीला, नौटंकी आदि।
6. उपाध्याय डॉ कृष्ण देव, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद –1957, पृष्ठ संख्या –161
7. विवाह के समय गाए जाने वाले एक प्रकार के गीत।
8. लांगुरिया- देवी का भक्त।
9. ब्रज के लोक साहित्य- रासलीला – पोद्दार अभिनंदन-ग्रंथ पृष्ठ संख्या –663 वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन।

❖

(हिंदी शोधार्थी) महाराजा सूरजमल. बृजवि. वि. भरतपुर (राज.)
ग्राम नाहरौली, पो. शीशबाड़ा, तहसील-डीग, जिला-भरतपुर
मो. – 9983519141, Email : hardevnaharoly@gmail.com

रचनाकारों से अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप करवाकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी एक से अधिक और कविता आदि तीन से अधिक न भेजें अन्यथा निर्णय नहीं लिया जा सकेगा।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। अधिकतम शब्द-सीमा 3000।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के अंत में अपना पूरा नाम, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियाँ भी भेज सकते हैं।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं, वर्तनी को कृपया भली-भाँति जाँच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएँ किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएँगी। अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएँ यथासमय प्रकाशित की जाएँगी।
- आप अपने सुझाव या प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

डॉ. दिनेश चमोला के काव्य में राष्ट्र चिन्तन

सलमा असलम

यदि इसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें तो अनेक रोचक तथ्यों से परिचित होते हैं। जैसे-भारत में व्यापार के उद्देश्य से अंग्रेजों ने आगमन किया और धीरे-धीरे उन्होंने अपनी कूटनीति के माध्यम से पूरे भारत को अपना गुलाम बना लिया। अंग्रेज भारत में व्यापारी बन कर आए थे और बन गए यहाँ के शासक। अंग्रेजों को इस बात का ज्ञात हो गया था कि भारत के लोगों में आपसी मतभेद हैं, और इसी मत-भेद का फायदा उठा कर 'फूट डालो शासन करो' की नीति को अपनाया और भारत को अपना गुलाम बना लिया था। इसी के चलते सन 1750 के दशक में अंग्रेजों ने भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया था। आगे चलकर सन 1757 में 'प्लासी' की लड़ाई में 'रॉबर्ट क्लाइव' के संरक्षण में बंगाल के नवाब 'सिराजुद्दौला' को हरा कर भारत में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' का शासन आरंभ किया था। कालान्तर में राष्ट्रवाद की भावना के कारण सन 1857 का विद्रोह या भारतीय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना का सूत्रपात हुआ।

राष्ट्रवाद एक राजनीतिक अवधारणा है, जो राष्ट्र को प्रगतिशील एवं सशक्त बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जनसमूह के रूप में की जा सकती है, जो एक निश्चित भौगोलिक सीमाओं में रहने के साथ-साथ समान परम्परा, हित एवं समान भावनाओं से बंधा होता है। मुख्य रूप से राष्ट्रीय भावना राष्ट्र को एकसूत्र में बांधने का कार्य करती है। राष्ट्रीय चेतना एक रागात्मक बोध भी है, जिसके अंतर्गत किसी भी राष्ट्र का व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति आत्मीय रूप से जुड़कर गौरवान्वित महसूस करता है। इसी चेतना के कारण देश की भौगोलिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अस्मिता के प्रति व्यक्ति में जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है। भारत में राष्ट्रवाद का आरंभ फ्रांस की क्रांति का परिणाम है। भारत ही नहीं बल्कि फ्रांस की राज्यक्रांति से प्रेरित होकर हंगरी, इटली, फिनलैंड आदि अनेक यूरोपीय देशों में भी राष्ट्रीय आन्दोलनों का आरम्भ हुआ। अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैंड आदि देशों में हुई आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक क्रांति के पीछे राष्ट्रीयता की भावना ही थी। अफ्रीका तथा एशिया के स्वाधीनता-आन्दोलनों के पीछे भी राष्ट्रवाद की भावना थी। इन अंतराष्ट्रीय घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रवाद को काफी प्रभावित किया। भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों में जैसे-जैसे परिवर्तन आता गया, वैसे-वैसे राष्ट्रवाद की अवधारणा भी बदलती गई। कभी वह राजभक्ति के उत्संग में नाचती नजर आई तो कभी हिंदूत्व की भावना से ओत-प्रोत रही, कभी हिन्दू-मुस्लिम दोनों को अपने साथ समाहित करने में।

यदि इसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें तो अनेक रोचक तथ्यों से परिचित होते हैं। जैसे-भारत में व्यापार के उद्देश्य से अंग्रेजों ने आगमन किया और धीरे-धीरे उन्होंने अपनी कूटनीति के माध्यम से पूरे भारत को अपना गुलाम बना लिया। अंग्रेज भारत में व्यापारी बन कर आए थे और बन गए यहाँ के शासक। अंग्रेजों को इस बात का ज्ञात हो गया था कि भारत के लोगों में आपसी मतभेद हैं, और इसी मत-भेद का फायदा उठा कर 'फूट डालो शासन करो' की नीति को अपनाया और भारत को अपना गुलाम बना लिया था। इसी के चलते सन 1750 के दशक में अंग्रेजों ने भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया था। आगे चलकर सन 1757 में 'प्लासी' की लड़ाई में 'रॉबर्ट

क्लाइव' के संरक्षण में बंगाल के नवाब 'सिराजुद्दौला' को हरा कर भारत में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' का शासन आरंभ किया था। कालान्तर में राष्ट्रवाद की भावना के कारण सन 1857 का विद्रोह या भारतीय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना का सूत्रपात हुआ। यह क्रांति जन क्रांति कहलाई क्योंकि इसमें जनता ने सक्रिय रूप से भाग लिया था। डॉ. राम विलास शर्मा के शब्दों में कहे तो- "यह विद्रोह अंग्रेजी राज्य के खिलाफ जनता का युद्ध था।.. पुलिस ने भी सिपाहियों का साथ दिया।" इस क्रान्ति में समाज के सभी वर्गों के लोगों ने बिना किसी भेद-भाव के बढ़-चढ़कर भाग लिया था। ब्रिटिश सरकार ने इस 1857 की क्रांति को अत्यंत निर्ममता से असफल बना दिया था, लेकिन इस क्रांति से देश की समस्त जनता में जो जागृति और राष्ट्रीय चेतना का आरंभ हुआ, अंग्रेज उसे नष्ट करने में असफल रहे। लगातार अनेकों संघर्षों के बाद जिसमें सन 1942 का 'भारत छोड़ो आंदोलन' भी महत्वपूर्ण था, परिणामत: सन 1947 को भारत अंग्रेजों की गुलामी से स्वतंत्र हुआ। अंग्रेजों की हार तो हो गई परन्तु वे जाते-जाते अपनी नीति 'फूट डालो और शासन करो' के बीजारोपण में सफल हो गए। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों की समरसता व एकता में फूट डाल दी। जिसके परिणाम स्वरुप हिन्दुस्तान दो टुकड़ों में विभाजित हो गया। विभाजन के कई सारे कारण और पहलु हैं। इस सन्दर्भ में वरिष्ठ पत्रकार सईद नकवी के विचारों को उल्लेखित करना प्रासंगिक होगा, वे लिखते हैं- "भारत के विभाजन के कारण और उसकी कई व्याख्याएं हैं। लेकिन यह दास्तान अब भी अधूरी है। ऐसी बहुत सी सामग्री है, जिसको जोड़ कर पूरी तस्वीर को देखना-समझना होगा ताकि मालूम हो सके कि दरअसल हुआ क्या था। जैसे कि, सत्ता हस्तांतरण से सम्बंधित दस्तावेजों पर गौर करना होगा। ब्रिटेन ने इन दस्तावेजों को 1983 में प्रकाशित किया है। इन दस्तावेजों में 1942 से 1947 के महत्वपूर्ण दौर में भारतीय नेताओं और ब्रिटिश सरकार के बीज जो कुछ भी चला इसकी पूरी तफसील दर्ज है।"

वर्तमान समय में राजनीतिक व्यवस्था ने राष्ट्रीय एकता के तत्व, राष्ट्र की परिभाषा और उसके स्वरूप को ही बदल दिया है। भारत को अंग्रेजी शासन से तो आजादी मिली, लेकिन देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आज देश की समस्याओं को उजागर करते हुए सत्ता से प्रश्न करना अपराध बन गया है। इन तमाम चीजों पर प्रश्न करने वाला व्यक्ति राष्ट्र विरोधी कहलाता है। आज देश के हित की बात करना और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना देशद्रोह माना जाने लगा है। आज राष्ट्रवाद प्रतीकों और नारों में सिमट कर रह गया है। वर्तमान सन्दर्भ में प्रश्न उठता है कि क्या स्वतंत्र भारत में स्वतंत्र विचार रखा जा सकता है? इस दिशा में लगातार अभिव्यक्ति की आजादी पर हमले होना लोकतंत्र पर सवाल खड़ा करता है।

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वरूप विशेष रूप से 19वीं शताब्दी से भारतेन्दु युगीन कविताओं में मिलता है। उस समय भारत अंग्रेजों के शासन काल में बंधा हुआ था। इसी समय में राष्ट्र तथा व्यक्ति दोनों की स्वतंत्रता एवं सुरक्षा का भाव प्रत्येक के मन में एक आंदोलन बन कर मचल रहा था। देश के सामने राष्ट्र की सुरक्षा और स्वतंत्रता का प्रश्न था। इस राष्ट्रीय चेतना का असर भारतेन्दु युगीन काव्य में दिखाई देता है। आगे चल कर बदरी नारायण चौधरी प्रेम घन, प्रताप नारायण मिश्र, बाल मुकुंद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुमित्रा नंदन पंत, माखनलाल चतुर्वेदी, उदयशंकर भट्ट, शिवमंगल सिंह आदि कवियों की कविताओं में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इसी श्रेणी में समकालीन कवि डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश' का काव्य भी प्रमुख है। इनकी कविताओं में स्वतंत्रता पूर्व के भारतीय वीरों की वीरता का वर्णन देखने को मिलता है। जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष किया। सन 1857 से 1947 के बीच भारत की आजादी के लिए जितने भी प्रयत्न हुए, उसमें इन वीरों ने अपना सर्वस्व समर्पित किया। कवि चमोला ने अपने काव्य में राष्ट्रप्रेम के विविध रूपों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। उनके काव्य का केन्द्र बिन्दु है- देश प्रेम की भावना और राष्ट्रीय चेतना। अपने काव्य के माध्यम से कवि ने अतीत की गौरवपूर्ण आधारभूमि पर खड़े वीरों को याद करते हुए उनकी वीरता का गुणगान किया है। देश के वीरों के बलिदान, त्याग, संघर्ष, और क्रान्ति की अनंत प्रेरणा से इनका काव्य ओत-प्रोत है। देशभक्तों के बलिदान और उनके देश प्रेम का उल्लेख करते हुए कवि कहता है-

"हो वीर तुम माँ भारती के आक्रोश जन-जन में भरो
डूबती किश्ती रही अब पार सागर के करो
देश सेवा के लिए तुम मर मिटे बलिदान होये
तख्त को यूँ चूम डाला प्रेम जीवन संगिनी सी

शूली चढ़े थे वीर हंस 'जयति जय' की वेद ध्वनि से
देश को स्वाधीन करके यूँ दुलारे चल दिये थे
देश के गम को मिटाकर माँ के प्यारे चल दिये थे।"

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलनों में क्रांतिकारियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मातृभूमि के पावों में बँधी श्रृंखला को तोड़ने के लिए देश भक्तों का संघर्ष और उनकी अखण्ड परम्परा रही है। इन क्रान्तिकारियों के हृदय में क्रांति की ज्वाला थी, जिसके लिए वे हंसते हुए फाँसी के फंदे पर चढ़े और देश की आन-बान-शान के लिए शहीद हो गए। जिन शहीदों के त्याग व बलिदानों से भारत को स्वतंत्रता मिली। कवि चमोला ने अपने काव्य में उन क्रांतिकारियों की वीरता और बलिदान का सजीव चित्रण करने का प्रयास किया है। अपनी कविता उनके नाम में अमर शहीदों के बलिदान का चित्रण करते हुए कहते हैं-

"युगों-युगों तक सूर्य-चंद्र के लुप्त हो जाने पर भी लुप्त न होंगी
तुम्हारी शौर्य गाथाएँ, तुम तो इतिहास के पृष्ठों पर
अटल, अचल और अमर हो गये, उत्तरी ध्रुव की तरह
इतिहास भुला नहीं है, भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु
के हृदय विदारक बलिदानों को और न ही भूला बोस
गाँधी व आजाद के असीमित देश प्रेम को
वे कल भी जिन्दा थे आज भी हैं-व आने वाले भविष्य में भी
जिन्दा रहेंगे सदैव।"

कवि चमोला ने अपनी कविताओं में न केवल देश के वीरों का वर्णन किया है, बल्कि उनके बलिदान पर श्रद्धांजलि भी अर्पित की है। साथ ही ऐसे वीरों को नमन किया है, जिन्होंने अपने प्राणों की आहूति देकर देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कर दिया। जिन वीरों के लिए उनका घर, परिवार, सुख-दु:ख, विश्वास, जीवन, मृत्य, आन-बान-शान सब कुछ देश ही है। इस सन्दर्भ में इनकी नमन कविता प्रासंगिक है। जिसमें कवि कहता है-

"जो देश सेवा में अर्पित कर गये तन-मन-धन
उन सिंह सपूतों को नमन
माँ भारती की स्वाधीनता ही जिनका उद्देश्य,
जिनका दु:ख-दर्द, देश ही जीवन, देश ही मृत्यु
देश ही प्राण, देश ही श्वास, देश ही आश,
देश ही विश्वास, देश ही घर, देश ही बर
स्वाधीनता का ही गूंजता स्वर उन मातृभक्तों को नमन।"

गाँधी जी ने कहा था- "ग्राम-स्वराज की नीव पर टिका था। खादी, चर्खा, स्वावलंबन, स्वदेशी, बहिष्कार, बुनियादी तालीम, स्त्री-शिक्षा, अछूतों की मुक्ति आदि फौरी जरूरतों की उपज थे जो न केवल साम्राज्यवाद औपनिवेशिक हितों पर चोट करते थे बल्कि पराधीन भारत की शोषित और उत्पीडित जनता के मन में राष्ट्रप्रेम एवं हर तरह की गुलामी से मुक्ति की भावना का पोषण भी करते थे।" गाँधी जी राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के ऐसे निर्विवाद नेता के रूप में उभरे जिसे कोई हरा नहीं सकता था। जिसके कारण वह देश के राष्ट्रपिता बने। जिसका कवि चमोला ने भी अपनी कविता हे राष्ट्र पिता तुझको प्रणाम के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इस संदर्भ में कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"हे युग नायक हे राष्ट्र पिता तुझको प्रणाम
हे भारत माँ के श्रवण पुत्र तुझको प्रणाम
हे सत्यव्रती हे प्रेम अहिंसा के पूजक
हे परम संत हे महानिधे शत-शत प्रणाम
सत्य-अहिंसा प्रेम कीर्ति का दीप जलाकर
घर-घर जाकर देश प्रेम का अलख जलाकर
जिस धरती पर आजादी की कलियाँ बोई
महक रही है बापू तेरी वह बगिया प्यारी"

देशप्रेम की भावना मनुष्य में राष्ट्रीयता के भाव को जागृत करती है। जिसके कारण व्यक्ति अपना सर्वस्व अपने देश के लिए समर्पित करता है, और देश को संकट से मुक्त कराता है। इस संदर्भ में वासुदेवशरण अग्रवाल के विचार प्रासंगिक हैं- "पृथ्वी की ही आध्यात्मिक शक्ति राष्ट्र है। मातृभूमि के जागृत चौतन्य का रूप राष्ट्रीयता है।" राष्ट्र प्रेम के सम्बन्ध में इतिहास साक्षी है कि अनेक वीरों, क्रान्तिकारियों, देशभक्तों आदि ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए अपने जीवन को समर्पित किया। इस समर्पित भाव का चित्रण कवि चमोला ने अपनी कविता गीत में बखूबी चित्रित करने का प्रयास किया है।

"धन्य भारत भूमि तेरी माँ सदा जय हो सदा
वीर अपनी गोद में, कितने हे माँ तुमने खिलाये
वीरता की कोख से क्या, लाल ऐसे वीर जाये
स्वतंत्र भारत के लिए जो, मर मिटे बलिदान होकर
उस वीर गौरव के लिए माँ, पथ सदा तूने दिखाये
लेके तेरा इक आसरा ही, वीर फांसी को चढ़े थे

जयति जय का घोष करते, वीर भारत के लड़े थे।"

अंग्रेज भारत में व्यापार के लिए आए थे। परन्तु यहां की परिस्थियों का लाभ उठाकर उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप करना शुरू किया था। उन्होंने भारत को ही गुलाम बना दिया और खुद उनके स्वामी बन गए। देश में विदेशी शासन के विरुद्ध हिंसा एवं रोष उत्पन्न होने लगा, धीरे-धीरे लोग इस विदेशी शासन का विरोध करने लगे और एक विराट आन्दोलन का आरंभ हुआ। जिसे प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा दी गई। 1857 का विद्रोह असफल कहलाया परन्तु यही से अंग्रेजों के खिलाफ क्रांति का आरंभ हुआ जो आगे चलकर पूरे भारत देश में बढ़ता चला गया और जिसके परिणाम स्वरूप भारत को 1947 में स्वतंत्रता मिली। डॉ. राम विलास शर्मा लिखते हैं- "यह षडयंत्र नहीं आन्दोलन था।यह आन्दोलन साधारण नहीं क्रन्तिकारी था। क्रांति असंगठित नहीं थी।" कवि चमोला ने अपनी कविता नमन में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और मोहनजोदड़ो व हड़प्पा जैसी ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हुए कहता है-

"मोहन जोदेड़ो व हड़प्पा के अवशेषों की ही भाँति
ऐतिहासिक अवशेष है आज उनके भी जो
1857 की गदर में या फिर सन 1947 के
स्वाधीनता आन्दोलन में अपनी
प्राणों की बाजी लगा गये थे
जाति, धर्म, व प्रान्त विशेष का प्रतिनिधित्व न कर
भारतीयता का डंका बजाया उन अमर शहीदों को नमन।"

कवि चमोला ने अपने काव्य में केवल भारतीय वीरों और उनकी वीरता का चित्रण ही नहीं किया अपितु उनके परिवार वालों की संवेदनाओं और उनके दर्द का भी चित्रण करने का प्रयास किया है। जब एक माँ से उसका बेटा, पिता से पुत्र, पत्नी से उसका पति, बहन से भाई, बिछड़ता है तो उसकी व्यथा मर्मस्पर्शी होती है। पूरा परिवार उसकी शहादत पर गर्व करता है। परन्तु साथ ही उन्हें इस बात का दु:ख भी होता है कि उन्होंने अपने प्रिय को हमेशा के लिए खो दिया है। कवि ने अपने काव्य की निम्न पंक्तियों में उन परिवार वालों की मन: स्थिति का चित्रण करते हुए कहता है-

"देश सेवा के लिए तुम मर मिटे बलिदान होये
हम नयन में नीर भरकर दीप तव यश के जलाये
देश को स्वाधीन करके यूं दुलारे चल दिये थे,
देश के गम को मिटाकर माँ के प्यारे चल दिये थे,
हमने शरद अरु शीत पावस में सदा आसूं बहाये
बूझ गई थी लौ नयन की पर न थे तुम लौट आये।"

वर्तमान समय में गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, भूखमरी आदि समस्याओं ने पूरे देश को अपनी लपेट में लिया है। साथ ही धर्म और साम्प्रदायिक राजनीति से जूझ रहा है। साम्प्रदायिक ताकते धर्म की आढ़ में आम जनता को अपना गुलाम बनाने की कोशिश कर रही है। जहाँ धर्म का नाम आता है वहां हमारी विवेक शक्ति खत्म हो जाती है। धर्म का नाम सुनते ही हम न्याय और अन्याय में अंतर करना छोड़ देते हैं। परन्तु इस विवेक हीन सोच से हमारे राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता। देश के विकास में वैज्ञानिक सोच का होना अति आवश्यक है। कवि चमोला ने भी देशवासियों से सजग होकर राष्ट्र हित में सोचने एवं साम्प्रदायिक मानसिकता वाले लोगों से बचने का आग्रह किया है। ताकि हमारा राष्ट्र एवं राष्ट्रवासी साम्प्रदायिक तनाव से मुक्त रह सके। चमोला ने भगतसिंह के विचारों से प्रेरित होकर समाज में जागरूकता फैलाने का प्रयास किया। जिस प्रकार भगतसिंह ने अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते हुए कहा था- "यह पूंजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी का असली कारण है उठो और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो... तुम ही तो देश के मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो, सोये हुए शेरों! उठो और बगावत खड़ी कर दो।" कवि चमोला ने अपनी कविता संकल्प की निम्न पंक्तियों में इन्ही विचारों को अभिव्यक्त किया है-

"हम सब मिलकर पूर्व की ही तरह
कल भी, आज भी और आने वाले कल को भी
अपने देश की एकता, धार्मिक-स्वतंत्रता
व सदभावना को खण्डित नहीं होने देंगे
अतीत की 'सोने की चिड़िया' सा महक उठेगा भारत
और सन्ध्या के लाल सूर्य सा पूर्ण होता दिखेगा
हमारा यह संकल्प।"

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कवि चमोला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रवाद एवं देशभक्ति की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंनें अपने काव्य में स्वतंत्रता पूर्व देश की विभिन्न परिस्थितियों का उल्लेख करने के साथ-साथ अंग्रेजी शासन की

नीतियों, शोषण, अत्याचार, गुलामी आदि स्थितियों को अपनी कविता का केन्द्र बिंदु बनाया है। देश के स्वतंत्रता संग्राम में चाहे वह 1857 का संघर्ष हो या फिर 1947 की लड़ाई। जिसमें आम जनता से लेकर जनता के प्रतिनिधि, क्रांतिकारी, आंदोलनकारी व शहीदों के प्रति अपनी संवेदनाएँ अभिव्यक्त की है।

संदर्भ :

1. सईद नकवी वतन में पराया हिन्दुस्तान का मुसलमान, फारोस प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ 81
2. चमोला (डॉ.) दिनेश 'शैलेश' यादों के खंडहर, अलका प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 04
3. वही, पृष्ठ 17
4. वही, पृष्ठ 13
5. श्रीवास्तव (डॉ.) रवि समाज और आलोचन, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, जयपुर एवं दिल्ली पृष्ठ 74.
6. चमोला (डॉ.) दिनेश 'शैलेश' यादों के खंडहर, अलका प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 19
7. मिश्रा (प्रो.) नरेश, आधुनिक हिंदी राष्ट्रीय काव्यधारा, संजय प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 09
8. चमोला (डॉ.) दिनेश 'शैलेश' यादों के खंडहर, अलका प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 08
9. जौहर (डॉ.) ईश्वर, हिंदी उपन्यास साहित्य में राजनैतिक एवं राष्ट्रीय चेतना, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 73
10. चमोला (डॉ.) दिनेश 'शैलेश'. यादों के खंडहर, अलका प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 13
11. वही, पृष्ठ 04
12. प्रेम प्रकाश, कौन देशभक्त? कौन देशद्रोही?, नौजवान भारत सभा, संगठन सचिव, छिन्दर पाल, लुधियाना पंजाब, पृष्ठ 28
13. चमोला (डॉ.) दिनेश 'शैलेश' यादों के खंडहर, अलका प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 06

❖

पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर
मो. 9682162934, ई-मेल : salmaaslam59@yahoo.com

काव्य-मधुबन

प्रियंका सैनी की कविताएँ

भँवर

जख्म बेहतर हो
ये चाहता कौन है
ताजा चीजों की ही तो
कीमत है बाजार में
मुस्कुराते चहेरे
आजमाता कौन है
आँख भर देखा तो
दुनिया बदल गई
ऐसे में
फिर आँखों मे बसाता कौन है
समंदर भी देखो
बस गया आँखों में ही
तेरे जाने से
इतनी गहराईयों से किसी को
चाहता कौन है
रुख तेरा भँवर है
देखें जरा निकल पाता कौन है
बंधने की आदत मुझे नहीं
जन्नत सी जिन्दगी चाहता कौन है...

❖

तेरी हँसी

तेरी हँसी से ही थी क्या कायनात में रुबाई
उफ्फ अब वो हँसना
और हम लिखना भूल गए हैं

की लफ्जों से खुद को मौन कहने वाला जादूगर
चुप हो चला है
और हम शब्दों को चखना भूल गए हैं

की चाहत मैं तेरी बेवफाई है मयस्सर
गुल खिले हैं उनके आँगन में बहुत
और हम खुशबुओं को आगोश में लेना भूल गए हैं

की आबाद रहो तुम
और मैं बर्बाद हो जाऊँ
खता की है तो
वफाएँ भी निभाऊं
मुहब्बत को वो खता कहते हैं
और गुनहगार को सजा देना भूल गए हैं ...

❖

स्वंत्रत लेखन,
1007, मेपल बी, पैरामाउंट सिम्फनी, क्रोसिंग्स रिपब्लिक गाज़ियाबाद
मो. 8468880944 ई-मेल : priyanka9085@gmail.com

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

पंकज कुमार सिंह

"हमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता चाहिए। स्वतंत्रता में आत्मानुभूति का होना महत्त्वपूर्ण है। कारण यह है कि संस्कृति शरीर में प्राण की भांति राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुभव की जा सकती है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करते समय मानव अपनी जीवनदृष्टि से जो रचना करता है, उसमें उसकी संस्कृति दिखाई देती है। संस्कृति कभी-भी गतिशून्य नहीं होती। नदी के प्रवाह की भांति वह गतिमान रहती है। उस प्रवाह के साथ ही उसके कतिपय गुण-विशेषों का भी निर्माण होता है। यह सांस्कृतिक दृष्टिकोण उसके साहित्य, कला, दर्शन, स्मृतिशास्त्र तथा सामाजिक इतिहास सबमें व्यक्त होता रहता है। हम स्वतंत्र हो गए हैं तो संस्कृति का यह प्रवाह फिर से बह निकलना चाहिए। राष्ट्रभक्ति की भावना भी इसी संस्कृति से उत्पन्न होती है और यही संस्कृति राष्ट्र की सीमाओं को लांघ कर मानव जाति के साथ उस राष्ट्र की एकात्मकता का नाता जोड़ती है। इसीलिए सांस्कृतिक स्वतंत्रता परमावश्यक है।"

भारतवर्ष विश्व की महान संस्कृतियों एवं जातियों की पावन संगमस्थली है। इसकी उर्वर माटी में जिन-जिन संस्कृतियों का बीजवपन हुआ, वे समस्त संस्कृतियाँ मिलकर आज के भारत के निर्माण में अपना योग दे गईं। वस्तुतः आज भारतवर्ष की जो तस्वीर हमारे सामने है उसमें विराट एकता एवं अद्भुत सामंजस्य की झाँकी देखी जा सकती है। भारतीय संस्कृति के आदि आचार्य पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्ध 'अशोक के फूल' में लिखा है-

"विचित्र देश है यह! असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, यक्ष आये, गन्धर्व आये- न जाने कितनी मानव जातियाँ यहाँ आयीं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गयीं। जिसे हम हिन्दू रीति-नीति कहते हैं, अनेक आर्य और आर्येत्तर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है।"[1]

जहाँ तक 'राष्ट्रवाद' की बात है तो गौरतलब है कि यह शब्द औपनिवेशिक काल के समानान्तर उपजा और क्रमशः इसकी साख बढ़ती गयी। अंग्रेजी पराधीनता ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूरब से लेकर पश्चिम तक विभिन्न शाखाओं में अनगिनत जातियों व बोलियों को धारित समाज को एकजूट होने का अवसर दिया, जिसके पीछे एकता का महान दर्शन छिपा था। अन्य शब्दों में कहें तो क्रान्तिकारी नेताओं ने राष्ट्रवादी भावनाओं की नींव पर अनेकता में एकता की अलख जगायी। भारतवर्ष की विशाल सांस्कृतिक विरासत एवं गौरवशाली अतीत की स्मृति को इन नेताओं ने अपनी प्रतिभा के बल पर ज़िंदा किया और तत्कालीन साहित्यकारों ने जन-जन के हृदय में स्वतंत्रता की सुलगती चिंगारी को अंगार बनने को मजबूर किया। कहना न होगा कि हमारे देश में अनेकों विविधताएँ हैं, इसके बावजूद हमारी सांस्कृतिक विरासत ने हमें सदैव एकता का पाठ पढ़ाया है। **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** व **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** जैसे मंत्र हमारी नींव के पत्थर हैं।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से आशय है कि वह देश जिसकी सीमा में अनेक विविधिताओं के बावजूद उसकी सांस्कृतिक एकता उसे एक राष्ट्र के रूप में परिभाषित करती हो, उसमें विभिन्न भाषाओं व बोलियों को बोलने वाले लोग हो सकते हैं, उसमें विभिन्न पंथ व धर्म के अनुयायी भी हो सकते हैं लेकिन उनकी संस्कृति व सभ्यता उन्हें एक देश के रूप में बाँधे रखती है। भारतीय संस्कृति के विराट स्वरूप को रेखांकित करते हुए कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'नील कुसुम' में लिखा है-

"भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश नहीं, शील यह भूखण्ड भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है।

निखिल विश्व की जन्मभूमि वन्दन को नमन करूँ मैं,
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं!"[2]

जब हम राष्ट्र के आगे 'सांस्कृतिक' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब तुरंत ही हमारा ध्यान राष्ट्र जनों के उन जीवन मूल्यों की ओर जाता है जो शाश्वत ही नहीं, राष्ट्र जीवन को अहम् से वयम् की ओर और सयम् से ओम तत्सत् की ओर ले जाने वाले हैं। राष्ट्र जीवन को पूर्ण एवं सार्थक बनाने वाले हैं। इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था जनित निष्ठा ही राष्ट्रजनों को राष्ट्रीय बनाती है। इस तरह राष्ट्रीयता का मूल स्वरूप राजनीतिक न होकर सांस्कृतिक है। निश्चित भू-भाग तथा निश्चित निष्ठावान जन तो भौतिक उपकरण हैं, संस्कृति ही आध्यात्मिक, गुणात्मक तथा शाश्वत जीवन-मूल्य है, जिनका अनुसरण करती प्रजा उसे राष्ट्र का रूप प्रदान करती है। भारत की विराट संस्कृति अजर-अमर है। इसकी जड़ें इतनी गहराई तक गयी हैं कि महाकवि इकबाल को कहना पड़ा-

"यूनान-ओ-मिस्र-ओ-रूमा, सब मिट गए जहाँ से।
अब तक मगर है बाकी, नाम-ओ-निशाँ हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जहाँ हमारा।।"[3]

भारतीय संस्कृति की प्राचीनता का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसने यूनान-मिस्र-रोम का उत्थान और पतन दोनों देखा है। हमारी राष्ट्रवादी संस्कृति में भारतवर्ष की कल्पना 'भारतमाता' के नाम से की जाती है। पराधीनता की भयावह स्थिति में 'भारतमाता' के धूल भरे आँचल का चित्रांकन का प्रयास कविवर सुमित्रानंदन पंत ने किया है-

"भारतमाता
ग्रामवासिनी।
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला-सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी।"[4]

भारत को 'किसानों का देश' भी कहा जाता है। अभी भी इसकी 60 फीसदी से अधिक जनसंख्या गाँवों में रहती है और जीवकोपार्जन हेतु बहुत हद तक खेती पर निर्भर है। यही कारण है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के क्रान्तिकारी नेताओं ने 'स्वदेशी' का नारा देते हुए अपने देश को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता दिलाने का अद्वितीय प्रयास करते हुए हमें स्वावलम्बी बनाया था। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भी मनुष्य और राष्ट्र के समुचित विकास हेतु आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता को अत्यावश्यक माना है। उन्होंने अपने एक लेख में लिखा है-

"हमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता चाहिए। स्वतंत्रता में आत्मानुभूति का होना महत्त्वपूर्ण है। कारण यह है कि संस्कृति शरीर में प्राण की भांति राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुभव की जा सकती है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करते समय मानव अपनी जीवनदृष्टि से जो रचना करता है, उसमें उसकी संस्कृति दिखाई देती है। संस्कृति कभी-भी गतिशून्य नहीं होती। नदी के प्रवाह की भांति वह गतिमान रहती है। उस प्रवाह के साथ ही उसके कतिपय गुण-विशेषों का भी निर्माण होता है। यह सांस्कृतिक दृष्टिकोण उसके साहित्य, कला, दर्शन, स्मृतिशास्त्र तथा सामाजिक इतिहास सबमें व्यक्त होता रहता है। हम स्वतंत्र हो गए हैं तो संस्कृति का यह प्रवाह फिर से बह निकलना चाहिए। राष्ट्रभक्ति की भावना भी इसी संस्कृति से उत्पन्न होती है और यही संस्कृति राष्ट्र की सीमाओं को लांघ कर मानव जाति के साथ उस राष्ट्र की एकात्मकता का नाता जोड़ती है। इसीलिए सांस्कृतिक स्वतंत्रता परमावश्यक है। उसके बिना स्वतंत्रता व्यर्थ होगी और वह टिकेगी भी नहीं।"[5]

स्पष्ट है कि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अंकुर औपनिवेशिक काल के दौरान तेजी से पनपा। पराधीनता ने आम जनमानस को अपनी सांस्कृतिक विरासत की स्मृति दिलाकर क्षयातुर संस्कृति के नवसृजन का मार्ग प्रशस्त किया। देश को एकता में बांधने हेतु भारतवर्ष की पवित्र भूमि को 'भारतमाता' कहा गया, जिसकी अस्मिता की रक्षा हेतु देश के सपूतों ने अपने प्राणों की आहुति देने में लेशमात्र भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। 'भारतवर्ष' को जननी का रूप देना ही हमारे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का प्रारम्भिक रूप है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'मातृभूमि' में भारतमाता की सुंदर तस्वीर उकेरने का सफल प्रयास किया है-

"नीलाम्बर परिधान, हरित पट पर सुन्दर है
सूर्य चंद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डन हैं
बन्दीजन खगवृंद शेष फन सिंहासन है
करते अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस देश की
हे मातृभूमि तू सत्य है सगुण मूर्ति सर्वेश की।"[6]

गुप्त जी के लिए स्वदेश सर्वेश की मूर्ति है, जिसमें नदियाँ, फूल-तारे, हरित पटपर, खग वृन्द, पयोद सब शामिल है। इसी दृष्टि को उन्होंने 'भारत-भारती' में शब्द दिया है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से देशवासियों

को अतीत की गौरवशाली स्मृतियों का याद दिलाकर उन्हें चैतन्यावस्था तक पहुँचाया है। अपने प्रसिद्ध नाटक 'चंद्रगुप्त' में विदेशी पात्र कार्नेलिया के मुख से अपने देश का गुणगान उन्होंने इन शब्दों में कराया है–

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अंजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।"[7]

वस्तुतः राष्ट्र निर्माण की दिशा में जब हम आगे कदम बढ़ाते हैं तो हम तमाम उतार-चढ़ाव से रूबरू होते हैं। आजादी के बाद उत्पन्न समस्याओं ने अवश्य ही हमारी प्रगति में अवरोध उत्पन्न किया है लेकिन हम सांस्कृतिक रूप से कभी भी अलग-थलग नहीं पड़े। हमारी राष्ट्रवादी सोच एवं भावनाएँ हमारी संस्कृति से आलम्बन पाती रही हैं। यही कारण है कि विषम परिस्थिति में भी हम भारतवासी समवेत स्वर में **'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा'** का अमर जयघोष करने लगते हैं। हम सभी की धार्मिक मान्यताएँ अलग-अलग हैं, यहाँ अनेक भाषा-भाषी लोग हैं तथापि हमारी राष्ट्रवादी चेतना हमें सदैव **'आवाज दो! हम एक हैं'** का शंखनाद कराती है। हमारे मूल्य हमारी संस्कृति की उपज हैं। यही कारण है कि हमें अपनी संस्कृति की रक्षा करनी होगी क्योंकि संस्कृति के बगैर हम अपने अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते। 'भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा' नामक निबंध में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपनी संस्कृति की रक्षा का पाठ पढ़ाया है, उनके शब्दों में–

"हमारे देश को दीर्घ प्रयासों के बाद स्वतंत्रता मिली है। इसलिए इस राजनीतिक स्वतंत्रता को जो सुरक्षित रखे, ऐसी व्यवस्था हमें करनी चाहिए, यही हमारा प्रथम लक्ष्य है। दूसरी बात, हमारी जनतंत्रीय प्रणाली जिसमें संकट पड़ जाए या जो उसके लिए बाधक सिद्ध हो, ऐसा आर्थिक नियोजन हम न करें। तीसरा लक्ष्य है, हमारे सांस्कृतिक मूल्य हमारे राष्ट्र जीवन के लिए ही नहीं, संसार भर के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं, अतः उनकी रक्षा करनी है।"[8]

कहना न होगा कि हमने जिन सांस्कृतिक मूल्यों को अपनी विरासत से ग्रहण किया है, उन्होंने सदैव ही एकता की बात दोहराई है। उत्तर में महान हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक एवं पूर्व में अरुणाचल से लेकर पश्चिम में गुजरात तक की परिधि में हम विभिन्न मतानुयायी हो सकते हैं, हमारे अलग-अलग धर्म/पंथ हो सकते हैं, लेकिन ज्यों ही हम पर कोई संकट के बादल आएं हमें एकजूट होकर अमुक संकट से टकराना होगा (ये आदर्श हमारी संस्कृति की ही पहचान है। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी 'राष्ट्रगान' में पंजाब से लेकर उत्कल तथा बंगदेश (बंगाल) तक और हिमाचल से लेकर विंध्य पर्वत के पार उच्छल जलधि-तरंगों से अभिषिक्त सुदूर दक्षिणात्य प्रदेशों तक व्याप्त भारत के अखण्ड रूप और उसके भाग्यविधाता का स्तवन किया है। कवि के शब्दों में भारत विभिन्न जातियों-प्रजातियों तथा धर्मों के मानवों का संगम-तीर्थ है, जिसका जीवन व्यापार एक ही भाग्य-विधाता के द्वारा परिचालित है। इसी बात को महात्मा गाँधी ने भी अपने 'सवधर्म समभाव' सिद्धान्त में स्वीकार किया है। अस्तु, राष्ट्र-भावना की यह पुण्यसलिला वैदिक ऋचाओं से उद्भूत होकर वर्तमान युग के संस्कारवान् कवि-कलाकारों-चिंतकों की वाणी में अखण्ड रूप से प्रवाहित है। कविवर गिरिजा कुमार माथुर की पंक्तियाँ बार-बार हमें अपनी संस्कृति की रक्षा करने हेतु सदैव सावधान रहने की सीख तो देती ही हैं साथ में हमारी गौरवगाथा को भी अभिव्यक्त करती हैं, जिनका उल्लेख अप्रासंगिक न होगा–

"आज जीत की रात पहरुए सावधान रहना
खुले देश के द्वार अचल दीपक समान रहना
X X X
ऊँची हुई मशाल हमारी आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज कमजोर हमारा घर है
किन्तु आ रही नयी ज़िंदगी यह विश्वास अमर है
जन गंगा में ज्वार लहर तुम प्रवहमान रहना।
पहरुए सावधान रहना।"[9]

संदर्भ :

1. जौहर (डॉ.) ईश्वर, हिंदी उपन्यास साहित्य में राजनैतिक एवं राष्ट्रीय चेतना, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 72
1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन, 2007, पृ. 6
2. दिनकर, रामधारी सिंह, नील कुसुम, लोकभारती प्रकाशन, 2010, पृ. 57
3. इकबाल, मुहम्मद, सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा, गीत
4. पंत, सुमित्रानंदन, भारतमाता, ग्राम्या, लोकभारती प्रकाशन, 2001, पृ. 21
5. सिंह, शरद, दीन-दयाल उपाध्याय, राष्ट्रवादी व्यक्तित्व, सामयिक पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2016, पृ. 166
6. गुप्त, मैथिलीशरण, मातृभूमि, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1994, पृ. 154
7. प्रसाद, जयशंकर, चंद्रगुप्त, लोकभारती प्रकाशन, 2011, पृ. 72
8. सिंह, शरद, दीन दयाल उपाध्याय, राष्ट्रवादी व्यक्तित्व, सामयिक पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2016, पृ. 172
9. माथुर, गिरिजा कुमार, पंद्रह अगस्त : 1947, धूप के धान, भारतीय ज्ञानपीठ, 1991, पृ. 2

❖

शोधार्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
फोन नं. : 7065848430

प्रवासी भारतीय समुदाय में सांस्कृतिक विविधता

डॉ. मुन्ना लाल गुप्ता

भारतीय डायस्पोरा के बारे में शब्दावली संबंधी पहेली का संबंध न केवल भारतीयों और विदेशों में उनके समुदायों के लिए डायस्पोरा शब्द के प्रयोग से है, बल्कि विशेषण 'इंडियन' में निहित 'भारत' के विचार से भी है। यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि जिसे भारत कहा जाता है, उसकी सीमा पिछले सौ वर्षों के दौरान एक जैसी नहीं रही है। इस प्रकार, विभाजन से पहले (1947 में) भारत छोड़ने वालों और उनके वंशजों के लिए, संदर्भ बिंदु उपमहाद्वीपीय भारत है (जिसमें वर्तमान पाकिस्तान और बांग्लादेश शामिल हैं) जबकि विभाजन के बाद भारत छोड़ने वालों के लिए, यह भारत का राजनीतिक राज्य है जैसा कि अभी मौजूद है। दूसरे शब्दों में, सैद्धान्तिक रूप से, भारतीय डायस्पोरा एक सापेक्षवादी रचना (रेलेटिविस्टक कंस्ट्रक्ट) है और यह अभिव्यक्ति/प्रदर्शन में विषमांग/विजातीय (हेट्रोजीनस) है। (जयराम, एन: 2001, 2004)

प्रवासी भारतीय उन भारतीय समुदायों से मिलकर बना है, जो इतिहास के विभिन्न कालखंडों में क्रमिक रूप में अलग-अलग व्यवस्थाओं के अंतर्गत भारत से विश्व के अनेक स्थानों के लिए प्रवासित हुए और वहीं बस गए। इन्हें आज भारतीय डायस्पोरा/अप्रवासी भारतीय (नॉन रेजिडेंट इंडियन)/नया डायस्पोरा/ पुराना डायस्पोरा/प्रवासी भारतीय भारतवंशी (पर्सन्स ऑफ़ इंडियन ओरिजिन) जैसे नामों से भी जाना जाता है। यह अनुमान है कि साठ लाख भारतीय नागरिकों के अलावा, पूरी दुनिया में भारतीय मूल के दो करोड़ से अधिक लोग हैं। (भारत सरकार 2001: 680) अगर 10,000 को न्यूनतम आंकड़े के रूप में लेते हैं तो प्रवासी भारतीयों का निवास पचास देशों में हैं, और सात अन्य देशों में, उनकी संख्या 5,000 और 10,000 के बीच होगी। छह देशों (मलेशिया, म्यांमार, सऊदी अरब, दक्षिण अफ्रीका, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका) में इनकी संख्या एक लाख से अधिक होने का अनुमान है। भारतीय मूल के लोग फिजी (49 फीसदी), गुयाना (53 फीसदी), मॉरीशस (74 फीसदी), त्रिनिदाद और टोबैगो (40 फीसदी) और सूरीनाम (37 फीसदी) में सबसे बड़ा जातीय समुदाय बनाते हैं। वे हांगकांग, मलेशिया, सिंगापुर और श्रीलंका जैसे एशियाई देशों और दक्षिण अफ्रीका एवं पूर्वी अफ्रीका में पर्याप्त अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में हैं। ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, यू.के. और यू.एस. में भी इनकी महत्वपूर्ण उपस्थिति है। (लाल, ब्रिज, वी: 2006)

भारतीय डायस्पोरा के बारे में शब्दावली संबंधी पहेली का संबंध न केवल भारतीयों और विदेशों में उनके समुदायों के लिए डायस्पोरा शब्द के प्रयोग से है, बल्कि विशेषण 'इंडियन' में निहित 'भारत' के विचार से भी है। यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि जिसे भारत कहा जाता है, उसकी सीमा पिछले सौ वर्षों के दौरान एक जैसी नहीं रही है। इस प्रकार, विभाजन से पहले (1947 में) भारत छोड़ने वालों और उनके वंशजों के लिए, संदर्भ बिंदु उपमहाद्वीपीय भारत है (जिसमें वर्तमान पाकिस्तान और बांग्लादेश शामिल हैं) जबकि विभाजन के बाद भारत छोड़ने वालों के लिए, यह भारत का राजनीतिक राज्य है जैसा कि अभी मौजूद है। दूसरे शब्दों में, सैद्धान्तिक रूप से, भारतीय डायस्पोरा एक सापेक्षवादी रचना (रेलेटिविस्टक कंस्ट्रक्ट) है और यह अभिव्यक्ति/प्रदर्शन में विषमांग/विजातीय (हेट्रोजीनस) है। (जयराम, एन: 2001, 2004)

पिछली आधी सदी में विदेशों में रह रहे भारतीय समुदायों पर अध्ययन (जैन ग्रंथ सूची: 1993, जयराम: 2009 लाल: 2006) पुष्टि करते हैं कि भारतीय प्रवासी एक विषम और जटिल घटना है, जिसके अंतर्गत विविध चरण, स्वरूप और प्रक्रियाएं शामिल हैं। इसलिए भारतीय डायस्पोरा को परिभाषित करने के पहले इसके विविधता से संबंधित विविध पक्षों को देखना आवश्यक है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इसकी विविधता के अधिक से अधिक पहलुओं को हम जितना हो सके, उतने दृष्टिकोणों से समझने की कोशिश करें ताकि प्रवासी भारतीय समुदायों से संबंधित कोई सिद्धांत बनाने के लिए सही आंकड़े और निष्कर्ष के निर्माण के लिए हममें पर्याप्त समझ हो।

भारतीय डायस्पोरा में विविधता, एकरूपता के बजाय उसके अंदर की अनेकरूपता के अस्तित्व को संदर्भित करती है। लॉडेन (1996) ने विविधता के प्राथमिक और द्वितीयक आयामों के बीच अंतर किया है। प्राथमिक आयामों के अंतर्गत नस्ल, आयु, लिंग और नृजातीयता जैसी मुख्य विशेषताएं शामिल हैं जिन्हें हम बदल नहीं सकते हैं और हमारे स्वयं के निर्माण के लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं। धर्म, भाषा, शिक्षा और आय जैसे आयामों को हमारी आत्म-पहचान के लिए अधिक परिवर्तनशील और कम प्रभावशाली रूप में देखा जाता है। परन्तु, प्रवासी समुदायों के अध्ययन में यह द्विभाजन समस्याग्रस्त है। हालांकि एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अपना धर्म बदल सकता है, लेकिन डायस्पोरा में धार्मिक जुड़ाव संबंधी पहचान एक महत्वपूर्ण मार्कर/चिन्ह है। उदाहरण के लिए, त्रिनिदाद में हिन्दू से धर्मान्तरित प्रेस्बिटेरियन एक समुदाय हैं, जो न केवल हिंदुओं, मुसलमानों और अन्य ईसाई संप्रदायों से अलग है, बल्कि अन्य प्रेस्बिटेरियन से भी। इस प्रकार शिक्षा, व्यवसाय और आय के संदर्भ में वर्ग विभाजन के बारे में एक ही बात कही जा सकती है; एक तरफ पेशेवर और उच्च-आय वाले प्रवासी और दूसरी ओर मजदूर वर्ग और निम्न-आय वाले प्रवासी।

थॉमस (1999) किसी भी समाज की आबादी में अंतर और समानता दोनों के महत्व पर जोर देते हैं। मतभेदों या एक या अन्य विभेदक विशेषता पर अत्यधिक जोर देकर (जाति, धर्म या नृजातीयता जैसे पहचान चिह्न) अक्सर समूहों या समुदायों को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा किया जाता है। इसके कुछ उदाहरण हैं जिनमें भारतीय प्रवासी समुदाय शामिल हैं; त्रिनिदाद में एफ्रो-ट्रिनिडाडियन और इंडो-ट्रिनिडाडियन या दक्षिण अफ्रीका में अफ्रीकी और भारतीयों के बीच संघर्ष (प्रमुख पहचान चिन्ह/मार्कर के रूप में नस्ल पर अत्यधिक जोर), मलेशिया में हिंदू तमिलों और मुस्लिम मलय के बीच (पहचान चिह्न के रूप में धर्म और नृजातीयता पर अत्यधिक जोर), फिजी में भारतीयों और मूल निवासियो (काईबीती) के बीच (प्रमुख पहचान चिह्न के रूप में नृजातीयता), त्रिनिदाद में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच संबंध और मॉरीशस में भोजपुरी और तमिल प्रवासियों के वंशजों के बीच के मामले भी इसी प्रकार के हैं।

समाजशास्त्रियों ने एक व्यक्ति के जीवन विकल्पों को आकार देने वाले किसी समाज में उपस्थित सामाजिक-आर्थिक असमानताओं की ओर इशारा किया है। (जयराम 1987: 23-53) समाज के सदस्यों के रूप में, लोग वर्चस्व और अधीनता संबंधी इन असमानताओं और सत्ता संबंधों को आत्मसात करते हैं और उन्हें आधिपत्य/उत्पीड़न या यहां तक कि वाद (नस्लवाद की तरह) तक ले जाते हैं। इतिहास अधीनस्थ समूहों के प्रभावी मानदंडों और भाषा में समाहित करने के प्रयासों के उदाहरणों से भरा है और इन समूहों ने अपने प्रमुख समूह के सामाजिक-सांस्कृतिक आधिपत्य (नस्लवाद) का मुकाबला करने के लिए अपनी पहचान पर जोर दिया। प्रवासी भारतीय समुदायों के बीच सांस्कृतिक पुनर्जागरण की राजनीति (जयराम: 2003, मुनासिंघे: 2001) गंतव्य भूमि के समुदाय के वर्चस्व के परिणाम के रूप में समझी जा सकती है। विदेशों में प्रवासी समुदायों के बीच स्वभूमि के साथ जुड़ाव और पूर्वज परंपरा और संस्कृति के पुनरुद्धार को इस संदर्भ में समझा जाना चाहिए। (पारेख एवं अन्य: 2003)

भारतीय डायस्पोरा/प्रवासी भारतीयों के संदर्भ में, सांस्कृतिक विविधता के कई आयाम हैं। भारतीय डायस्पोरा में विविधता का प्रारंभिक आयाम उनका भारत से प्रवासन के इतिहास और प्रवासन के स्वरुप से संबंधित है। विदेशों में भारतीयों के प्रारंभिक अप्रवास की अवधि (पूर्व-औपनिवेशिक, औपनिवेशिक, या स्वतंत्रता के बाद) और उनके अप्रवासन की प्रकृति/स्वरुप (अपराधी/सिद्धदोष प्रवासन, अनुबंधित श्रम प्रणाली, कंगनी-मेस्त्री या मुक्त प्रवासन) से जुड़ी है। पुराना डायस्पोरा (जो अब तक पांच या अधिक पीढ़ियों पुराने हैं) का औपनिवेशिक युग के दौरान ज्यादातर प्रवासन गुयाना, मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम और त्रिनिदाद और आजादी के बाद जिन्हें नवीन डायस्पोरा (जो मुश्किल से तीन पीढ़ियों पुराना है) कहा जाता है, उनका ज्यादातर प्रवासन ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अमेरिका, कनाडा और यू.के. के लिए हुआ। अमेरिका, कनाडा और यू.के.

के नए प्रवासी पुराने प्रवासीयों पर श्रेष्ठता का अध्यारोपण करते रहे हैं।

प्रवासी भारतीय समुदायों में प्रवासन की धाराओं से उत्पन्न विविधता का भी एक आयाम है। कहीं-कहीं इनके हिंसक संघर्षो के कारण भारतीय समुदाय का दमन भी हुआ है। इसके परिणाम स्वरूप भारतीय समुदाय का द्वितीयक/तृतीयक रूप में पलायन भी हुआ है, जैसे: इंडो-गुयाना के लोग उत्तरी अमेरिका, हिंदुस्तानी सूरीनामी के भारतवंशी नीदरलैंड, पूर्वी अफ्रीकी सिख और गुजराती ब्रिटेन के लिए और इंडो फिजियन लोग ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के लिए प्रवासित होने पर विवश हुए/हो रहे हैं। इस कारण पहली पीढ़ी के प्रवासी समुदाय और द्वितीयक/तृतीयक रूप में प्रवासित होकर आनेवाले भारतीयों के बीच संवाद की परिस्थिति बनी। इस प्रकार की संवाद की परिस्थिति ने प्रवासी भारतीयों के बीच विविधता को समझने के लिए नए पहलुओं को सामने लाया है।

यह सर्वविदित है कि भारत विशाल सामाजिक-सांस्कृतिक विविधताओं का देश है। इस देश के लोग विभिन्न धर्मों और संप्रदायों, जनजातियों और जातियों, परिवार के पैटर्न और रिश्तेदारी प्रणाली, भाषाएं और बोलियां, भोजन प्रणाली और आहार प्रथाएं, पोशाक शैली, पर्व, त्यौहार, संगीत और नृत्य, रीति-रिवाज, परंपराओं जैसे सांस्कृतिक तत्वों से जुड़े हैं। भारतीय जीवन की इन विविधताओं को अपने जीवन के हिस्से के रूप में (जिन्हें सामाजिक-सांस्कृतिक गठरी भी कहा जाता है) स्वभूमि से जुड़ी इन सांस्कृतिक तत्वों की गतिशीलता ने भारतीय प्रवासी समुदायों के बीच सांस्कृतिक विविधता को जन्म दिया है। इन सांस्कृतिक तत्वों में परिवर्तन का क्रम और स्वरुप कई कारकों पर निर्भर करता है। इन कारकों में शामिल हैं: प्रवासित लोगों की संख्या, प्रवासी समुदाय की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति और मेजबान/गंतव्य देशों (होस्ट कंट्री) में प्रवासी भारतीयों के बसने से संबंधित सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष और अनुकूलन से संबंधित अनुभव। प्रवासी समुदायों के सामाजिक-सांस्कृतिक अनुभव को समझने के लिए सैंडविच कल्चर (अटल: 2004), हाइब्रिड कल्चर (शुक्ल: 2005) और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की राजनीति (जयराम: 2003) जैसी महत्वपूर्ण अवधारणाएं विकसित हुई हैं।

प्रवासी भारतीयों के बीच में क्षेत्रीय/भाषाई विविधता बहुत ही स्पष्ट हैं। औपनिवेशिक काल में, संयुक्त प्रान्त से अनुबंधित श्रमिक के रूप में फिजी, मॉरिशस, गुयाना, सूरीनाम और दक्षिण अफ्रीका में प्रवासित भारतीय अपनी पूर्वज भाषा फ़िजी हिंदी, समुद्रपारीय भोजपुरी हिंदी, पुरनिया हिंदी, सरनामी और कलकतिया बात बोलते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक भाषाई/क्षेत्रीय प्रवासी भारतीय समुदायों का भाषाई-क्षेत्रीय सांस्कृतिक संगठन हैं। इन भाषाई/क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से ये प्रवासी भारतीय अपनी पूर्वज देश की सांस्कृतिक और सभ्यागत धरोहर से जुड़े रहते हैं। प्रवासी भारतीयों से संबंधित विश्व में ऐसे भाषाई/क्षेत्रीय संगठनों में प्रमुख हैं: मराठी महामंडल, आंध्र सभा, अंतरराष्ट्रीय तेलगू संस्था, द वर्ल्ड तमिल कांफ्रेंस, विश्व तमिल कन्फेडरेशन, विश्व गुजराती समाज, गुजरती समाज, उत्तरी अमेरिका का भोजपुरी संगठन (बाना), नार्थ अमेरिका बंगाली कांफ्रेंस आदि। (भट्ट और नारायण: 2010, भट्ट और भास्कर: 2011)

1968 में जब मॉरीशस को स्वतंत्रता मिली, तब तमिल, तेलुगु, मराठी लोगों ने अपनी पूर्वज भाषाओं के पैटर्न को आधार बनाकर पहचान को व्यक्त करना शुरू कर दिया। यह सच है कि इन समुदायों ने अपनी पूर्वज भाषा में कोई दक्षता हासिल नहीं की है न ही इस भाषा का उपयोग आधिकारिक संचार/संवाद के लिए किया जाता है और न ही घरेलू बोलचाल में। यद्यपि, इसने सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया है। तमिल और तेलुगु संस्कृतियों को बढ़ावा देने में उनकी स्वभूमि/पूर्वज भूमि/जन्मभूमि की यात्राओं के अलावा, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विशेष रूप से टेलीविजन और सिनेमा ने योगदान दिया है।

उत्तर भारत और दक्षिण भारत से भर्ती किए गए गिरमिटिया मजदूर विभिन्न भाषाई और जाति समूहों के थे। हालांकि, उनकी जाति और भाषाई संबद्धता के बावजूद, उपनिवेशों में उदाहरण के लिए, ब्रिटिश गुयाना, मॉरीशस और त्रिनिदाद में उनके समूह की पहचान उस बंदरगाह से बनी जहाँ से वे भारत से रवाना हुए थे। इस प्रकार, जो कलकत्ता (अब कोलकाता) से रवाना हुए, वे कलकतीया कहलाए और जो मद्रास (अब चेन्नई) से नौकायन कर रहे थे, मद्रासी कहलाए। यह दिलचस्प है कि ये समूह पहचान प्रवासी समुदायों में आज तक जीवित हैं। (जयराम 2006: 166-7)

फ्रांस के विदेशी आधिपत्य वाले क्षेत्रों में विशेष रूप से पश्चिमी हिंद महासागर में रीयूनियन, गुआदेलूप और मार्टीनिक के फ्रेंच कैरेबियाई द्वीपों में ये फ्रांसिसी बोली वाले फ्रैंकोफोन भारतीय समुदाय 150 वर्ष से अधिक पुराने हैं। ये फ्रैंकोफोन भारतीय समुदाय विश्व के अन्य क्षेत्र में निवास करने वाले प्रवासी भारतीय समुदाय से कई स्तरों

पर विविधता प्रदर्शित करते हैं। ये श्रमिक मुख्यत: फ्रेंच कोलोनियों यथा: पांडिचेरी (अब पुडुचेरी), करैकल, चांदनागोर और माहे से थे। (लाल, ब्रिज वी: 2006)/प्रवासी भारतीय समुदायों में एक ही धर्म को मानने से एक सजातीय समुदाय का निर्माण नहीं होता क्योंकि प्रत्येक धार्मिक समुदाय कई पंथ, पूजा-कर्मकांड की पद्धति और सांस्कृतिक विविधताओं से चिह्नित होते हैं (उदाहरण के लिए, 1990 की जनगणना के अनुसार, त्रिनिदाद और टोबैगो में सभी मुसलमानों का 95 प्रतिशत देश की आबादी का लगभग 6 प्रतिशत भारतीय मूल के थे (केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय: 1994)। वे इस्लाम की अलग-अलग व्याख्याओं के साथ कम से कम पांच अलग-अलग समूहों से संबंधित हैं; परंपरावादी, तब्लीग जमात, वहाबी सुन्नी, आधुनिकतावादी और शिया। इस जुड़वां द्वीप वाले देश में उस धर्म को मानने वाले लगभग 6 प्रतिशत मुस्लिम लोगों के लिए मुसलमानों के सत्रह संगठन हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि मुसलमान (त्रिनिदाद में) समाजों में अन्य धार्मिक संप्रदायों की तुलना में आपस में अधिक संघर्ष और तनाव की स्थिति है। (मुस्तफा: 2004) त्रिनिदाद में भी हिंदुओं के बारे में इसी तरह का अवलोकन किया जा सकता है। (वर्टोवेक: 1992) इसी प्रकार, मॉरिशस, फिजी में भारतवंशी हिन्दू समाज कई धार्मिक पंथों यथा: सनातनी, आर्य समाजी, कबीर पंथी, रविदासी, शिवनारायण संप्रदाय, सतनामी, सिख आदि में विभाजित हैं।

प्रवासी भारतीयों में विविधता का एक और आयाम इनके द्वारा सामाजिक-सांस्कृतिक गठरी के एक हिस्से के रूप में साथ लिए जाने वाली सामाजिक संस्थाएं थीं जिसने मेजबान देश के नए परिवेश में अनिवार्य रूप से परिवर्तन की ताकतों का सामना किया। इसलिए, एक प्रवासी समुदाय का अध्ययन करते समय, धारण (रिटेंशन) बनाम परिवर्तन (चेंज) की पहेली को हल करने की तुलना में सामाजिक संस्थाओं के 'रूपांतरण' (मेटामोर्फोसिस) पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। औपनिवेशिक काल में भारत से प्रवासित हुए समुदायों में हिंदू धर्म की एक अभिन्न सामाजिक संस्था के रूप में 'जाति' का रूपांतरण (जयराम: 2006) सामाजिक संस्थाओं की गतिशीलता का अध्ययन और विश्लेषण के लिए एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है। (वर्टोवेक: 1992, 1996)

इस प्रकार, प्रवासी भारतीयों में विविधता का अध्ययन यह बताता हैं कि विदेशों में एक भारतीय समुदाय की जगह कई प्रवासी भारतीय समुदाय हैं। प्रवासी भारतीयों में क्षेत्र, भाषा, धर्म और जाति/उप-जाति आधारित पहचान की अभिव्यक्ति का मतलब यह नहीं है कि प्रवासी भारतीय स्थायी रूप से खंडित हैं। प्रवासी भारतीय विविधता के मार्कर्रों/चिन्हों की अनदेखी करते हुए राजनीतिक स्तर पर वे कभी संगठित हो सकते हैं और ये मेजबान/गंतव्य देशों में ऐसी एकता को ऐतिहासिक कालों से प्रदर्शित करते रहे हैं। आवश्यकतानुसार, यदि जाति की पहचान को आगे किया जाता है, तो उप-जाति की पहचान निलंबित हो सकती है, यदि धार्मिक पहचान को आगे किया जाता है, तो जाति की पहचान को निलंबित किया जा सकता है, यदि क्षेत्रीय या भाषाई पहचान को आगे किया जाता है, तो जाति और धार्मिक पहचान को निलंबित किया जा सकता है और यदि भारतीय पहचान/ भारतीयता के लिए आह्वान किया जाता है, तो अन्य सभी पहचानों को निलंबित किया जा सकता है। कुल मिलाकर, भारतीय प्रवासी कई प्रकार की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक या राजनीतिक विविधता के बावजूद ये व्यापक स्तर पर एकता के विभिन्न स्तरों पर जुड़े हैं। मॉरिशस, फिजी, त्रिनिदाद-टुबैगो और आज अमेरिका , ब्रिटेन में प्रवासी भारतीयों का राजनीति के शिखर पर पहुंचना इसी एकता को प्रदर्शित करता है। प्रवासी भारतीय में विविधता को देखते हुए, प्रवासी भारतीयों का भारत और भारतीय नागरिकों की ओर एवं भारत और भारतीय नागरिकों का प्रवासी भारतीयों की ओर उन्मुखीकरण (ओरिएन्टेशन) का स्तर भी भिन्न है। (जयराम, एन: 2011) उसी प्रकार, मातृभूमि में वापसी का भी विचार प्रवासी भारतीयों के अलग-अलग समुदायों में एक जैसा नहीं है। (ब्राह्म, 1996: 16)

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं प्रवासी भारतीयों के बीच उपस्थित विजातीयता (हेट्रोजेनिटी) और भारत के प्रति विषमांग रुझान (एसेमेट्रिकल ओरिएंटेसन) को अगर केन्द्रीय तत्व के रूप में मानकर उनके साथ पारस्परिक हितों और योजनाओं को प्रतिपादित किया जाए तो उनके साथ हमारे अच्छे संबंधों को विकसित करते हुए उनकी अपेक्षाओं पर हम खरे उतर सकेंगें। प्रवासी भारतीय समाज में उपस्थित विविधता को ध्यान में रखकर अगर भारतीय राज्य द्वारा उनकी अपेक्षानुसार योजनाएं बनायी जाए तो वैश्विक गांव के रूप में विकसित होती दुनिया और वैश्विक राजनीति में प्रवासी भारतीयों का सक्रिय साथ और समर्थन हमें कई स्तरों पर प्राप्त हो सकता है।

❖

सहायक प्रोफेसर, प्रवासन एवं डायस्पोरा अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) भारत
ईमेल : mlgbharat@gmail.com मोबाईल: +91- 9028226561

कविराय के बहाने

डॉ. देवी प्रसाद तिवारी

''झरोखे के सामने दूर दो मस्त हाथी लड़ रहे थे। सूँड़ उठाये ये चिंग्गाड़ रहे थे। उन्होंने बीच की कच्ची मिट्टी के अग्गड़ को ढ़हा दिया और दाँत भिड़ाये वे पिल पड़े। हाथों में अंकुश और तेज भाले लिए दो-दो महावत दोनों पर सवार थे और उसके साथ भाले चर्खियां और आतिशबाजी लिए पैदल महावत अलग। अग्रपाद उठाये हाथी सामने के हाथी पर झपट रहा था और उस पर इस जोर आक्रमण कर रहा था कि उसके पीछे बैठा भाले वाला महावत अपने आपको संभाल न सका और धाराशायी हो गया।उस ओर का हाथी भी क्रुद्ध हो उठा, उसने बढ़कर उसकी चुनौती स्वीकार की और इतना खदेड़ा की धाराशायी महावत उठने से पहले ही कुचल दिया गया। कोलाहल मच गया। उधर का हाथी भारी पड़ रहा था। यह हाथी भाग खड़ा हुआ। बिगड़ा हाथी उसका पीछा करते हुए दौड़ा। महावतो द्वारा सँभलता न देख आतिशबाजी और चर्खियों वाले दौड़ पड़े। चर्खियों की आवाज और लपटों से किसी तरह मद द्वीप का क्रोध शान्त हो पाया। बादशाह का यह मनोरंजन बहुत महंगा पड़ा। एक बहुमूल्य मानव जीवन लुट गया।''

पंण्डित राज जगन्नाथ के बहाने भोला शंकर व्यास ने अपने उपन्यास समुद्र संगम का आरम्भ हिंदू रियाया पर हो रहे अत्याचार से किया है।अजीब बात है कि हिंदू रियाया अपने ही देश में, अपने ही धर्म के प्रति अनुराग व्यक्त करने के लिए कर चुकाने को बलात बाध्य है ऐसा नहीं करने पर उसे अपमानित होना पड़ता है। नए मन्दिरों के निर्माण पर प्रतिबन्ध के बहाने शासन की सह पर या फिर बादशाह को खुश करने के लिए पुराने मंदिरों को ढ़हाने का कुकृत्य बदस्तूर जारी है और जब रियाया या फिर उसके प्रतिनिधि इस पर सवाल खड़ा करते हैं तो जबाब मिलता है कि नए के रख रखाव के लिए शासन के पास धन नहीं है। हिन्दुओं के प्रतिनिधि कवीन्द्राचार्य जी को मामूली से फौजदार के सामने मिन्नतें करनी पड़ती है कि रियाया को कर से छूट दी जाए लेकिन उस पर जैसे कोई प्रभाव ही न पड़ा, उल्टे जबरन कर वसूली होने लगी। कालिन्दी के तट से शासन द्वारा जारी फरमान का अक्षरश: पालन होगा ऐसी नियति न थी। मनबड़ किस्म के फौजदारों को कट्टरपंथिओं का समर्थन प्राप्त था और कट्टरपंथियों को खुश रखने की उनमें बेहतर समझ थी। यहां सिर्फ फौजदार को ही दोषी ठहरा देने से बात अधूरी रह जाती है दरअसल नृशंसता की इस प्रवृति का आरम्भ वहां से होता है जब तरुणाई की ओर दबे पाँव बढ़ते सल्तनत के राजकुमारों को लड़ते हाथियों में तो रुचि है लेकिन उनके पैरों तले रौंधें गये महावतों की चीखों से उनमें आह तक नहीं उभरती। इसकी एक झलक भी उपन्यास में ही देखने को मिलती है। ''झरोखे के सामने दूर दो मस्त हाथी लड़ रहे थे। सूँड़ उठाये ये चिंग्गाड़ रहे थे। उन्होंने बीच की कच्ची मिट्टी के अग्गड़ को ढ़हा दिया और दाँत भिड़ाये वे पिल पड़े। हाथों में अंकुश और तेज भाले लिए दो दो महावत दोनों पर सवार थे और उसके साथ भाले चर्खियां और आतिशबाजी लिए पैदल महावत अलग। अग्रपाद उठाये हाथी सामने के हाथी पर झपट रहा था और उस पर इस जोर आक्रमण कर रहा था कि उसके पीछे बैठा भाले वाला महावत अपने आपको संभाल न सका और धाराशायी हो गया। उस ओर का हाथी भी क्रुद्ध हो उठा,उसने बढ़कर उसकी चुनौती स्वीकार की और इतना खदेड़ा की धाराशायी महावत उठने से पहले ही कुचल

दिया गया। कोलाहल मच गया। उधर का हाथी भारी पड़ रहा था। यह हाथी भाग खड़ा हुआ। बिगड़ा हाथी उसका पीछा करते हुए दौड़ा। महावतो द्वारा सँभलता न देख आतिशबाजी और चर्खियों वाले दौड़ पड़े। चर्खियों की आवाज और लपटों से किसी तरह मदद्विप का क्रोध शान्त हो पाया। बादशाह का यह मनोरंजन बहुत महंगा पड़ा। एक बहुमूल्य मानव जीवन लुट गया।''[1] खैर मध्यकाल की ऐसी परिस्थिति में भी कवीन्द्राचार्य जी के शिष्य जगन्नाथ काशी छोड़ कर अपनी प्रतिभा के प्रसार हेतु आगरा पहुंचते हैं जहाँ राजदरबार की नजरें इनायत की प्रतीक्षा में कलावन्तों की कतार पहले से ही मौजूद है लेकिन पं. जी के लिए सकारात्मक यही है कि वे अपने गुरु कवीन्द्राचार्य जी के साथ पहले ही बादशाह से मिल चुके हैं। कवीन्द्राचार्य जी हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचार से तो दु:खी थे ही लेकिन प्रयागराज में हुए नरसंहार ने उन्हें झकझोर कर रख दिया था और इसी दु:ख को बादशाह से साझा करने अर्थात फौजदार की शिकायत करने के लिए उन्होंने आगरा की ओर प्रस्थान किया था। आचार्य की शिकायत पर दु:खी हुए थे बादशाह, फौजदार पर उन्हें क्रोध भी आया था लेकिन फौजदार को सजा क्या मिली पता नहीं, दरअसल रचना में ऐसे कई सवाल खड़े होते हैं जिसका उत्तर या तो व्यास जी ने दिया नहीं या फिर देना नहीं चाहे। बादशाह जगन्नाथ को कविराय की उपाधि प्रदान करते हैं यह कवि को प्रसन्न करती है लेकिन इस उपाधि से उस हिंदू रियाया का क्या लेना देना जिसके लिए कवि नहीं आचार्य के शिष्य जगन्नाथ पहली बार आगरा आये थे। हाँ जगन्नाथ की उपलब्धि यह जरुर रही कि वे दारा के सांस्कृतिक उस्ताद बन गये, कभी कभी मौका देख कर दारा का ध्यान हिंदू रियाया की ओर आकृष्ट कर सकें ऐसा प्रयास अवश्य किया करते थे लेकिन शाही खानदान में वैसे ही इतना उठक पटक थी कि लोग अपना ध्यान बमुश्किल रख पाते थे 'चूँके नहीं कि पत्ता साफ'। जहांआरा का खेमा दारा की ओर था तो रोशनआरा खुले तौर पर कट्टरपंथी औरंगजेब की समर्थक थी। दारा भले ही जगन्नाथ से हिंदू धर्म दर्शन की शिक्षा ले रहा था लेकिन साथ ही साथ उसे इस बात का इल्म तो था ही कि उसके पूर्वजों में तैमूर और बाबर का नाम भी है और वो कहता भी है कि ''हमें इस बात का फक्र भी है कि हमारी रगों में तैमूर और बाबर जैसे विजेताओं का भी लहूँ दौड़ रहा है।''[2] संस्कृत साहित्य और व्याकरण में रुचि का मतलब यह कतई नहीं निकाला जाना चाहिए कि दारा का रुख हिंदू रियाया के प्रति नरम था। हाँ यह जरुर है कि उसके दरबार में कुछ हिंदू कलाकारों, कवियों को विशेष सम्मान प्राप्त था दरअसल यह उसकी व्यक्तिगत रुचि का विषय था। शायद यह सब इसलिए भी किया जाता रहा हो कि हिंदू रियाया का विश्वास उन पर बना रहे। मुगल दरबार में शहजादियों को प्रेम करने की आजादी नहीं है और धर्म के विपरीत तो बिलकुल भी नहीं लेकिन शाहजादों पर यह लागू नहीं होता। वे अगर किसी पर रीझ गये तो सारी शासन व्यवस्था उक्त को उनकी खिदमत में पेश करने के लिए आतुर हो उठती है। दारा एक शादीशुदा नर्तकी राणा दिल के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है, उसकी हृदय गति बढ़ जाती है। शहंशाह को भी झुकना पड़ता है, लेकिन जहाँआरा का प्रेम लौकिक धरातल पर साकार होने से रह गया। जहाँआरा का गुनाह बस इतना था कि उनकी आसक्ति के केंद्र में एक प्रतिष्ठित हिंदू मनसबदार था जिसके लिए हिन्दुत्व और उसकी रियाया से बढ़कर कुछ भी नहीं था। उपन्यास में व्यास जी वाया जगन्नाथ मुगल दरबार की परत दर परत विवेचना करते हैं। जगन्नाथ को राजाश्रय मिला, दारा का सहयोग और समर्थन मिला, प्रिय लवंगी मिली, सूफियों का सानिध्य मिला, अशर्फीयां मिली लगभग यही सब कुछ अन्य हिंदू दरबारी कलावंतों को भी मिला दरअसल ये विद्वान शहंशाह से लेकर शहजादा तक को अपनी अपनी अपनी प्रतिभाओं से खुश करते रहते थे यह एक पक्ष हो सकता है जबकि इसका दूसरा पक्ष यह है कि इन हिंदू विद्वानों को आगे रख कर हिंदू रियाया का समर्थन प्राप्त करना मुगल रणनीतिकारों का उद्देश्य था। जब भी इन रणनीतिकारों को ऐसा मालूम पड़ता या लगता कि फला हिंदू मनसबदार मुगलदरबार के खिलाफ जा सकता है तो ये रणनीतिकार हिंदू विद्वानों को सुलह समझौते के लिए आगे कर देते। जगन्नाथ विद्वान थे, आचार्य थे, अनेक हिंदू राजकुमारों के गुरु भी थे और रणनीति के तहत दारा के करीबी भी थे इस प्रकार जगन्नाथ मुगल दरबार और हिंदू मनसबदारों के बीच एक कड़ी की तरह भी थे। 'समुद्र संगम' में अनेक ऐसे प्रसंग मिलते है जब

चन्द्रभान ब्राह्मण या फिर जगन्नाथ जैसे हिन्दुओं को शासन के पक्ष में माहौल बनाने के लिए या फिर हिंदू मनसबदारों की मुगलिया सल्तनत के प्रति डिगती आस्था को मजबूत करने के लिए मोर्चे पर लगाया गया हो। अब राजा जयसिंह को ही लीजिए, दारा के अनुकूल अपनी भानजी का विवाह करने से लगभग मना कर चुके थे लेकिन पशोपेश में फँसे दारा ने फौरन जगन्नाथ को मोर्चे पर लगा दिया। जगन्नाथ ने न सिर्फ राजा जयसिंह तक दारा का संदेश पहुँचाया बल्कि राजा को अपने पक्ष में कर दारा के मनोनुकूल रिश्ते के लिए राजी भी कर लिया। जगन्नाथ हिंदू थे, ब्राह्मण थे और उन्हें इस बात का गौरव भी था। सूफी सन्त मुल्लाशाह से संवाद के दौरान उन्होंने कहा कि "आप बखूबी जानते हैं कि मेरा मजहब दारा के मजहब से अलग है। मैं हिंदू ब्राह्मण हूँ और जिन्दगी भर यही बना रहूंगा, इसमें कोई शक नहीं कर सकता "।[3] यही नहीं शाहजहां के दरबार में जब किसी हिंदू राजा को विशेष सम्मान प्राप्त होता तो पं. जगन्नाथ गौरवान्वित महसूस करते है। बूँदी के हाड़ा राजाओं को दरबार में विशेष सम्मान प्राप्त था जिसका वर्णन पं. जी कुछ इस प्रकार से करते हैं "हाड़ा राजा छत्रशाल का अभिवादन करने का तरीका मुझे दूसरे मनसबदारों और हिंदू राजाओं से भी बिल्कुल भिन्न लगा, यहाँ तक कि उनके अपने चाचा मुकुन्द सिंह हाड़ा के अभिवादन के तरीके से भिन्न। दूसरे दरबारी सामन्त चाहर तस्लीम किया करते हैं, इन्होंने चाहर तस्लीम नहीं किया। मुझे कुछ जिज्ञासा हुई जिसका शमन बाद में दरबार से लौटते वक्त उनके राजगुरु व्यास माणिकराम जी ने किया। उन्होंने बताया भले ही बूँदी के हाड़ाओं का मुगल दरबार में सबसे बड़ा मनसब न हो, पर जो अधिकार इन्हें प्राप्त है वे किसी अन्य हिंदू राजा को प्राप्त नहीं। राव सुरजन ने जब अकबर को रणथम्भौर की चौंबियाँ सौंप मित्रता की सन्धि की तो उन्होंने कुछ शर्तें रखी थी। मुगल सम्राट ने राव सुरजन की वीरता की कद्र करते हुए उन शर्तों को मंजूर कर लिया था। उन शर्तों का पालन मुगल सम्राट आज भी करते चले आ रहे हैं। उदयपुर के राणा घराने के बाद बूँदी का ही राजपूत घराना ऐसा है जिसने मुगलों को डोले में बेटियां देना अस्वीकार कर दिया था। और भी कुछ शर्तें थी हाड़ा राजाओं का निशान और नक्कारा बुलन्द दरवाजे तक बजते हुआ आएगा, वे दीवाने आम तक घोड़े पर सवार आ सकेंगे, और दरबार में बादशाह के सामने झुककर दोजानू हो मुजरा नहीं करेंगे। दरबार में भी हथियार सहित आएंगे और तलवार को मस्तक से छुआकर बादशाह को सलामी देंगे।'"समुद्र संगम व्यास जी की साहित्यिक दृष्टि और इतिहास बोध का भी संगम है।किसी भी रचना में लेखक स्वयं भी मौजूद होता है और प्रसंग दर प्रसंग वह अपनी बात भी करता है। हाड़ा राजाओं पर लिखते हुए व्यास जी माणिक राम व्यास का जिक्र यूं ही नहीं करते दरअसल ये उनके अपने ही पूर्वज हैं जो बूँदी राजघराने के राजगुरु हुआ करते थे। रचना में अभिव्यक्ति के स्तर पर अवरोध का न होना इस बात को प्रमाणित करता है कि व्यास जी के इतिहास बोध की निर्मिति सिर्फ किताबी नहीं है बल्कि उन्होंने परिवार और परम्परा से बहुत कुछ सीखा और समझा है। जगन्नाथ जी काशी में रहे, हाड़ा राजाओं का प्रवास भी काशी में हुआ करता था जिसके कारण व्यास जी के पूर्वजों का भी प्रवास काशी में हुआ होगा। इस प्रकार व्यास जी के पूर्वजों को पं. राज जगन्नाथ के विषय में अधिक जानने और समझने का अवसर भी मिला होगा अर्थात जगन्नाथ जी के संदर्भ में प्रमाणिक तथ्य व्यास जी के पूर्वजों से ही व्यास जी तक पहुँचा होगा। खैर विषयांतर न हो जाऊँ इसलिए उपन्यास की ओर लौटता हूँ। कुछ लोग यह कयास लगाते मिल ही जाते हैं कि यदि शाहजहाँ के बाद मुगल सत्ता की कमान दारा शिकोह के हाथ में होती तो हिंदू रियाया औरंगजेब के अत्याचार से बच जाती जबकि समुद्र संगम को पढ़ते हुए इस बात का आभास होना स्वाभाविक ही है कि मुगल सत्ता पर कट्टरपंथियों का प्रभाव शहाजहाँ के काल में भी था और यदि दारा शिकोह के हाथ में सत्ता आ भी जाती तो भी यह प्रभाव बना ही रहता। औरंगजेब सत्ता पर काबिज हो इससे पहले ही जगन्नाथ ने अपनी लवंगी के साथ काशी की ओर प्रस्थान किया दरअसल जगन्नाथ ही नहीं दारा के ज्यादातर करीबियों ने अनिष्ट की आशंका से आगरा छोड़ दिया। जगन्नाथ काशी लौट आएँ लेकिन संवाद की नगरी काशी में अप्पय दीक्षित जैसे विद्वानों ने उन्हें काशी में टिकने न दिया और टिकने भी क्यों देते, पहला आरोप तो यही था कि उन्होंने लवंगी को जीवन संगिनी बनाकर धर्म विरुद्ध कार्य किया है और जब आलोचकों के पास मजबूत आधार हो तो अगला

बेचारा ही हो जाता है। कभी आगरा में जिसकी तूती बोलती थी, नगर सेठ आव भगत किया करते थे आज वही जगन्नाथ निरुत्तर हैं फेकू तिवारी और बच्चा दूबे भी उन्हें ललकारते हैं। नीलकंठ ने तो ठेठ बनारसी अंदाज में मानो चहेट ही लिया हो ''ब्राह्मण धर्म से त पहिलही ही च्युत हो गइल पातकी। पहिले जवनन के उपनिषद पढ़ौलेस, पीछे जवनियां सँ बियाह रचौलेस, और अब सूद्रन के बेद पढ़ावत हौ। अनेक पातक कइलै हौ सरवा। एकर सही सही निर्णय होवै के चाही, आज पंचन के सभा माँ।''[6] काशी का अपना मिजाज है दरअसल यहां किसी का विरोध नहीं आप काशी के हों या काशी के बाहर के लेकिन परम्परा में अनावश्यक हस्तक्षेप के विरोध में कोई भी आपको ललकार सकता है अब चाहे वे तुलसीदास रहे हो या फिर जगन्नाथ सभी को इस विरोध का सामना करना पड़ा। प्रायः समीक्षक, आलोचक इस आन्तरिक मर्म को समझे बगैर अपनी बात रखने का प्रयास करते हैं या फिर इसे ऐसा भी कहा जा सकता है कि आलोचना के तय फ्रेम में रचना को फिट करने के चक्कर में कुछ का कुछ कह जाते हैं। आलोचक मधुरेश ने समुद्र संगम पर समीक्षा लिखी और वह दस्तावेज के अंक में छपी भी जिसमें जगन्नाथ के संदर्भ में वे लिखते हैं कि ''काशी के धर्माँध पंडितों के कारण उसे मथुरा जाना पड़ा।''[7]

दरअसल जिसे ये धर्मान्ध पंडित कह रहे हैं वे धर्मान्ध नहीं थे बल्कि मुगलों के अत्याचार ने इन्हें इतना कठोर बना दिया था कि धर्म अर्थात व्यवस्था के मामले वे और अधिक स्पेस देने के पक्ष में नहीं थे। जगन्नाथ मथुरा जाते हैं, आगरा के बेहद करीब है मथुरा अर्थात जब कभी आगरा में जगन्नाथ की तूती बोलती रही होगी तब के कुछ परिचित मथुरा में भी रहे होगें और यही सच भी था। उपन्यास में जगन्नाथ जी कहते भी हैं "यहाँ आते ही मैं केशवराय मन्दिर के महन्त जी से मिला जो मेरे और दाराशिकोह के विश्वत व्यक्ति थे।"[8] इस प्रकार जगन्नाथ का मथुरा प्रवास आरम्भ होता है लेकिन मुगलों के अत्याचार से त्रस्थ थी मथुरा। जजिया का दौर आरम्भ हो चुका था। किसानों ने औरंगजेब की इस नीति डटकर विरोध किया। ''गोकुला के नेतृत्व में मथुरा के आसपास के गांवों के किसानों ने एकजुट होकर औरंगजेब की हुकूमत से लोहा लेने की ठान ली। किंतु यह विद्रोह असंगठित होने के कारण सफल नहीं हो पाया और शीघ्र ही आगरा से आई हुई कुमुक ने इसे दबा दिया।''[9] उपन्यास का आरम्भ भी फौजदारों के आतंक और अत्याचार से होता और अंत भी, ऐसा नहीं है कि काशी में कुछ अलग था और मथुरा में कुछ अलग दोनों ही जगह विषय एक ही है और वह है जबरन कर वसूली। काशी और प्रयागराज में श्रद्धालुओं से और मथुरा तथा नारलौन में किसानों से।उनके लिए क्या श्रद्धालू क्या किसान सभी हिंदू थे बस यही इतना काफी था। खैर जगन्नाथ ने मथुरा भी छोड़ दिया, वहाँ उन्हें किसी अप्पय दीक्षित, फेकू तिवारी, बच्चा दूबे और नीलकंठ ने ऐसा करने को विवश नहीं किया था बल्कि मुगलों के आतंक से फैली अशान्ति के कारण उन्होंने वृन्दावन का रुख किया। व्यास के हौसले की जितनी तारीफ की जाएँ कम ही समझिए, थे तो बूँदी के लेकिन काशी को भी लगभग समझने लगे थे। काशी पर लिखते हैं तो काशी के होकर लिखते हैं। कवि जगन्नाथ पर लिखने के लिए व्यास मानो कलम और कूँची दोनों साथ लेकर बैठते हैं जहाँ भाषा अवरुद्ध होती है वहाँ दृश्यों से काम चलाते हैं और जहां दृश्यों से बात नहीं बनती वहाँ भाषा से और उनकी यही कला पाठक को अंत तक बाँधे रखती है।

संदर्भ :

1. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 15, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
1. समुद्र संगम-भोलाशंकर व्यास, भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली (दूसरा संस्करण-2005), पृ.सं.-40
2. वही-पृ.सं-129
3. वही-पृ.सं.-122
4. वही-पृ.सं.-91-92
5. वही-पृ.सं. 376
6. समुद्र संगम (भोलाशंकर व्यास), (समीक्षा), -मधुरेश, दस्तावेज 107/अप्रैल-जून 2005,पृ.सं.63
7. समुद्र संगम-भोलाशंकर व्यास,भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली (दूसरा संस्करण-2005), पृ.सं.-380
8. वही-पृ.सं.-381-382

❖

Ph.d (हिंदी साहित्य) काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी
शोध विषय -आधुनिक हिन्दी कवियों का लोक भाषा साहित्य
स्थायी पता-ग्रा.अकबालपुर, पो. इटौरी, जिला. अम्बेडकर नगर
उत्तर प्रदेश पिन-224159 मो.: 9452562847

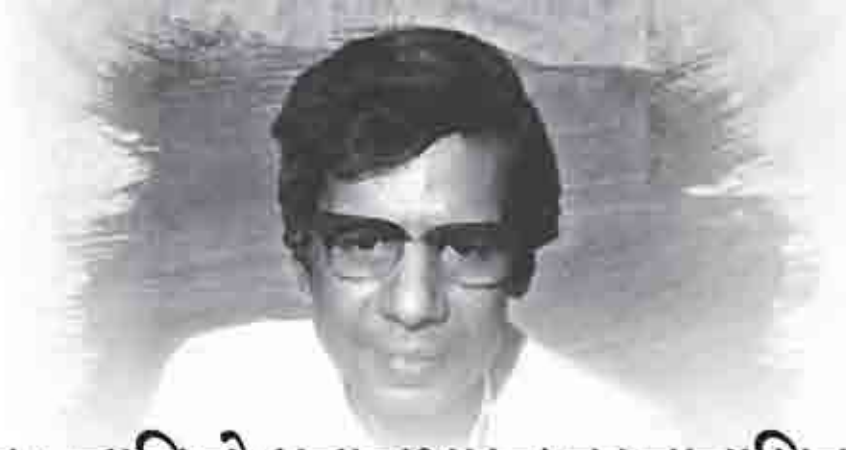

मैला आँचल : जाति के समाजशास्त्र का प्रामाणिक अभिलेख

प्रो. निरंजन कुमार

उपन्यास की सामाजिक स्थिति की बात करें तो जातियों में विभक्त इस मेरीगंज गाँव में मुख्य रूप से चार जातियों का वर्चस्व दिखाई देता है। कायस्थ टोला, जिनके मुखिया हैं- राजपरबंगा के तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक; राजपूत टोला, जिनके मुखिया हैं- ठाकुर रामकिरपाल सिंघ; यादव टोला के मुखिया हैं- खेलावन सिंह यादव तथा चौथा है ब्राह्मण टोला। धन-संपदा व जन-बल में अपेक्षाकृत कम होने के कारण ब्राह्मण टोला अन्य तीन की तुलना में कम प्रभावशाली है, तथा कायस्थ टोला व राजपूत टोला के जातिगत वर्चस्व की लड़ाई में आग में घी डालने का काम करता है। ब्राह्मणों की संख्या कम है, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का कर्तव्य पूरा करते रहे हैं। विश्वनाथ प्रसाद तहसीलदार है और तीन पीढ़ियों से इनके यहाँ तहसीलदारी चल रही है। राजकाज से जुड़े होने के कारण कुछ सरकारी, कुछ जनता की जमीनों को हड़प कर समाज में बड़े जमींदार की पदवी प्राप्त कर चुके है।

फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा 1954 ई. में रचित उपन्यास 'मैला आँचल' की कीर्ति एक आँचलिक उपन्यास रूप में तो है ही जिसमें लेखक ने बिहार के पूर्णिया जिले या अंचल के मेरीगंज गाँव के जन-जीवन एवं परिस्थितियों का बड़ा ही जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है। लेकिन यह देखना भी गौरतलब होगा कि रेणु ने इस उपन्यास के माध्यम से ग्रामीण जीवन में जाति के समाजशास्त्रीय गतिकी (Sociological Dynamics) को भी समझने और चित्रित करने का महती प्रयास किया है। स्वतंत्र भारत में जाति संबंधी उभरती हुई नई स्थितियों और जातिगत ताना-बाना का सजीव समाजशास्त्रीय चित्र साहित्य के माध्यम से देखना-समझना हो तो मैला आँचल' एक अनिवार्य टेक्स्ट है। हालाँकि समाजशास्त्री या मानवशास्त्री न होने के कारण कुछ चीजों को समझने में रेणु चूक भी जाते हैं।

मेरीगंज गाँव में जाति व्यवस्था की संरचना पर गौर करने पर हम देखते हैं कि पूरा ग्रामीण समाज जातियों में विभक्त समाज है। दरअसल जाति व्यवस्था मेरीगंज गाँव या पूर्णिया जिला ही नहीं, व्यापक रूप से बिहार बल्कि सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक व्यवस्था का अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है। यहाँ 'महत्वपूर्ण' शब्द सकारात्मक अर्थ में न होकर नकारात्मक अर्थ में अधिक प्रयुक्त किया जा रहा है। मेरीगंज गाँव जातियों में विभक्त है, वहां 12 जातियों के लोग निवास करते हैं। रेणु के शब्दों में "बारहों बरन के लोग रहते हैं" आगे रेणु इन विभिन्न 'बरन' (वर्ण) के लोगों को गिनाते हैं। यदुवंशी छत्रीटोली, गहलोत छत्रीटोली, कुर्म छत्रीटोली, धनुकधारी छत्रीटोली, कुशवाहा छत्रीटोली, तन्त्रिमा छत्रीटोली, अमात्य ब्राह्मणटोली, पोलियाटोली, रैदास टोली इत्यादि। जातिगत संरचना और जाति व्यवस्था के अध्येता इस बात को जानते हैं कि जिन समूहों के नाम ऊपर गिनाए गए हैं वे बरन या वर्ण न होकर जातियाँ हैं। जैसा कि ऊपर हम कह चुके हैं कि चूँकि रेणु समाजशास्त्री या मानवशास्त्री नहीं हैं। इसलिए वर्ण और जाति को लेकर उनकी समझ और अवधारणा थोड़ी उलझी हुई है। हम जानते हैं कि भारतीय (हिंदू) समाज में वर्णव्यवस्था की जो संकल्पना है वह 4+1 की व्यवस्था पर आधारित है। अर्थात् 4 वर्ण हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र और साथ ही एक पाँचवां समूह है, जो इन चारों से इतर है जिनमें अवर्ण जातियाँ (अस्पृश्य या दलित जातियाँ) आती हैं। इस पंचम समूह के लोगों को छुआछूत का अभिशाप सहना पड़ा है, और शूद्रों से ये अलग हैं। 'मैला आँचल' के मेरीगंज गाँव में बारह बरन के लोग नहीं बारह जातियों के लोग रहते हैं, जो 4+1 (अर्थात चार वर्ण और एक अवर्ण वर्ग) की व्यवस्था के अंतर्गत समाहित हैं।

भारतीय जातिगत संरचना और जाति व्यवस्था की एक अन्य विशिष्टता को भी रेणु बहुत गहराई से चित्रित करते हैं। वह है वर्णव्यवस्था और उसके स्थानीय रूप जाति व्यवस्था का लचीलापन। समझा जाता है

कि आरम्भिक दिनों में कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था कालक्रम में जन्म पर आधारित होती गई और इस रूप में दृढ़ और कठोर होती गई। जिसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं। लेकिन व्यवहारिक धरातल में कुछ लचीलापन इसमें अभी भी विद्यमान है। जाति के समाजशास्त्र की इस गतिकी के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष को जानने के पहले उपन्यास के कुछ प्रसंग देखना द्रष्टव्य होगा– "जनेऊ लेने के बाद भी राजपूतों ने यदुवंशी क्षत्रिय को मान्यता नहीं दी, इसके विपरीत समय-समय पर यदुवंशियों के क्षत्रियत्व को व्यंग विद्रूप के बाणों से उभारते रहे। एक बार यदुवंशियों ने खुली चुनौती दे दी"।[2] यहाँ गौरतलब है कि यदुवंशी और कुछ जातियाँ स्वयं को छत्री टोली कहती हैं। यहाँ 'छत्री' शब्द क्षत्रिय के तद्भव रूप में प्रयुक्त हुआ है। चूँकि रेणु जी के अनुसार "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े-लिखे हैं" यहाँ ध्यान देने की आवश्यकता है कि शिक्षित होने का अर्थ यहाँ ज्ञान सम्पन्न न होकर सिर्फ दस्तखत का ज्ञानहोना है। इनके अशिक्षित होने के कारण शब्दों का गलत उच्चारण उनके बोलचाल में झलक जाता है। मेरीगंज के समाज में विभिन्न जातियों द्वारा अपने लिए क्षत्रिय अथवा क्षत्रि शब्द का प्रयोग करना अपने आप में एक विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया को दर्शाता है। इस प्रक्रिया और अवधारणा को समझने हेतु हमें समाजशास्त्र का सहारा लेना होगा। जातिगत संरचना तथा जातिप्रथा, सामाजिक स्तरीकरण, संस्कृतीकरण तथा पश्चिमीकरण पर कार्य करने वाले भारत के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एन. श्री निवास बताते हैं कि भारतीय जाति व्यवस्था में कठोरता के बावजूद भी एक तरह का लचीलापन उसमें विद्यमान रहता है। इस लचीलापन को समझाते हुए वह बताते हैं कि भारतीय समाज की तथाकथित निम्न जातियाँ जब विभिन्न कारणों से संपन्न और सामर्थ्यवान आदि होने लगती हैं अथवा आर्थिक रूप से उनका विकास होने लगता है, तब ये लोग तथाकथित उच्च जातियों की जीवन-शैली, धार्मिक क्रियाकलापों, व्यवहार व बोलचाल आदि का अनुकरण करने लगती हैं। फिर ये जातियाँ कालांतर में 10-20 पीढ़ियों के उपरान्त स्थानीय स्तर पर उच्च जाति का दावा करने लगती हैं। इस प्रक्रिया को श्रीनिवास ने 'संस्कृतीकरण" कहा है। श्रीनिवास इस संदर्भ में कर्नाटक के लिंगायत जाति का उदाहरण देते हैं जिन्होंने कर्नाटक के स्थानीय जातिक्रम में अपनी उच्च प्रस्थिति बना लिया। एक अन्य उदाहरण में कायस्थ जाति को देखा जा सकता है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री डी एन मजुमदार अपनी पुस्तक 'एन इंट्रोडक्शन टू सोशल एंथ्रोपोलोजी' में दिखाते हैं कि 18वीं सदी तक कायस्थ जाति की गणना शूद्र जाति में होती थी। परन्तु राजकाज से जुड़कर, जमीन सम्पदा से सम्पन्न होकर आगे चलकर उन्होंने शिक्षा भी प्राप्त की। कालांतर में उन्होंने स्थानीय स्तर पर उच्च जाति का दावा करना शुरू किया। फलस्वरूप 19वीं सदी के समापन के साथ ही इनकी उच्च जातियों में गणना होने लगती है।[5]

उपन्यास की सामाजिक स्थिति की बात करें तो जातियों में विभक्त इस मेरीगंज गाँव में मुख्य रूप से चार जातियों का वर्चस्व दिखाई देता है। कायस्थ टोला, जिनके मुखिया हैं- राजपरबंगा के तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक; राजपूत टोला, जिनके मुखिया हैं– ठाकुर रामकिरपाल सिंघ; यादव टोला के मुखिया हैं- खेलावन सिंह यादव तथा चौथा है ब्राह्मण टोला। धन-संपदा व जन-बल में अपेक्षाकृत कम होने के कारण ब्राह्मण टोला अन्य तीन की तुलना में कम प्रभावशाली है, तथा कायस्थ टोला व राजपूत टोला के जातिगत वर्चस्व की लड़ाई में वह आग में घी डालने का काम करता है। "ब्राह्मणों की संख्या कम है, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का कर्तव्य पूरा करते रहे हैं"।[4] विश्वनाथ प्रसाद तहसीलदार है और तीन पीढ़ियों से इनके यहाँ तहसीलदारी चल रही है। राजकाज से जुड़े होने के कारण कुछ सरकारी, कुछ जनता की जमीनों को हड़प कर समाज में बड़े जमींदार की पदवी प्राप्त कर चुके है। राजपूत टोली वालों की स्थिति पूर्व की भांति ही है। इनके मुखिया साढ़े तीन सौ बीघा जमीन के मालिक है। वहीं दूध-दही के व्यापार से जुड़े यादव टोली के मुखिया खेलावन सिंह ने भाग-दौड़ कर सरकार से पचास बीघा जमीन अपने नाम करवा ली हैं। अब इनके पास पर्याप्त धन-संपदा हो चली है, जन-बल भी है और सत्ता के स्थानीय संघर्ष में ये अपनी प्रबल दावेदारी रखते हैं। ये स्वंय को यदुवंशी छत्री कहते हैं। हालाँकि इस क्षत्रिय शब्द के प्रयोग को लेकर गाँव की जातियों का आपसी वैमनस्य भलीभांति देखा जा सकता है। जब यादव स्वंय को यदुवंशी छत्री (क्षत्रिय) टोली कहते हैं तो राजपूत उन्हें क्षत्रिय मानने से अस्वीकार करते हुए उन्हें गुअर टोली (ग्वाला→ग्वाल→ग्वार→गुअर) कहते हैं। दिलचस्प बात यह है कि ये हिमाकत प्रत्येक जाति एक दूसरे के पीठ पीछे ही करती है, क्योंकि सामने कहने की उनमें हिम्मत नहीं। उसीप्रकार कायस्थ टोली, राजपूत टोली वालों को सिपहिया टोली व राजपूत टोली, कायस्थ टोली वालों को कैथ टोली कहती है। कुल मिलाकर मेरीगंज की सामाजिक व्यवस्था में विभिन्न जातियों की आपसी खींचतान, तनाव व संघर्ष पग-पग पर दिखाई पड़ता है। विदित हो कि ये जातिगत संघर्ष इनके आपसी वर्चस्व का संघर्ष है। परन्तु जहाँ निम्न जातियों के शोषण की बात आती है तब ये ताकतवर जातियाँ, जिनके मुखिया क्रमशः विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक, ठाकुर रामकिरपाल सिंघ एवं खेलावन सिंह यादव हैं, आपस में मिलकर उनका शोषण करते हैं। गाँव की तथाकथित निम्न जातियाँ और संथाल नामक जनजाति की जमीनों पर कब्जा कर ये संपत्तिशाली बने हुए हैं। यह जाति व्यवस्था न केवल मेरीगंज और अंचल पूर्णिया व बिहार की प्रगति में, अपितु संपूर्ण भारतीय समाज की प्रगति में बड़ी बाधा बल्कि एक अभिशाप है। जातिगत भयावहता के इस अभिशाप को मेरीगंज में आरंभ से ही देखा जा सकता है। उपन्यास का आरंभ वहां 'मलेरिया

सेंटर' की स्थापना की चर्चा शुरू होता है। लेकिन किसप्रकार से विभिन्न जातियों के मुखिया यथा विश्वनाथ प्रसाद, ठाकुर रामकिरपाल सिंह एवं खेलावन सिंह यादव का आपसी संघर्ष या यूँ कहें कि सत्ता के वर्चस्व की तनातनी शुरू हो जाती है, इस नंगे नाच का प्रभावशाली चित्र रेणु उपन्यास में उकेरते हैं। इतना ही नहीं उनके व्यक्तिगत संघर्ष के कारण गाँव में आर्थिक प्रगति के लिए खुला 'चरखा सेंटर' भी बंद हो जाता है। रेणु जब लिखते है- "इसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी है और कीचड़ भी है"[7] तो यहाँ धूल और कीचड़ कहने का उनका अभिप्राय इन्हीं जातिगत विसंगतियों को रेखांकित करनाभी है। इस जातिगत आपाधापी में विकास की सारी योजनाएँ धरी की धरी रह जाती हैं।

यह जातिगत आपसी वैमनस्य उनके सामाजिक जीवन में भी दिखता है। गाँव के कबीर मठ का महंथ सेवादास अपने स्वप्न की बात लोगों को बताते हुए कहता है कि एक बार मेरे स्वप्न में सतगुरु आए और उन्होंने मुझे भंडारा कराने का आदेश दिया- "गाँधी इस गाँव में इसिपताल खोलकर परमारथ का कारज कर रहा है। तुम सारे गाँव को एक भंडारा दे दो"।[8] जिस दिन गाँव में भंडारे का आयोजन होता है उस दिन कायस्थ टोली, राजपूत टोली और ब्राह्मण टोली वाले लोग एक-दूसरे के साथ बैठकर खाना अस्वीकार करते हुए अलग-अलग हो जाते है। दूसरी तरफ उच्च जातियाँ निम्न जातियों से दूर रहकर खाना खाने की इच्छा व्यक्त करती हैं। कबीर मठ ईश्वर का दरबार है जहाँ सभी जातियाँ समान हैं, किन्तु यहाँ भी जातिगत भेदभाव पैर पसारे हुए है। फलस्वरूप सभी जातियाँ अपनी-अपनी पंगत में खाना खाती हैं तथा निम्न जाति के लोगों को मठ के बाहर दूर किसी पंगत में बिठाकर खिलाया जाता है। इस प्रकार यहाँ जातिगत भेदभाव, ऊँच-नीच व विभाजन स्पष्ट दिखाई देता है।

ग्रामीण समाज में जाति की अवधारणा कितनी प्रबल होती है इसे हम उपन्यास के उन प्रसंगों में देख सकते हैं जब उपन्यास का एक प्रमुख पात्र डॉ. प्रशांत विदेश न जाकर गाँव में लोगों के इलाज व सेवा के लिए आता है। इसी क्रम में वह मलेरिया सेंटर से जुड़ता है। जैसे ही वह गाँव पहुँचता है, उससे भी उसकी जाति पूछी जाती है। उत्तर में वह कहता है, मेरी कोई जात नहीं। इस पर गाँव वाले कहते हैं- जात-पात के बिना कोई हो ही नहीं सकता, हर व्यक्ति की एक जाति होती है। तब डॉ. प्रशांत स्वयं को 'हिन्दुस्तानी" कहता है। ऐसे में गाँव वाले इसे अस्वीकार कर देते हैं कि हिन्दुस्तानी कहने से छूट नहीं मिलेगी। बंगाली या बिहारी कहने से भी काम नहीं चलेगा, कोई न कोई जात तो अवश्य ही होगी। "जातपात नहीं मानने वालों की भी जाति होती है"।[10] इतना ही नहीं भगत सिंह जैसे राष्ट्रीय क्रांतिकारी वीर पुरुष जिनकी वीरता की चर्चा पूरे गाँव में होती है- 'बम फटाक से फोड़ दिया भगत सिंह मस्ताना ने'। भारत का वीर लड़ाका होने के बावजूद ग्रामीणों के मन में इस प्रश्न का उठना 'कि वह भगत सिंह कौन जात का था'? जाति संबंधी प्रश्नों के माध्यम से रेणु ने पूर्णिया अथवा बिहार ही नहीं पूरे भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था के अभिशाप को दिखाया है जिसने पूरे भारत को बहुत पीछे धकेल कर रख दिया है।

जाति की विद्रूपता ने न सिर्फ सामाजिक जीवन एवं लोगों की मानसिकता को कलुषित किया है अपितु इसने राजनीति में प्रवेश कर राजनीतिक गतिविधियों को भी दूषित किया है। आज राजनीति में जाति की जो झलक हमें दिखाई देती है उसकी आहट हमें आजादी की प्राप्ति के साथ ही दिखाई देने लगी थी। इस प्रसंग से रेणु पाठकों को अवगत कराते हुए नजर आते हैं। उदाहरण स्वरुप बालदेव गोप को देखा जा सकता है जो इस उपन्यास का महत्वपूर्ण पात्र है। वह एक कांग्रेसी कार्यकर्ता है तथा स्वयं को महात्मा गाँधी का अनुयायी बताता है। वह बार-बार 'जाय हिन्द-जाय हिन्द', 'महत्मा गनही की जाय' व 'भारत माथा की जाय' बोलता है। हिंसा को बुरा ठहराता है तथा स्वाधीनता संग्राम में जेल भी हो आया है। परन्तु आजादी के पश्चात जातिगत स्थितियों की असलियत को देखकर वह कहता है कि जाति बहुत बड़ी चीज है- "वह अब अपने गाँव में रहेगा, अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा।.... जाति बहुत बड़ी चीज है।... जाति की बात ऐसी है कि सभी बड़े-बड़े लीडर अपनी-अपनी जाति की पार्टी में हैं"।[11] बालदेव गोप गाँधीजी का अनुयायी होने के बावजूद जातिगत भावना से लबरेज है। यहाँ रेणु राजनीति में जाति के प्रवेश के दुष्परिणाम का पर्दाफाश करते हुए कहना चाहते हैं कि जाति व्यवस्था जो विशुद्ध रूप से सामाजिक, सांस्कृतिक तथा कुछ हद तक आर्थिक व्यवस्था थी, या है, वह धीरे-धीरे राजनीतिक व्यवस्था में रूपांतरित होती जा रही थी, या आज हो चुकी है। यह अत्यंत शोचनीय स्थिति है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष जो जाति एवं वर्ग से संबंधित है वह, यह कि भारतीय ग्रामीण समाज में जाति व्यवस्था के अतिरिक्त वर्ग की अवधारणा किस रूप में परिचालित होती है? समाजशास्त्रीय दृष्टि से इस पर विचार करने पर हम देखते हैं कि भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था और वर्ग व्यवस्था, या कहें कि जाति व्यवस्था और वर्ग व्यवस्था में सामान्य रूप से एक ओवरलैपिंग (OVERLAPPING) दिखाई देता है। ओवरलैपिंग अर्थात् मोटे तौर से सामजिक पायदान पर जो तथाकथित निम्न जातियाँ हैं, आर्थिक रूप से वे निम्न वर्ग के भी हैं। यहाँ वर्ग से अभिप्राय है- आर्थिक आधार पर छोटा या बड़ा होना, आर्थिक आधार पर श्रेणीबद्ध करना अथवा विभाजन करना। इसे हम उपन्यास के भंडारा वाले प्रसंग में देख सकते है। जब सेवादास गाँव में

भंडारा कराने की बात करता है तो गाँव की तथाकथित निम्न जातियाँ उत्साह से भर जाती हैं, उनके बीच खुशी की लहर दौड़ने लगती है। कारण, "तंत्रिमा, गहलोत और पोलिया टोली के अधिकाँश लोगों ने पूड़ी-जलेबी कभी चखी भी नहीं"।[12] यह दृश्य इस ओर इशारा करता है कि ये तथाकथित निम्न जातियाँ आर्थिक रूप से भी समाज के अत्यंत निचले पायदान पर थीं। इन विषमताओं का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण रेणु ने किया है। उनकी इस गरीबी के पीछे कई कारण जिम्मेदार हैं जिनमें इस उपन्यास में जमींदारी प्रमुख कारण के रूप में दिखाया गया है। यहाँ जमींदारों द्वारा निम्न वर्गों की जमीनें हड़प ली गईं और वे आर्थिक रूप से कमजोर होते चले गए। ऐसी परिस्थितियाँ भारतीय समाज के जातिगत व्यवस्था की घोर विडंबना को दर्शाती हैं।

चूँकि रेणु एक महान उपन्यासकार हैं तो उनकी अपनी एक उदात्त दृष्टि भी है और उसी दृष्टि के अनुरूप वह मैला आँचल के माध्यम से एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहाँ जातिगत पहचान महत्त्वपूर्ण न होकर व्यक्ति के गुण, उनके क्रियाकलाप को अधिक महत्ता दी जाए। इसी क्रम में वे कुछ जातिमुक्त पात्रों का सृजन करते हैं एवं उन चरित्रों को पूर्ण उदात्त स्वरूप प्रदान करते हैं। ये पात्र हैं– डॉ. प्रशांत, वामनदास तथा लछमी कोठारिन। ये तीनों उपन्यास के अत्यंत महत्त्वपूर्ण पात्र हैं जिनकी जाति का यहाँ कोई उल्लेख नहीं मिलता। डॉ. प्रशांत एक संवेदनशील मानवतावादी पात्र है, जो विदेश जाने और उच्च कैरियर को छोड़कर आमजन की सेवा की भावना से इस अत्यंत पिछड़े गाँव में आता है। वहीं वामनदास एक गाँधीवादी नेता है, गाँधी जी का सच्चा अनुयायी व देशभक्त है। समय-समय पर गाँधीजी से उनका पत्राचार भी होता रहा है। जब देश आजाद हुआ और गाँधीजी की हत्या हुई तो एक सच्चे अनुयायी की भांति वह सोचता है कि अब जीवन में कुछ नहीं बचा। वामनदास को अवैध गतिविधियों का पता चलता है कि बिहार व नेपाल की सीमा पर काँग्रेस के एक नेता दुलारचंद कापरा द्वारा स्मगलिंग की जा रही है, तो वह सोचता है अब मेरा समय आ गया है कि स्मगलिंगको रोकूँ। देश के लिए कुछ करूँ। वह स्मगलिंग रोकने हेतु सीमा पर पहुँचता है जहाँ दुलारचंद कापरा बैलगाड़ी से कुचलवाकर उनकी हत्या करवा देता है। वामनदास शहीद हो जाता है। यहाँ वामनदास जातिमुक्त व्यक्तित्व के रूप में उभर कर आता है जो इस देश का सच्चा कार्यकर्ता व आमजन का सच्चा हितैषी है। एक अन्य चरित्र लछमी कोठारिन को देखें– वह कबीर मठ की दासी है, जो महंथ सेवादास द्वारा मठ में 10 वर्ष की अवस्था में लाई जाती है। सेवादास द्वारा लछमी का शारीरिक शोषण होता है। जब वह बड़ी होती है और उसकी समझ विकसित होती है तब उसका एक उदार चरित्र उभरकर सामने आता है जो गाँव के लिए, समाज के उत्थान के लिए स्वयं को उचित ढंग से प्रस्तुत करती है। इन तीन उदात्त पात्रों का सृजन कर रेणु जातिमुक्त समाज की कल्पना करते हुए मानो संदेश देते हैं कि जातिविहीन होकर ही महानता का परिचय दिया जा सकता है, और तभी यह देश व समाज आपको महान चरित्र के रूप में याद रख सकेगा।

समग्रतः रेणु अपने उपन्यास मैला आँचल में एक ओर जहाँ भारतीय समाज की जाति संबंधी गतिकी (Dynamics) का खुलासा करते हुए विभिन्न विसंगतियों को उघाड़ते हैं, वहीं दूसरी तरफ ऐसे जातिविहीन समाज की कल्पना करते है जहाँ जाति से अधिक व्यक्ति के गुणों का महत्व हो। स्वतंत्र भारत में जाति संबंधी उभरती हुई नई स्थितियों और जातिगत ताना-बाना का सजीव समाजशास्त्रीय चित्र साहित्य के माध्यम से देखना-समझना हो तो रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' एक जरूरी 'प्राइमरी सोर्स या अभिलेख' है।

संदर्भ :

1. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 15, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
2. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 16, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
3. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 17, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
4. M.N. Srinivas, Religion and Society among the Coorgs of South India, Oxford University Press, Oxford, UK, 1952
5. D.N. Majumdar & T.N. Madan, An Introduction to Social Anthropology, Asia Publishing House, Bombay, 2000
6. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 16, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
7. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
8. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 26-27, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
9. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 53, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
10. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 53, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
11. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ221, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017
12. फणीश्वरनाथ रेणु: 'मैला आँचल', पृष्ठ 29, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चालीसवाँ संस्करण, 2017

❖

हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मो. 9717294790, ईमेल - niranjanindia@gmail.com

यहूदी घृणा की जड़ें

डॉ. वरुण कुमार

शेक्सपीयर के मशहूर नाटक 'वेनिस का सौदागर' में हमें हिटलर से कई शताब्दियों पहले अपार यहूदी-घृणा (ऐंटी-सेमिटिज्म) का परिचय मिलता है। हिटलर का काल बीसवीं शताब्दी का चौथा दशक है, जबकि यह नाटक सोलहवीं सदी के अंतिम वर्षों में लिखा गया था। नाटक में जिस वेनिस शहर का वर्णन है वहाँ यहूदी समुदाय के साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता था। वहाँ का कानून भी यहूदियों के खिलाफ भेदभाव बरतता था और सामान्य ईसाई लोगों में उनके प्रति नफरत भरी होती थी। नाटक में 'शाइलॉक' नामक यहूदी महाजन है जिसे बेहद लालची, नीच, निकृष्ट, सूदखोर बताया गया है। उसके बरक्स 'ऐंटोनीओ' नामक ईसाई है जिसे बेहद दयालु, कृपालु, मददगार, निस्पृह, पवित्र धर्म (ईसाई) का नेक बंदा दिखाया गया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नाजी सरकार द्वारा यहूदियों का नरसंहार बीसवीं सदी की हृदयविदारक घटनाओं में से एक है, जिसमें लगभग साठ लाख यहूदियों को यातनापूर्ण तरीके से मौत के घाट उतार दिया गया। इस घोर अमानवीय कृत्य में ईसाई समाज में व्याप्त यहूदी घृणा का भयंकरतम रूप प्रकट हुआ। इसके लिए पिछले सत्तर सालों से हम जर्मनी के तानाशाह अडोल्फ हिटलर को गरियाते और कोसते आ रहे हैं। आज तो नतीजा यह है कि अमेरिका में अगर कोई इस नरसंहार (हौलोकौस्ट) के प्रति अविश्वास जताता है या इस घटना के होने से इनकार करता है तो वह दंड का भागी होता है।

लेकिन यहूदियों के प्रति भीषण नफरत, जिसकी परिणति उक्त हत्याकांड में हुई, क्या वह केवल हिटलर युग की देन थी? हिटलर के प्रति सारी निंदा और आलोचना परोसने से पहले थोड़ा इस बात की ओर भी निगाह डाल लेना चाहिए कि यहूदियों के प्रति नफरत की जड़ें कहाँ थीं। सदियों से यहूदी घृणा ईसाई समाज व साहित्य का हिस्सा रही है। ईसाई धर्म की शुरुआत से ही यहूदियों को ईसा-विरोधी, पापी, नीच, भारी ब्याज पर ऋण देने वाले सूदखोर आदि कहकर कलंकित किया जाता रहा था। कहना चाहिए कि घृणा की ज्वाला तो सदियों पहले से जल रही थी, बस हिटलर ने इसे पूरी शक्ति से धधका दिया। ईसाई समाज यहूदियों को अपने से दूर रखता रहा था। संख्या बल में उनसे बहुत कम यहूदी उनसे अलग दड़बों में रहने को मजबूर थे। लेकिन अपने धर्म के पक्के यहूदी सारे आघात व अपमान सहते रहे और अप्रतिम सहनशीलता का परिचय दिया। शायद इसी के चलते आज भी यहूदी समुदाय का अस्तित्व बचा हुआ है।

शेक्सपीयर के मशहूर नाटक 'वेनिस का सौदागर' में हमें हिटलर से कई शताब्दियों पहले अपार यहूदी-घृणा (ऐंटी-सेमिटिज्म) का परिचय मिलता है। हिटलर का काल बीसवीं शताब्दी का चौथा दशक है, जबकि यह नाटक सोलहवीं सदी के अंतिम वर्षों में लिखा गया था। नाटक में जिस वेनिस शहर का वर्णन है वहाँ यहूदी समुदाय के साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता था। वहाँ का कानून भी यहूदियों के खिलाफ भेदभाव बरतता था और सामान्य ईसाई लोगों में उनके प्रति नफरत भरी होती थी। नाटक में 'शाइलॉक' नामक यहूदी महाजन है जिसे बेहद लालची, नीच, निकृष्ट, सूदखोर बताया गया है। उसके

बरक्स 'ऐंटोनीओ' नामक ईसाई है जिसे बेहद दयालु, कृपालु, मददगार, निस्पृह, पवित्र धर्म (ईसाई) का नेक बंदा दिखाया गया है। नाटक में जब ऐंटोनीओ अपने अजीज दोस्त बसानीयो के लिए शाइलॉक से उधार माँगता है, तो शाइलॉक यह शर्त रखता है कि अगर नियत समय पर उसका ऋण नहीं चुकाया तो ऐंटोनीओ को अपने शरीर का एक पाउंड गोश्त बदले में देना पड़ेगा। शाइलॉक की ऐसी डरावनी शर्त के पीछे कारण यह है कि ऐंटोनीओ सदा उसका अपमान करता आया है। उसे लोगों के बीच सदा पापी सूदखोर अभिशप्त ऋणदाता वगैरह कहता रहा है। उसने एक बार भरी भीड़ में शाइलॉक को भीड़ के बीच शाईलॉक को कुत्ता कहा था और उसके मुँह पर थूक दिया था। स्वाभाविक है शाइलॉक अपमान से तिलमिलाया हुआ है। दूसरे, ऐंटोनियो इतना भला है कि वह मुसीबत में पड़े लोगों को बिना सूद के कर्ज दे देता है, जिससे बाजार में सूद के दर में भारी गिरावट आई है और शाइलॉक को घाटा हो रहा है। इन कारणों से शाइलॉक एंटोनियो से बेहद कुपित है। वह लोगों से कहता है कि बस उसे ऐंटोनीओ के शरीर का गोश्त निकालने का मौक़ा मिले, तभी उसके दिल को तसल्ली मिलेगी। शेक्सपीयर ने यहूदी शाइलॉक को पूर्णतया राक्षसी प्रवृत्ति का चित्रित किया है।

पहले तो ऐंटोनीओ वादा कर देता है, क्योंकि उसके चार व्यापारी जहाज दुनिया के सुदूर कोनों से माल भरकर ले आएँगे। पर दुर्भाग्यवश उसके सारे जहाज डूब जाते हैं और कर्ज नहीं चुका पाता। अब वह शाइलॉक को अपने शरीर का गोश्त देने पर मजबूर है। मामला वेनिस के न्यायालय पहुँचता है। तमाम विनती के बावजूद शाइलॉक अपनी 'ऐंटोनीओ के गोश्त' की जिद पर अड़ा रहता है। लोगों की गालियाँ और हाय भी उस संगदिल को पिघला नहीं पातीं। अंत में पोर्शिया (बसानियो की प्रेयसी और यहाँ पुरुष वेश में न्यायधीश बनकर पहुँची हुई) की सूझबूझ से ऐंटोनीओ की जान बचती है। वह कहती है कि शाइलॉक अपना हिस्सा गोश्त ऐंटोनीओ के शरीर से ले सकता है, मगर इस शर्त पर कि उसके शरीर के 'ईसाई रक्त' का एक बूँद भी भूमि पर गिरा तो शाइलॉक की सारी जायदाद जब्त हो जाएगी। अब शाइलॉक घबरा जाता है और अपनी माँग से पीछे हटते हुए कहता है कि उसे पैसे ही दे दिए जाएँ, वह चला जाएगा। पर पोर्शिया बाजी पलट देती है। वह कहती है कि शाइलॉक ने जान-बूझकर ऐंटोनीओ की जान लेने की कोशिश की है और अब ऐंटोनीओ ही उसके भाग्य का फैसला करेगा। ऐंटोनीओ इसपर शर्त रखता है कि अगर शाइलॉक 'ईसाई' बन जाए और अपनी आधी जायदाद अपनी बेटी और ईसाई पति के नाम कर दे तो उसकी सम्पत्ति जब्त नहीं होगी।

वेनिस का सौदागर नाटक में मानव चरित्र के गहरे कालिमा भरे पक्षों का उद्घाटन हुआ है, लेकिन इसके लिए शेक्सपियर ने जिस पात्र का सहारा लिया है उसके पीछे उनके निजी पूर्वाग्रह बड़ी प्रखरता से लक्षित होते हैं। शेक्सपियर ने इसके लिए यहूदी पात्र को चुना। ऐसा वह कभी नहीं कर सकते थे कि यहूदी को दयावान दिखाते और किसी ईसाई को बुरा। जो कुछ शुभ, सच्चा, वांछनीय, सुंदर, पवित्र है, वह ईसाई है। ऐंटोनीओ देवतुल्य है, शरीफ और दयालु है क्योंकि वह ईसाई है। शाइलॉक पाशविक है, क्रूर है, राक्षस समान है, क्योंकि वह एक यहूदी है। अगर वह 'पवित्र ईसाई' बन जाए तो उसके सारे दोष दूर हो जाएंगे। शाइलॉक की बेटी का अपनी 'विधर्मी' नीच बाप को छोड़कर उसका पाप से कमाया धन लेकर एक ईसाई के साथ भाग जाना और फिर ईसाई धर्म कुबूल कर लेना शेक्सपीयर की नजर में पावन कृत्य है। 'जेसिका' ईसाई बनकर अपने यहूदी जन्म होने के जन्मजात पाप से मुक्त हो सकती है और ईसा के पवित्र मार्ग पर अग्रसर हो सकती है ।

चूँकि यह नाटक ईसाई समुदाय का गुणगान करता है इसलिए यह यूरोप में बहुत लोकप्रिय रहा है, जहाँ ईसाइयों की बहुतायत है। शेक्सपीयर खुद ईसाई थे और यहाँ उनकी धर्मांधता का भरपूर परिचय मिलता है। नाटक में शायद हर पन्ने पर शाइलॉक को 'निकृष्ट कुत्ता' और आमानवीय पशु कहा गया है। नाटक पढ़ते वक्त स्तब्ध रह जाना पड़ता है कि नाटककार की यहूदी के प्रति घृणा कितनी भयंकर है। इस कृति ने सचमुच यहूदी-घृणा को साहित्यिक वैधता प्रदान की। यह बड़े चाव से ये नाटक यूरोप के नामी मंचों पर खेला जाता रहा है। नाजी जर्मनी में, जहाँ यहूदी-घृणा का सबसे विकराल रूप उभरकर सामने

आया, वहाँ 'वेनिस का सौदागर' सबसे ज़्यादा मंचित और पसंद किया जाने वाला नाटक बन गया। ऐसा कहना शायद गलत नहीं होगा कि सिर्फ राजनीति ही नहीं, साहित्य भी किसी समुदाय विशेष के प्रति पूर्वाग्रह और नफरत फैलाने में पीछे नहीं रहा है। आगे चलकर एक और अंग्रेज चार्ल्ज डिकेंस ने भी अपने बहुचर्चित उपन्यास 'ऑलिवर ट्विस्ट' में इस यहूदी-घृणा (ऐंटी-सेमिटिज़्म) का प्रचुर उदाहरण दिया। उपन्यास का मुख्य खलनायक चरित्र 'फैगिन' यहूदी है जो अनाथ बच्चों से चोरी, जेबकतरी करवाता है और उनका गिरोह चलाता है।

मर्चेंट ऑफ वेनिस को यहूदी समाज में किस रूप में देखता है यह जानना भी दिलचस्प होगा। प्रसिद्ध यहूदी आलोचक अवीवा डेच, जो पुनर्जागरण और आधुनिकतावादी काल के साहित्य की विशेषज्ञ हैं, कहती हैं कि उनके घर में इस नाटक को 'भयानक, यहूदी विरोधी नाटक' के रूप में देखा जाता था। शाईलश्वक ने जैसा अपमान झेला था, उसे हमारे कई दोस्तों और रिश्तेदारों ने कुछ दशक पहले द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान यूरोप में अनुभव कर लिया था।... मेरे समुदाय के लिए नाटक का सबसे सकारात्मक पहलू वह है जिसमें शाईलॉक एक इनसान के रूप में अपने पक्ष को शानदार तरीके से पेश करता हुआ कहता है, "उसने (एंटोनियो ने) मुझे अपमानित किया और मेरे नुकसान पर हँसा। मुझे व्यापार में जब फायदा हुआ तो उसने मेरा मजाक उड़ाया। मेरी कौम को अपमानित किया। मेरे दोस्तों का मनोबल तोड़ा, मेरे दुश्मनों को भड़काया। इन सबका क्या कारण है? कि मैं एक यहूदी हूँ! यह देखो, क्या मेरे पास यहूदी आँखें नहीं हैं? यहूदी हाथ, अंग, भावनाएँ, स्नेह, जुनून नहीं हैं? हम (ईसाई और यहूदी) एक जैसा भोजन करते हैं? हमें एक जैसे हथियार से चोट लग सकती है। हमें रोग, इलाज, गर्म और ठण्डा, तथा एक ईसाई की तरह सर्दी और गर्मी लगती है। अगर आप हमें काँटा चुभाएँगे, तो क्या हमारा खून नहीं बहेगा? अगर आप हमें जहर देंगे तो क्या हमारी मौत नहीं होगी? और अगर आप हमारे साथ गलत करेंगे तो क्या हम बदला नहीं लेंगे? अगर हम इन मामलों में आपके जैसे हैं, तो बाकी मामलों में भी हम आपके समान होंगे। अगर एक यहूदी किसी ईसाई के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो उसका प्रत्युत्तर क्या है? प्रतिशोध। अगर एक ईसाई किसी यहूदी के साथ दुर्व्यवहार करता है, तो ईसाई उदाहरण के हिसाब से उसकी पीड़ा का क्या प्रत्युत्तर होना चाहिए? प्रतिशोध क्यों नहीं? आप व्यवहार में मेरे साथ जो खलनायकी दिखाएँगे, मैं भी उसी पर अमल करूँगा। और इस तरह चीजें बदतर होती जायेंगी।" (द मर्चेंट ऑफ वेनिस का एक यहूदी पाठ, अवीवा डेच, 15 मार्च 2016, बीएल डॉट यूके)। एक ही कृति उसमें चित्रित खल या सद् पात्र के समुदायों के लिए अलग अलग अर्थ रखती है।

कोई कितना भी महान साहित्यकार हो, उसके कुछ निजी आग्रह-दुराग्रह होते ही हैं। वह अपने वर्तमान देश-काल व उसकी परिस्थितियों से बंधा होता है। उसकी यह सीमा आलोचना के दायरे से बाहर नहीं होती। यहूदियों के प्रति व्याप्त घृणा के संकेत आधुनिक काल में भी बड़े साहित्यकारों में देखने को मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ, ज्याँ पाल सार्त्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'एज ऑफ रीजन' में एक स्त्री रोग विशेषज्ञ, जिसे चोरी-छिपे औरतों के गर्भपात जैसे निकृष्ट कार्य को करते बताया गया है, वह यहूदी है। चार्ल्स डिकेंस की चर्चा हमने ऊपर की ही है। 'वेनिस का सौदागर' में को पढ़ते हुए उसमें ईसाइयत के प्रति घोर पक्षधरता को देखते हुए बार-बार लगता है जैसे नाटककार ईसाई बनाने के एक मिशनरी भाव से संचालित है। अपने बेहद मजबूत और कालजयी कथानक, मानव प्रकृति के अंधेरे-उजले रूपों, पक्षों और गूढ़तम सत्यों के उद्घाटन जैसी महान उपलब्धियों के युक्त इस नाटक को खेलते या पढ़ते समय यह भी याद रखना चाहिए कि यह एक 'एंटी-सेमेटिक' नाटक है। यहूदियों के प्रति होलोकास्ट में जिस घृणा और अमानवीयता का प्रदर्शन हुआ उसके कुछ छींटे 'वेनिस का सौदागर' पर भी पड़ते हैं।

❖

निदेशक, केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान
गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग
7वाँ फ्लोर, अंत्योदय भवन, सीजीओ कॉपलेक्स, नई दिल्ली - 110003
ईमेल : bkumar1964@gmail.com मोबाइल : 78277935454

हिंदी उपन्यासों में देश विभाजन की त्रासदी

कुमारी मनीषा

देश विभाजन के बाद आर्थिक शोषण की स्थिति थी। आर्थिक रूप से विभाजन के समय व्यक्तियों को नई समस्याओं का सामना करना पड़ा था। मनुष्य आर्थिक रूप से दूसरों की सम्पत्ति को हथिया लेना चाहता था। इसे 'कितने पाकिस्तान', झूठा सच' में अच्छी तरह दिखाया गया है। देश विभाजन के बाद लोगों की नैतिकता समाप्त हो गई क्योंकि सब अपने बारे में ही सोचने लग गए थे। 'झूठा-सच' उपन्यास में यशपाल दिखाते हैं कि विभाजन के समय लोगों में प्रेम विश्वास व नैतिकता थी वह खत्म हो चुकी थी। 'आधा गाँव' उपन्यास में राही मासूम रजा व्यक्त करना चाहते हैं कि ठाकुर साहब के नैतिक मूल्यों का ह्रास हो गया था इसलिए वे हिन्दुओं को छोड़कर मुसलमानों का साथ दे रहे थे। 'कितने पाकिस्तान' में कमलेश्वर ने दिखाया है कि आधुनिक समय में युद्धों के परिणाम स्वरूप लोगों के नैतिक मूल्य भी खत्म हो चुके हैं।

स्वतंत्रता के साथ विभाजन ऐसी असहज और बड़ी घटना थी जिसकी पूरी गम्भीरता को तत्काल समझ पाना कठिन था। उसने ऐसी संक्रमणशील परिस्थितियों को जन्म दिया, जिसमें सब कुछ अस्थिर, अस्त-व्यस्त एवं अनिश्चित हो गया। स्वीकृति और इनकार, खुशी और गम, आशा और निराशा के युग्मों ने चेतना को भंग और खंडित कर दिया था और एक ऐसी मानवीय विभीशिका उपस्थित हो गई थी, इतिहास में जिसकी कोई मिसाल नहीं थी। किसी बड़ी साहित्यिक कृति के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं रह गई थी।

विभाजन ने साहित्य में टूटन और निराशावादिता को जन्म दिया, जो उर्दु में बहुत बाद तक प्रकट होती रही। परन्तु हिन्दी, उर्दु, पंजाबी, सिंधी, बंगला तथा अंग्रेजी में अब भी रचनाएँ हो रही हैं। विभाजन के साथ मिली-जुली अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं ने अपने को विभिन्न रूपों में व्यक्त किया। साहित्य में गृह-विरह उदासी तथा अकेलेपन की भावनाएँ उभरने लगी।

देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास :

देश विभाजन को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यासों में 'सत्ती माता का चौरा' (भैरव प्रसाद गुप्त), 'भूले विसरे चित्र' (भगवती चरण वर्मा), 'झुठा सच' (यशपाल), 'तमस' (भीष्म साहनी), 'कितने पाकिस्तान' (कमलेश्वर), 'लौटे हुए मुसाफिर' (कमलेश्वर), 'देश की हत्या' (गुरूदत्त), 'आधा गाँव' (राही मासूम रजा) आदि प्रमुख है।

देश विभाजन को लेकर लिखे गए उपन्यासों में उपन्यासकारों ने उन सब समस्याओं को चित्रित किया है जो उन्होंने अनुभव की थी। अत्याचार, दंगे, फसाद, विभाजन के कारण, विभाजन की पृष्ठभुमि, विभाजन के प्रभाव, उपन्यासों में उल्लेख किया गया है। लोगों को इस दौरान क्या-क्या परेशानियाँ उठानी पड़ी। जैसे नारी की इज्जत को उछाला गया, हिन्दुओं द्वारा कैसे मुसलमानों पर और मुसलमानों द्वारा कैसे हिन्दुओं पर अत्याचार किये गये, आदि की विशद् विवेचना हुई है।

अंग्रेज इस षड्यंत्र के साथ भारत आये थे कि हिंदू और मुसलमानों में विवाद पैदा करें। क्योंकि वे फुट डलवाकर ही शासन करना चाहते थे। हिन्दुओं में मुसलमानों के विरोध में और मुसलमानों में हिन्दुओं के विरोध में बड़े आन्दोलन करने के लिए उकसाये। दोनों सम्प्रदायों में अलगाव की भावना पैदा हो गई थी। भाईचारे से रहने वाले हिंदू-मुसलमानों की मानसिकता में परिवर्तन आ गया था, क्योंकि आपसी मतभेद गहरे होने लगे थे। इसी कारण मुसलमानों ने अलग राष्ट्र की माँग रखी। हिन्दु-मुसलमान नेता सभी सत्ता के लिए संघर्ष कर रहे थे। यही मुझे विभाजन का कारण बने। यही कारण थे भारत-पाकिस्तान विभाजन के।

देश विभाजन की त्रासदी से उत्पन्न मोह भंग की स्थिति :

देश विभाजन के कारण आम आदमी में जीवन से विरक्ति का भाव पैदा हो गया था। उसे न तो अपने परिवार से, न समाज से, न राजनीति में कोई दिलचस्पी रह गई थी। क्योंकि उस समय सभी अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे हुए थे। विभाजन में पारिवारिक रिश्तों में भी कई प्रकार क तनाव आ गये थे। मानव समाज और राजनीति से जो पूरी तरह विरक्त हो चुका था।

'आधा गाँव' उपन्यास में राही मासूम रजा के द्वारा मोहभंग की स्थिति को उजागर किया गया है। "गंगौली गाँव के मुसलमानों को पाकिस्तान व्यक्तिगत स्तर पर व्यथित कर रहा था। गंगौली गाँव तन्हाई के आलम में डूब गया था। बाप से बेटा दूर था तो पति से पत्नी के बीच में मीलों का फासला था, जो पाकिस्तान की देन था।"[7]

देश विभाजन के कारण विस्थापन की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। परिवार में अलगाव पैदा हो गया था। परस्पर प्रेम समाप्त हो गया था। घृणा अलगाव पैदा हो गया था। 'आधा गाँव' उपन्यास में राही मासूम रजा ने भी विभाजन के समय रिश्ते-नाते कैसे समाप्त हो गये थे। अपने ही परिवार पराये हो गये थे। परिवार से ही व्यक्ति को मोह, प्रेम समाप्त हो गया था। ये सब पाकिस्तान बनने के कारण था। हकीम साहब बड़े दर्द के साथ कहते हैं- "ए बशीर ई पाकिस्तान त हिंदू-मुसलमान को अलग करने को बना रहा। बल्कि हम बात ई देख रहे हैं कि ई मियां-बीबी, बाप-बेटा और भाई-बहन को अलग कर रहा।"[8]

'तमस' उपन्यास में भीश्म साहनी ने जहाँ एक ओर शरणार्थी समस्या उभारा है वहाँ दूसरी ओर पेट की भुख के आगे मानवीय रिश्तों का वर्णन किया है जो खोखली पड़ चुकी है। शरणार्थी पण्डित को अपनी बेटी का पता लग जाने पर भी वह उसको लेने नहीं जाता। वह कहता है - "हमसे अपनी जान नहीं सम्भाली जाती, बाबूजी, दो पैसे जेब में नहीं है, उसे कहाँ से खिलाएँगे, खुद क्या खाएँगे।"[9]

अत: भीष्म साहनी दिखाना चाहते हैं कि पिता बेटी के रिश्ते को भी तिलांजली दे दी गई है। शरणार्थियों में ऐसे लोग भी थे जो अपनी मरी घरवाली की लाश से सोने के कड़े उतारना चाहते थे। 'देश की हत्या' उपन्यास में गुरूदत्त ने नारी द्वारा अपने आत्मरक्षा के लिए चिता में स्वयं को भस्म कर देने का वर्णन किया है। 'ओस की बूँद' उपन्यास में अली बाकर अपने पिता वजीर हसन से पाकिस्तान चल कर बसने की बात करता है। अत: विभाजन के बाद ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थी कि व्यक्ति का परिवार से मोहभंग हो चुका था। खून के रिश्ते समाप्त हो चुके थे। यह स्थितियाँ विभाजन के बाद पैदा हुई थी।

देश विभाजन के समय मानव मूल्य गिर चुका था। विभाजन के समय परिस्थितियाँ बदलने लगी थी और परिस्थितियों के बदलने के साथ मूल्य परिवर्त्तन एवं व्यक्ति की मानसिकता में बदलावा आता है। बेरोजगारी भय, संत्रास, अकेलापन, जीव-संवेदना, पारिवारिक-विघटन आदि ने व्यक्ति के मूल्यों को समाप्त कर दिया था। 'कितने पाकिस्तान' के लेखक ने मानव को मूल्य तथा सरोकारों के प्रति चिंताग्रस्त दिखया है।

उस समय सामाजिक और पारिवारिक रूप से नैतिक मूल्य समाप्त हो गये थे। 'कितने पाकिस्तान', 'झूठा सच' आदि में यह दर्शाया गया है कि देश-विभाजन के फलस्वरूप पारिवारिक सम्बन्धों की स्थिति क्या रह गई थी। देश विभाजन के समय मानव मूल्यों का विघटन हो चुका था, जहाँ परिवार तो टूटे ही थे, वहीं दूसरी ओर समाज भी टूटा था। 'झूठा सच', 'देश की हत्या', 'कितने पाकिस्तान', 'स्वाधीनता के पथ पर' आदि उपन्यासों में सामाजिक मूल्यों का स्खलन दिखाया गया है।

देश विभाजन के बाद आर्थिक शोषण की स्थिति थी। आर्थिक रूप से विभाजन के समय व्यक्तियों को नई समस्याओं का सामना करना पड़ा था। मनुष्य आर्थिक रूप से दूसरों की सम्पत्ति को हथिया लेना चाहता था। इसे 'कितने पाकिस्तान', झूठा सच' में अच्छी तरह दिखाया गया है। देश विभाजन के बाद लोगों की नैतिकता समाप्त हो गई क्योंकि सब अपने बारे में ही सोचने लग गए थे। 'झूठा-सच' उपन्यास में यशपाल दिखाते हैं कि विभाजन के समय लोगों में प्रेम विश्वास व नैतिकता थी वह खत्म हो चुकी थी। 'आधा गाँव' उपन्यास में राही मासूम रजा व्यक्त करना चाहते हैं कि ठाकुर साहब के नैतिक मूल्यों का ह्रास हो गया था इसलिए वे हिन्दुओं को छोड़कर मुसलमानों का साथ दे रहे थे। 'कितने पाकिस्तान' में कमलेश्वर ने दिखाया है कि आधुनिक समय में युद्धों के परिणाम स्वरूप लोगों के नैतिक मूल्य भी खत्म हो चुके हैं।

देश विभाजन की पीठिका पर लिखे गये हिन्दी उपन्यासों में चित्रित नारी की दुर्दशा:

दंगे में चाहे वे मूस्लिम थे या हिन्दु दोनों ने ही पहल की थी। जो जिस क्षेत्र में समर्थ था, उसने दूसरे को दबाने, मारने में कोई कसर न छोड़ी। देश विभाजन के समय नारी मात्र भोग विलास की वस्तु बन गई थी। हिंदू-मुस्लिम नारियों पर और मुसलमान हिंदू नारियों को अपनी हवस का शिकार बना रहे थे। इस नारी शोषण के कई स्त्रियों ने तो अपने प्राणो तक की बलि दे दी। विभाजन के समय मानव का शोषण आर्थिक, सामाजिक, मानसिक सभी दृष्टियों में हो रहा था। इस शोषण से पिसने वालों में सबसे अधिक संख्या गरीबों तथा महिलाओं का था। नारी शोषण तो भयंकर रूप धारण

कर लिया था। 'झूठा-सच' में तारा को जो भयानक शोषण होता है। 'आधा गाँव' में उल्लेख किया गया है कि शोषण की स्थिति हिन्दू समाज में ही नहीं है बल्कि मुस्लिम समाज में भी है। वहाँ भी विधवाओं की स्थिति दयनीय थी। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में कमलेश्वर ने शोषण की स्थिति को उजागर किया है।

यशपाल के 'झूठा-सच' की तारा को जहाँ तमाम नारियों की भाँति समाज की बर्जुवा मनोवृत्ति का सामना करना पड़ता है, वहीं दूसरी तरफ वह निर्जिव परम्पराओं और सड़ी-गली मान्यताओं का उल्लंघन कर वैज्ञानिक जीवन दृष्टि अपनाने के लिए व्याकुल दिखाई देती है। आर्थिक परतंत्रता के कारण ही समाज में नारी मात्र भोग्या के रूप में स्वीकार की गई है। जीवन के साधनों से वंचित होने के कारण वह पुरूष के सारे अत्याचार सहती है। खन्ना का यह कथन - ''स्त्री की स्थिति ही समाज में ऐसी है। जब तक उसे जीवन के साधन जुटाने का स्वतंत्र अवसर और अधिकार नहीं, उसकी स्वतंत्रता, प्रेम और आचार पुरूष का खिलौना है।''[4]

'झूठा-सच' उपन्यास में यशपाल ने विभाजन के आस-पास के व्यापक कत्लेआम, बलात्कार और लूटपाट का वर्णन किया है। स्त्रियाँ बेइज्जती और जहालत से बचने के लिए आत्महत्या कर लेती हैं। परिवार छिन्न-भिन्न हो जाता है। पूरी को अपने परिवार का पता कई साल बाद चलता है। बंती अपने पति से बिछुड़ गई है। किन्तु दिल्ली में जब वह अपने पति को ढूँढ लेती है, पर पति उसे अपनाने से इनकार कर देता है और वह सर पीटकर मर जाती है। चिंती के माता-पिता भी उसकी इज्जत लुट जाने के बाद उसे नहीं रखते हैं। उर्मिला ससुराल जाते ही विधवा हो जाती है। बर्बरता और अत्याचार के कारण एक औरत पागल हो जाती है। ''सम्पूर्ण वातावरण अमानवीय हो उठा है, जिसमें सभी तरह के मूल्य खो गए हैं।''[5]

झूठा-सच' में बलात्कार के उपरान्त तारा की अवस्था का मार्मिक चित्रण हुआ है। कनक अपने पति जयदेव पुरी से संबंध नीरस महसूस होने पर तलाक देकर, रूढ़ियों से जर्जरित घर में दम घोटती और पति की दासता स्वीकार करती हुई पत्नियों के लिए एक नूतन संदेश छोड़ देती है।

भारत विभाजन के समय जाने कितनी लड़कियो और स्त्रियों के साथ जबरदस्ती की गई। बहुत से मुसलमान जब उन लड़कियों और स्त्रियों को छीनकर ले गये तब उनके घर के पुरूष बैठकर देखते रह गये, उनके लिए संघर्ष नहीं कर सके। लेकिन जब स्त्रियाँ और लड़कियाँ घर का पता लगाकर रोती, बिलखती हुई पूर्ण रूप से संत्रस्त होकर आई, तो उसको घर में शरण नही मिली। बंती अपने घर आती है तो उसका पति कहता है - ''दो महीने मुसलमान के घर रहकर आई है कैसे रख लें - दूर रह तुझसे कह दिया। तू अब हम लोगों के किस काम की। सास ने बंती का सिर पांव से परे ढकेल दिया।''[6]

तारा के शब्दों में स्त्री जीवन के कितने विवशता है - ''तारा सोच रही थी हाय रे स्त्री का जन्म, तेरी यह हकीकत है। इतनी बड़ी सेठानी, मालकिन, बच्चों की माँ, कोठियाँ, कारें, लाखें का जेवर, नौकर-चाकर, सामाजिक स्थिति और आदर पर पति जब चाहे पीट ले। स्त्री का जीवन मर्दो के जुल्मों का शिकार होने के अतिरिक्त और क्या।''[7]

राही मासूम रजा झांगटिया, चमाईन, दुलरिया, भंगीन, मेहरूनिया व सैफुनियाँ, नाईन सरीखे स्त्री पात्रों के माध्यम से जहाँ नारी विमर्श को सामाजिक परिपेक्ष्य प्रदान करते हैं। भारत विभाजन के समय सबसे ज्यादा अत्याचार नारी पर हुआ।

रामानंद सागर के उपन्यास 'और इन्सान मर गया' में उषा, निर्मला और आनंदी - इन तीन नारी चरित्रों की मन:स्थिति का अंकन हुआ है। उषा आनंद की प्रेमिका है। विभाजन की जटिल स्थितियों के कारण आनंद लाहौर से भागकर पाकिस्तान के ही एक अस्थायी कैम्प में शरण पाता है और उषा वहीं फंस जाती है। आनंद उषा को भी ढूँढकर अपनी ही कैम्प में ले आता है। कैम्प में उषा के पिता भी रहते हैं। इसलिए आनंद पहले की तरह खुलकर मिलजूल नहीं पाता। इस प्रकार उषा को संदेह होता है कि मुसलमान गुंडों के हाथ पड़ जाने से आनंद उसे अपवित्र समझता है और वह जहर खाकर मर जाती है। संदेह के कारण वह आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार देश विभाजन के कारण उत्पन्न एक त्रासद मन:स्थिति ने एक वास्तविक त्रासदी घटित कर दी। उषा का हिंदू संस्कार आत्महत्या को प्रेरित करता है। उसी मन:स्थिति मोहभंग की मन:स्थिति है।

'झूठा-सच' के पहले भाग 'वतन और देश' में भुक्तभोगी औरतों की मन:स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है।

विभाजन संबंधी उपन्यास और मानवीय समस्या :

विभाजन के कारण लोगों के जीवन में विरक्ति आ गई थी। परिवार, समाज, राजनीति से मोहभंग हो गया था क्योंकि वे परिस्थितियों के आगे मजबूर थे। इसलिए वे कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें, क्या न करें। अपने स्थानों को छोड़कर विस्थापित हुए लोग शरणार्थी कहलाए। उन्हे बेरोजगारी, अत्याचार, शोषण आदि अनेक चीजों का सामना करना पड़ा। हिंदू और मुसलमान विभेद की जड़े मजबूत हो चुकी थी। वे एक म्यान में दो तलवारों के समान थे और भारत - पाक विभाजन

अपरिहार्य था। शरणार्थियों को पुनर्वास की समस्याएँ आई। कितना – कितना समय उन्हें कैम्पों में गुजारना पड़ा। जहाँ उनकी संख्या अधिक होने पर पूरी सुविधाएँ भी उन्हें नहीं मिल रहे थे। अपनी जान बचाकर भागे ऐसे जनसमूह के पास खाने-पीने, पहनने, ओढ़ने की दृष्टि से कुछ भी नहीं था। अब वह समाज के हित राजनीतिक हित या परिवार के हित से ऊपर उठकर अपने हित की चिंता कर रहे थे। विभाजन के बाद लोग भ्रष्टाचार का सहारा लेकर अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे क्योंकि उस समय धन, रोटी, कपड़ा और मकान एक सबसे बड़ी समस्या थी।

'झूठा-सच' उपन्यास में यशपाल ने विभाजन के पहले से लेकर विभाजन के बाद तक की अनेक मानवीय समस्याओं का विस्तृत परिदृश्य उपस्थित किया है। इसमें साम्प्रदायिक दंगों के कारण आगजनी और हत्या के कई चित्र हैं। लोग बेसहारा और आर्थिक रूप में पंगु हाने लगे थे। जीवन अस्त-व्यस्त और अनिश्चित हो गया था। "सम्पूर्ण वातावरण अमानवीय हो उठा है, जिसमें सभी तरह के मूल्य खो गए हैं। तंगहाली ने शरणार्थियों को लुटेरा, चोर और भिकमंगा बना दिया है। पूरी को लूटते समय शरणार्थी जो औचित्य पेश करता है, उससे उसकी बदलती हुई मनोवृति का संकेत मिलता है।"[8]

'और इन्सान मर गया' (रामानंद सागर) विभाजन के तत्काल बाद के छिन्न-भिन्न तथा संकटग्रस्त मानवीय जीवन को केन्द्र में रखा गया है जिसमें नरसंहार, आगजनी, विस्थापन एवं देशांतरण के साथ ही अनगिनत मानवीय समस्याएँ उठ खड़ी हुई है। सभी चीजों के पुराने संदर्भ और अर्थ विघटित हो गए हैं, "उन दिनों अल्लाह और महादेव के नाम सुनकर लोग इस तरह काँप उठते, जैसे वह भगवान नहीं कोई जिन्न-भूत हो।"[9]

"आग बुझाने का कार्य प्रसंसनीय समझे जाने के बदले घृणा के साथ देखा जाने लगा। लुटे हुए, बदहाल, आतंकित और पीड़ित लोगों का हरेक चीज पर से विश्वास उठ गया है।"[10]

रामानंद सागर ने नंगी औरतों का जूलूस निकाले जाने और उनके बिक्री का वर्णन किया है। उपन्यास में स्त्रियों पर ढाए जाने वाले जुल्म और अत्याचार के ज्यादा चित्र है। "अमानवीय कृत्य के अविश्वसनीय अनुभवों से गुजरने के बाद शाहिद अहमद का व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है। वह किसी के साथ कोई बात नहीं करता और न किसी से सम्पर्क रखता है।"[11]

रामानंद सागर ने सभी तरह के मानवीय संबंधों के खत्म हो जाने को बार-बार रेखांकित किया है। लोगों के अपने दुःख ही इतने भारी पड़ गये हैं कि वे पत्नी या बच्चे किसी की कोई परवाह नहीं करते।

'वह फिर नहीं आई' (भगवती चरण वर्मा) श्रीरानी, श्यामला रावलपिंडी से विस्थापित होकर दिल्ली चली आई है और ज्ञानचंद से अपनी विडम्बनापूर्ण स्थिति का जिक्र करती है "शायद कभी बहुत बड़ा इलाका रहा था मेरा। लेकिन आज तो मैं बेघर-बार हूँ। न मेरा कोई अपना रह गया है, न मेरा कोई ठिकाना है। वक्त की गर्दिश में लगातार घूमती रहती हूँ, बेकार बेमतलब।"[12] वह उस बर्बरता और तबाही को याद करती है, जिसमें सभी तरह की सामाजिक मान्यताएँ और मानवीय मूल्य विघटित हो गए थे। वह अपने को बेचे जाने के भयावह अनुभव से गुजर चुकी है। "ज्ञानचंद जी, जिंदगी में मैंने पहली दफा इंसान का मोलभाव होते देखा और वह इंसान मैं थी।"[13]

'सती मैया का चौरा' (भैरव प्रसाद गुप्त) आजमगढ़ के गाँव विभाजन से संबंधित है। "बहुत सारे मुसलमान पाकिस्तान चले जाते हैं। लेकिन जो रह जाते हैं वे भय और असुरक्षा की भावना से ग्रस्त हैं। उनका स्वाभिमान छिन जाता है। वे हिन्दुओं की खुशामद करने तथा अपमान झेलने का मजबूर हो जाते हैं।"[14]

'आधा गाँव' (राही मासूम रजा) में विभाजन के गहन और दूरगामी प्रभावों का चित्र है। पृथकतावादी साम्प्रदायिकता की प्रक्रिया से गंगौली गाँव भी गुजर रहा है "मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता सक्रिय हैं अधिकांश मुसलमान पाकिस्तान के पक्ष में मत देने वाले हैं, लेकिन वे नहीं जानते कि पाकिस्तान बनने का मतलब क्या है।"[15]

'आधा गाँव' उपन्यास में तन्नु कहता है – "नफरत और खौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज मुबारक नहीं हो सकती।"[16] तन्नु इसलिए पाकिस्तान जाने का विरोधी है, क्योंकि वह अपने गाँव की मिट्टी और हवा में रचा-बसा है और उससे प्यार करता है। तनाव, भय और आतंक का वातावरण गहरा होता जा रहा है और कोई नहीं समझ पा रहा था कि क्या किया जाये। 'आधा गाँव' के पात्रों पर मुर्दनी और उदासी छाई हुई है। अपने गाँव में रहते हुए भी वे अजनबी और अकेले हो गए हैं।

'ओस की बूँद' (राही मासूम रजा) उपन्यास विभाजन के बाद भी जारी रहने वाले भय, संदेह और नफरत को प्रतिबिम्बित करता है। "वजीर हसन जो विभाजन के पहले पाकिस्तान बनाने के लिए संघर्ष कर रहा था, विभाजन के बाद अपनी ही सृष्टि से दुःखी है।"[17]

वजीर हसन का बेटा पाकिस्तान चला गया है, लेकिन वह खुद वहाँ नहीं जा सकता क्योंकि गाजीपुर से अलग उसकी कोई अस्मिता नहीं है। वह अन्य भारतीय मुसलमानों की तरह नीचा गिरकर हरेक प्रकार का समझौता भी नहीं कर सकता इसलिए वह एकाकी और अजनबी हो गया है। आंतरिक बेचैनी और उथल-पुथल के बीच एक

दिन वह पुलिस की गोली से मारा जाता है।

"आवेदा का भविष्य नष्ट हो चुका है क्योंकि उसके पति पाकिस्तान जाकर दूसारी शादी कर ली है और उसे तलाक दे दिया है।"[18] विभाजन के साथ आने वाली मुसीबतों ने हाजरा को पागल कर दिया है।

'लौटे हुए मुसाफिर' (कमलेश्वर) उपन्यास में संशयग्रस्त साम्प्रदायिक वातावरण के बीच टूटते हुए मानवीय सम्बन्ध और विसंगठित होते हुए आर्थिक जीवन को विस्तार से चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में पाकिस्तान जाने के कारण सलमा का प्रेम संबंध टूट जाता है तथा उसका प्रेमी आत्महत्या कर लेता है।

'तमस' (भीष्म साहनी) उपन्यास विभाजन के कुछ महीने पहले की मानवीय विभीषिका से संबंधित है। साम्प्रदायिकता के कारण हिन्दू-मुसलमान के तनावपूर्ण संबंध का संकेत गहराने लगा है। राष्ट्रवादी और पृथकतावादी दृष्टिकोण संबंधी भेद के कारण मुसलमानों के आपसी रिश्तों में भी दरार पड़ने लगी है, अमानवीय साम्प्रदायिक वातावरण के प्रभाव के कारण। "शाहनवाज का मानसिक संतुलन गिड़ जाता है और उसके ठोकर मारने से मिलखी की मृत्यु हो जाती है।"[19]

"हरनाम सिंह का परिवार बिखर गया है। उसके बेटे की जान बचाने की खातिर आत्मसम्मान के निम्नतम स्तर पर उतरकर धर्म परिवर्तन करना पड़ता है और बेटी जसवीर कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर लेती है।"[20]

"एक लड़की की बलात्कार के कारण मौत हो जाती है।"[21] प्रकाशो का अपहरण हो जाता है पर उसके माता-पिता आर्थिक मजबूरियों के कारण अब उसे लाना नहीं चाहते हैं।

देश विभाजन से संबंधित उपन्यासों में अभिव्यक्त उपर्युक्त मानवीय समस्याओं पर अगर हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि अमानुशिक कृत्य, विस्थापन, सम्बन्धों की विच्छिन्नता, मूल्य चेतना का अभाव तथा मानसिक विकृति से संबंधित समस्याएँ उन सबों में मौजूद हैं। अस्मिता और गृह विरह की भी समस्याएँ हैं। ये मानवीय समस्याएँ सर्जनात्मक दृष्टि संरचना एवं पद्धति के बीच से प्रकट हुई हैं और कलात्मक मूल्य और प्रभाव को निर्धारित करती है।

अंत में :

अंत में यह कहा जा सकता है कि देश विभाजन जैसी घटना के उपरान्त जब सभी मानवीय व रागात्मक मूल्य नष्ट हो गए थे, सभी परम्पराएँ व संस्कृति खण्डित हो गई थी, ऐसे माहौल में बसना अपने आप में चुनौतिपूर्ण कार्य हो गया था। इस सबको उभारने का प्रयत्न उपन्यासों में किया गया है। जैसे 'झूठा-सच' उपन्यास का प्रथम भाग दंगों, आगजनी, लूटपाट, विस्थापन की त्रासदी से जुड़ा है वहीं दूसरा भाग शरणार्थी समस्या, पुनर्वास व जीवन के मानव मूल्यों के ह्रास से सम्बद्ध है। राही मासूम रजा ने 'आधा गाँव' में शरणार्थी व पुनर्वास संबंधी समस्या को अलग ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि मात्र विस्थापित लोग ही इस समस्या से नहीं जूझ रहा है, वरन् अपने ही देश में अपने ही लोगों के बीच रहकर भी लोग उजड़ गए।

संदर्भ :

1. 'आधा गाँव, लेखक-राही मासूम रजा, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. -373
2. वही, पृ.सं.-297
3. 'तमस', लेखक-भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं.-267
4. 'देशद्रोह', लेखक-यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, पृ.सं.-293
5. 'झूठा-सच', लेखक-यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, पृ.सं.-437
6. वही, पृ.सं.-135, भाग-2
7. वही, पृ.सं.-124, भाग-2
8. वही, पृ.सं.-437, भाग-1
9. 'और इंसान मर गया', लेखक-रामानंद सागर, पंजाबी पुस्तक भण्डार, दिल्ली 1977, पृ.सं-26
10. वही, पृ.सं.-55
11. वही, पृ.सं.-166
12. 'वह फिर नहीं आई', लेखक-भगवती चरण वर्मा, रा. प्र.ए दि. 1960, पृ.सं.-23
13. वही, पृ.सं.-60
14. 'सती मैया का चौरा', लेखक-भैरव प्रसाद गुप्त, लोक भारती प्रकाशन, पृ.सं.-295
15. 'आधा गाँव', लेखक-राही मासूम रजा, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली - 1975, पृ.सं.-263
16. वही, पृ.सं.-263
17. 'ओस की बूँद', लेखक - राही मासूम रजा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-1970, पृ.सं.-57
18. वही, पृ.सं.-32
19. 'तमस' लेखक - भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं. -132
20. वही, पृ.सं.-214
21. वही, पृ.सं.-211

❖

शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखंड)
बी-59/2, रेलवे कॉलोनी
राउरकेला (उड़िसा) 769013 मो. 9861738250

मंजरी कुमारी

चाँद से संवाद

क्या मानते हैं आप सब, अकेले की जिंदगी बहुत आसान और सुकून भरी होती है? हम खुद को समझते हैं, परेशानियों से परे अपनी जिंदगी में चैन की सांस लेते हैं- यदि आप ऐसा सोचते हैं तो आप गलत हैं। इस यथार्थ को मैंने, हाँ मैंने ही भोगा है।

धीरे-धीरे परिवार, दोस्त और सोशल मीडिया सर्किल से मैं दूर होने लगी थी। बस स्नैपचैट का कम्पलसरी टास्क यानि स्ट्रीक न टूट जाए, इसलिए रोज एक स्नैप भेज दिया करती थी। स्ट्रीक के बढ़ते नंबर मुझे उतने दिनों की याद दिलाते थे जितने दिनों से मैं उलझन में थी।

अपने लोगों की दुनिया से दूर साक्षी अब बेंगलुरु में रहने लगी थी। अपनी अकेली दुनिया में उसे उसका वन बीएचके फ्लैट भी बहुत बड़ा लगता था। इंसानों से बेहतर उसे बेजुबान लगते थे। इसका कारण बेजुबानों का बेवजह जुबान न चलाना था। वन बीएचके फ्लैट को हाल ही में साक्षी ने 12 लाख में रजिस्ट्री करवाया था। मेन सिटी से एक किलोमीटर दूर साक्षी का फ्लैट आलीशान अपार्टमेंट का एक हिस्सा था जिसमें फ्रंट में थ्री बीएचके फ्लैट थे और वन बीएचके अपार्टमेंट के पिछले हिस्से में थे।

साक्षी की बालकनी से रात में बस चाँद और उसके करीबी तारे दिखते थे। साक्षी अक्सर देर रात चाँद से संवाद किया करती थी। आज क्या पहना, क्या खाया, कहाँ गई- सब का ब्यौरा चाँद के पास रहता था। चाँद को भी उसकी ड्यूटी का एहसास बहुत जल्दी हो गया था और चाँद ने 'साक्षीज वर्क शीट' बनानी शुरू कर दी थी। पाँच फीट की चौड़ाई और नौ फीट की लंबाई वाला बालकनी एकदम मॉडर्न था। उसमें एक झूला था, जिस पर साक्षी झूला करती थी और करीब आधा दर्जन पौधे सदा खिलखिलाते रहते थे। यही बालकनी और पौधे साक्षी और चाँद की वार्त्ता के साक्षी थे। बालकनी में झूले पर बैठी साक्षी जिस दिन चाँद से नाराज होती थी उस दिन हेडफोन लगाए गाना ऐप में गाना सुना करती थी और साथ-साथ गुनगुनाया करती थी। बालकनी का गेट बेडरूम से अटैच था।

साक्षी को फोटोग्राफी का बहुत शौक था। कोई अनजान भी उसके कमरे में प्रवेश कर यह जान सकता था। दीवारों पर साक्षी की हजारों फोटो रिबन में बँधी उसके कमरे की शोभा कुछ यूँ बढ़ाती थी जैसे फूलों पर बैठी तितली फूलों की शोभा बढ़ाती है। लाइट पिंक रिबन में रंग-बिरंगे कपड़े पहने साक्षी की अनगिनत तस्वीरें किसी खूबसूरत फूल पर चिपकी तितली-सी मालूम पड़ती थीं। साक्षी स्वयं भी तितली-सी ही थी। खूबसूरत एवं मासूमियत भरा चेहरा, आँखों में शरारत, चुलबुलापन और एक अल्हड़-सी मुस्कान उसके तमाम दु:खों को ऐसे छिपाते थे जैसे माँ अपने बच्चे से अपने दुखों को छुपाया करती है। साक्षी का रूम सही ढंग से व्यवस्थित और दीवारों से अटैच किताबों की अलमारियों से सजा था। किताबें साक्षी की वास्तविक मित्र थीं। इनसे न जाने कई किस्से-कहानी साक्षी ने सुन रखे थे।

दीवार, अलमारी, अलमारी में किताबें, अलमारी का पारदर्शी दरवाजा और दरवाजा के ऊपर साक्षी की तस्वीरें कमरे की रौनक बढ़ा रही थीं। रूम के बाहर हॉल, हॉल में लगा टी.वी. सेट, सोफा-कम-बेड सेट और उन पर हर आकार के टैडी टी.वी. देखते हुए मिल जाते थे। टैडी की

संख्या दर्जन के करीब थी, जिसमें से कुछ सोफा तो कुछ डाइनिंग टेबल पर डिनर के वक्त साक्षी का साथ दिया करते थे। हॉल में बाईं ओर किचन तथा पूजा रूम तथा दाईं ओर बाथरूम था। बाथरूम साक्षी का सबसे खास था। अक्सर बाथरूम में ही तेज आवाज कर साक्षी रो लिया करती थी। फिर शॉवर लेकर बालकनी में गुमसुम पड़ जाती थी।

सवा सौ करोड़ की आबादी वाले देश में सवा व्यक्ति भी साक्षी के दु:ख के साथी नहीं थे। उसकी उपलब्धियों पर बधाइयों का ताँता लग जाता था लेकिन हाल-ए-दिल न कोई पूछता, न सुनता था। सबको यही लगता था कि साक्षी सुकून से जी रही है। इस सुकून के पीछे की छटपटाहट की आहट तक किसी ने सुनने की कोशिश नहीं की थी।

साक्षी की जिंदगी टैडी, बाथरूम, रूम, किताबें, दीवारों पर थिरकती तस्वीरें, बालकनी, झूला, पौधे, तारे और चाँद के इर्द-गिर्द घूम रही थी। समय और परिस्थिति के साथ दिन और रात के साथी इनमें से बदलते रहते थे। कभी साक्षी तस्वीरों की दुनिया में खो कर सो जाती थी, तो कभी चाँद से अपनी बातों का जवाब माँगते सो जाती थी। कभी टैडी को ऊँघते-ऊँघते भी अपनी परेशानी सुनाती थी तो कभी सोफा पर टैडी के संग लिपट कर सो जाया करती थी। कुछ इस तरह साक्षी की जिंदगी 'सिंगल लेन' बनी हुई थी, जिस पर 'परेशानियों की बीएमडब्ल्यू' लगातार दौड़ती रहती थी और 'समाधान की सुजुकी' कभी उसके घर तक पहुँच नहीं पाती थी। एकतरफा आवागमन से साक्षी की विश्वास रूपी डगर इतनी जर्जर हो गई थी कि उसकी मरम्मत दूर-दूर तक कोई मिस्त्री कर सकता है, ऐसा जान नहीं पड़ता था।

अकेली साक्षी ऑफिस और घर के बीच सैंडविच बन गई थी। आज वह चाँद से नाराज है, टैडी से भी मुँह फुलाए हुई है। आज उसे गाना भी सुनने का मन नहीं कर रहा है। तब से बीस गाने बदल चुकी है। कोई गाना उसके दिल की धुन से मैच नहीं कर पा रहा है। 'दो गल्लां करिए प्यार दियां, दो गल्लां करिए' यह गैरी संधू का 21वें नंबर पर ट्रैक उसको थोड़ा भाने लगा है। रिपीट मोड पर डाल साक्षी इस गाने को छठी बार सुन रही है और खुद से पूछ रही है- "किससे करूं गल्लां? चाँद से, टैडी से, फोटो से, किताबों से? मुझे चाँद, टैडी, फोटो, किताबें सब तो सिर्फ सुनते ही हैं। जवाब कोई दे तब तो बात करूँ। संचार का अर्थ तो दो व्यक्तियों या समूहों के बीच विचारों, भावों या संदेशों का आदान-प्रदान करना होता है, मेरा दूसरा व्यक्ति या समूह कहाँ है? 11 साल बीत गए पर मेरी इस वार्त्ता में कोई दूसरा हिस्सेदार क्यों नहीं है?"

साक्षी का स्वयं से सवाल करना उसकी आत्मा की तड़प को जाहिर करता है, जो इस भौतिकवादी सुख से परिपूर्ण फ्लैट के बावजूद किसी ऐसे को तलाशता है जो साक्षी के अकेलेपन को समझ सके, उसके द्वंद्वों की लड़ाई का मध्यस्थ बन झगड़े सुलझा सके, टैडी के साथ सोने वाली साक्षी को अपनी बाहों में सुला सके। 11 साल पहले की साक्षी, उसके चेहरे की चमक, उसकी बचकानी हरकतों की याद दिला सके, फिर से साक्षी की खुशियों का साक्षी बन सके और उसे समझा सके कि अकेली जिंदगी सबकी वैसी नहीं होती जैसी उसने हॉलीवुड की फिल्मों में देखी और अंग्रेजी के नॉविल में पढ़ी है। साथ ही उसे यह भी समझा सके कि जीने के लिए अनुलोम ही नहीं विलोम की भी अपनी अलग जरूरत है। एकतरफा नहीं दोतरफा संवाद के अलग ही मायने हैं। सिंगल लेन से हटकर डबल लेन का अलग एहसास है।

शायद अब 11 सालों के बाद साक्षी की तलाश पूरी हो जाएगी और उसे समझने एवं उसको समझाने वाला प्रिंस चार्मिंग उससे किसी दिन 'सिंगल लेन की सिग्नल' पर टकरा जाएगा।

❖

कथाकार
पता: 67/4, जमरूदपुर, जी.के.-1, नई दिल्ली-110048
संपर्क 9811094198 ईमेल : mmanjari2000@gmail.com

प्रवासी हिंदी साहित्य में किसान एवं मजदूरों का चित्रण

डॉ. केदार कुमार मंडल

हालात और किस्मत के मारे इन मजदूरों की स्थिति आगे कुँआ और पीछे खाई वाली हो गई थी। बहला-फुसला कर अंग्रेजी ऐजेंटों के माध्यम से इन्हें यहाँ लाया जाता था। एग्रीमेंट की मियाद पूरी होने पर ही इन्हें छोड़ा जाता था। लेकिन कमाई इतनी भी नहीं होती थी कि घर लौटने का भाड़ा इकट्ठा किया जा सके। खेतिहर किसान जाति जिनका खानदानी पेशा खेती करना था वे परिश्रम से क्यों डरे? लेखक ने लिखा है- ''परिश्रम से कभी न थकने वाली जाति खेतों से भागे तो क्यों?लेकिन हाल के कैदियों के मुँह से जिस अत्याचार की कहानी वह सुनता आ रहा था, उसके खिलाफ तो वे खड़े हो सकते थे।''

लेकिन यहाँ तो अत्याचार, शोषण और व्यभिचार का स्तर ही अलग था। खेत में अत्याचार, कारावास में अत्याचार, घर में अत्याचार व्यभिचार की स्थिति ऐसी कि सुन्दर लड़कियाँ गोरों के हवश का शिकार बनने से नहीं बच सकती थी। कारावास में शोषण के साथ-साथ भारतीयों की धार्मिक भावना एवं परम्परा भी महफूज नहीं थी-

प्रवासी हिंदी साहित्य में मजदूरों एवं किसानों का चित्रण विरले ही हो पाया है। लेकिन मॉरीशस के साहित्यकार श्री अभिमन्यु अनत के उपन्यास 'लाल पसीना'[1] से लेकर श्री राजहीरामन की कहानी संग्रह 'सेवा आश्रम'[2] तक किसानों का विस्तृत चित्रण मिलता है। अभिमन्यु अनत ने गर्व और विश्वास के साथ लिखा है- ''यहाँ से मॉरीशस में भारतीयों के आगमन की महत्वपूर्ण कहानी शुरू होती है। इतिहास के पन्नों पर धूल जमती गयी और कई पृष्ठों को जला भी दिया गया। फिर भी कुछ पन्नों को ऐसी स्याही से लिखा गया था जिस पर धूल टिक नहीं पायी। चन्द ऐसे ही पन्ने थे जो भारतीय मजदूरों के खून-पसीने से कुछ इस तरह भीगे हुए थे कि उन्हें आग जला न सकी, इतिहास की बलि का वह सारा रक्त बहकर खेतों के रक्त से जा मिला...। और दबोचा हुआ वह इतिहास परतों के नीचे कैसे साँसों के लिए संघर्ष करता रहा, उसकी गवाही आज भी धरती की सोंधी गन्ध देती रहती है। लेकिन उस इतिहास को कैसे जिया गया था?आगे उसी जीवन की कहानी है।''[3]

लेखक के उपर्युक्त उद्धरण के अंतिम वाक्य पर ध्यान देने की जरूरत है। मजदूर का रक्त बहकर खेत में मिल गया और खेत में पनपी फसल, फिर व्यक्ति और फिर खेत। यानी गिरमिटिया किसान-मजदूर की नियति यही थी कि उनका लहू पसीने के साथ मिलकर खेत में बहे फिर फसल को खून पानी से सींचें और फसल पैदा करें। उनका जीवन एक चकरधिन्नी की तरह कोल्हू का बैल बन गया था जिसमें खेत है, फसल है और है जहालत। लेखक के इस वर्णन में 'नास्टेल्जिया' नहीं है। यहाँ तथ्य (facts), भय, जुगुप्सा और यथार्थ बोध लेकर आता है। लेखक अपने बीते दिनों को अपने मन-मस्तिष्क में संजो लेना चाहते हैं।

हालात और किस्मत के मारे इन मजदूरों की स्थिति आगे कुँआ और पीछे खाई वाली हो गई थी। बहला-फुसला कर अंग्रेजी ऐजेंटों के माध्यम से इन्हें यहाँ लाया जाता था। एग्रीमेंट की मियाद पूरी होने पर ही इन्हें छोड़ा जाता था। लेकिन कमाई इतनी भी नहीं होती थी कि घर लौटने का भाड़ा इकट्ठा किया जा सके। खेतिहर किसान जाति जिनका खानदानी पेशा खेती करना था वे परिश्रम से क्यों डरे?लेखक ने लिखा है- ''परिश्रम से कभी न थकने वाली जाति खेतों से भागे तो क्यों?लेकिन हाल के कैदियों के मुँह से जिस अत्याचार की कहानी वह सुनता आ रहा

था, उसके खिलाफ तो वे खड़े हो सकते थे।''[4]

लेकिन यहाँ तो अत्याचार, शोषण और व्यभिचार का स्तर ही अलग था। खेत में अत्याचार, कारावास में अत्याचार, घर में अत्याचार व्यभिचार की स्थिति ऐसी कि सुन्दर लड़कियाँ गोरों के हवश का शिकार बनने से नहीं बच सकती थी। कारावास में शोषण के साथ-साथ भारतीयों की धार्मिक भावना एवं परम्परा भी महफूज नहीं थी- ''एक ही कटोरे से सभी को पानी पीना पड़ता था। पिछले दिनों उस लंबी चोटी वाले व्यक्ति की मृत्यु का कारण परिचारिका ने उसकी दवाई लेने की इन्कारी को बताया था... मंगरू ने पूरे गाम्भीय के साथ कहा था कि इन जल्लादों को ब्राह्मण की मृत्यु से ब्रह्म हत्या लगकर रहेगी।''[5]

कुछ आलोचक प्रवासी हिन्दी साहित्य पर 'नास्टेल्जिया' का आरोप लगाते हैं। ऐसे आरोप लगाने वाले को 'लाल पसीना' उपन्यास के उपर्युक्त उद्धरण को पढ़ने की जरूरत है। यहाँ अपने देश और जमीन की याद आती है, लेकिन इसमें दर्द है, एक चुभन है, एक हूँक है।

प्रश्न और तर्क करने का अधिकार एवं लालसा और इस पर पांबदी, यह मर्म है उपन्यास का। 'बोल कि लव आजाद है तेरे' का सपना और मानवीय गुण पर पहरा लगा है। शोषक और सर्वहारा के बीच द्वन्द्व है। मार्क्स का सिद्धांत यहाँ लागू होता है- ''यह कैसा कानून कि कुली बीमार होकर भी घर पर नहीं रह सकता। उन्हें किसी भी हालत में काम पर आना ही होता था।'' लेखक ने लिखा है- ''कुली बीमार होकर भी घर पर नहीं रह सकता। ऐसा क्यों?जिस गोरे से वह प्रश्न करना चाहता था, उसके पास पहुँचते ही उसकी धिग्घी बन्द हो जाती थी?क्यों?''[6]

जब डर व्यक्ति के मन और मस्तिष्क पर हावी हो जाता है और परिणाम आँखों के सामने कौंध जाता हो तो व्यक्ति की जुबान जवाब दे देती है। हम इसे मानसिक – गुलामी तथा यथा स्थितिवादी क्यों न कहें? लेकिन इसके पीछे के कारणों की पड़ताल करना इससे भी ज्यादा जरूरी है। प्रश्न करना व्यक्ति का नैसर्गिक गुण है। लेकिन यहाँ इस प्रश्न, आकांक्षा एवं जिज्ञासा पर डर हावी है। यहाँ तो सिर्फ हाड़-तौड़ परिश्रम की दरकार है। कर्म करते रहने का आदेश है बिना फल की इच्छा के। गीता का उपदेश भी यहाँ प्रासंगिक है- ''कर्म करते रहो फल की इच्छा मत रखो।''[7] मजदूर, किसान, दलित, पिछड़ा भिन्न-भिन्न संदर्भों में साम्राज्यवादी एवं सामंतवादी व्यवस्था में सिर्फ कर्म ही करते रहे। फल का हिस्सा तो पूँजीपतियों और सामंती वर्ग को मिला।

उपन्यासकार अभिमन्यु अनत का भाव रेणु के 'मैला आँचल' के इस कथन से मेल खाता है-

''जो जोतेगा वह बोएगा
जो बोएगा वह काटेगा,
जो काटेगा वह बाँटेगा।''[8]

गोरों द्वारा पुरुषों का शोषण तो होता ही था, लेकिन महिलाओं का शोषण का स्तर दोहरा था। जहाज में भरकर जब भारतीय किसान, मजदूर को मॉरीशस लाया गया तो इसमें पुरुषों की संख्या ज्यादा थी।

साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, औपनिवेशिकवादी सत्ता का हमेशा यही प्रयास रहता है कि श्रम करने वाला वर्ग हमेशा अभावों में रहे। लेखक ने इसे बखूबी समझा है। इसमें स्वतंत्रता, संप्रभुता और समानता का विचार घर न कर पाये। यह शातिर सत्ता वर्ग इतना चालाक होता है कि शोषित वर्ग को न तो ठीक से जीने देता है और न मरने की इजाजत देता है। मजदूर किसान का खून पसीना इनका खजाना होता है। इस खजाने में वह इतना ही खून संचय होने देता है, जिससे वह अगले दिन के लिए ताकत जुटा पाये, खेतों में काम करने के काबिल हो सके। इसके लिए वह उन्हें उतना ही भोजन और सुविधा प्रदान करता है, जिससे वह जी सके, अगले पीढ़ी के काम आने लायक बच्चा पैदा कर सके।

गोरे मालिको के फरमान को पूरा न करने वालों को ईख के रस में डूबो कर लाल चीटियों के पास हाथ पैर बाँध कर छोड़ दिया जाता था। ''यह लाल चीटियाँ नोच-नोच कर इसके गोश्त को खा जाती है और कुछ ही घंटों में नरकंकाल रह जाता था।''[9] गौरतलब है ये सजाएँ अन्य मजदूरों की उपस्थिति में दी जाती थी, जिससे देखने वालों के मन में भय का संचार हो और उनके आदेश को मानने के लिए हमेशा तत्पर रहे। यहाँ 'भय के सिद्धांत' को लागू किया जा सकता है। ''अल्बर्ट आईस्टाइन को कैथोलिक पोप ने सिर्फ टार्चर के उपकरण दिखाये थे।''[10] इतने में ही उन्होंने उनकी बात को मान लिया था। यह भय का मनोविज्ञान है जहाँ नियम, कानून, तर्क चूक जाता है।

मॉरीशस के प्रमुख साहित्यकार श्री राजहीरामन का 'सेवा आश्रम' कहानी संग्रह एक प्रमुख रचना है। इस संग्रह की 'सब्जी' शीर्षक कहानी एक सशक्त एवं मजदूर किसान के पक्ष

में लिखी गई कहानी है। कहानी का ताना बाना जो हो लेकिन कहानी अपनी बात को पाठक के सामने रखने में सक्षम है। लागत और मुनाफा, यानि व्यय और कमाई के बीच एक गहरी खाई है। ठीक वैसा ही खाई 'गोदान' की कहानी की तरह। होरी जी-तोड़ परिश्रम करता है। खूब पसीना बहाता है लेकिन उन्हें मिलता है- मौत। ऐसी भी बात नहीं कि उनके पास जमीन नहीं है। उनके पास चार-बीघा जमीन है, लेकिन जो उपज होती है, उतने में नहीं बिकता जिससे उसकी लागत भी हासिल हो सके। कहानीकार राजहीरामन की 'सब्जी' कहानी की व्यथा इसी तरह की है। सरिता एक छोटे व्यापारी की बेटी है, वहीं दुर्गेश एक गरीब किसान का बेटा। सरिता सस्ते में टोकरी भर सब्जी खरीद कर लाती है और दुर्गेश से कहती है- "जरा बताना तो इतनी सारी सब्जियाँ कितने की आई हैं।"[11]

दुर्गेश जानता था कि आजकल सब्जियाँ बड़ी सस्ती है। किसान का बेटा होने के कारण इसका उन्हें अनुभव है। सब्जियाँ सस्ती होने की बात उन्हें चुभती थी और सरिता इसी कमजोरी का फायदा उठाकर उन्हें चिढ़ाती थीं। लेखक ने लिखा है- "उसे (दुर्गेश) याद है किसी समय विधवा माँ ने खेत में टमाटर रोपा था। पर टमाटर इतना सस्ता हो गया था कि सब टमाटर खेत में पक कर लाल-लाल होकर सड़-गल गया था।... कभी सब्जी थोक बाजार में जाती थी तो रुपया कहाँ मिलता जेब से उल्टे लॉरी वाले और ढोने वाले को देना पड़ता था। सब्जी पैदा करो, पैसे लगाओ और फिर जेब से पैसे खर्च कर बाजार तक पहुँचाओ। मिलता कुछ नहीं था उल्टे जेब से जाता था।"[12]

दुर्गेश की माँ अनपढ़ थी फिर भी कहती थी- "इस देश में खेतिहरों का कोई नहीं। ये देश को अन्न देते हैं पर बदले में इनको कुछ नहीं देता। न इनके बारे में लोग सोचते हैं।"[13]

कड़ी मेहनत और न्यून आमदनी ने उनसे उनकी माँ छीन ली। चीजें सस्ती हो यह सभी चाहते हैं और इसमें भी सब्जी सस्ती हो यह कौन नहीं चाहेगा? लेकिन दुर्गेश क्या चाहता है यह बात सरिता की समझ से बाहर थी। सरिता कहती- "अब तो न तुम्हारी माँ रही न तुम्हारा खेत। आखिर तुम क्यों चाहते हो कि सब्जियों के दाम महंगे के महंगे रहे?"[14]

इस पर दुर्गेश ने प्रश्न किया- "पर जब सब्जियाँ सस्ती हो जाती हैं तो तुम क्यों खुश होती हो। सरिता का जवाब पूँजीवादी सोच को प्रदर्शित करता है- "मेरे बाप को मुफ्त में सब्जियाँ मिल जाती है और वह उन्हें बेचकर ज्यादा से ज्यादा पैसा कमा लेता है।"[15]

इस प्रकार किसानों की स्थिति हमेशा दयनीय रही है। दुनिया में सबसे ज्यादा कोई मेहनत करता है तो वह किसान है। इसके बदले में उसे मिलता है हिकारत, शोषण और बाजारवादी षड्यंत्र। यह स्थिति सिर्फ मॉरीशस की नहीं है, भारत की भी है। आलोचक भले इसे कथानक की कमजोरी माने लेकिन लेखक जिन शोषणकारी व्यवस्था की कलई खोलना चाहता था इसमें वह सफल भी होता है। सभी को अन्न खिलाकर स्वयं भूखे पेट सोने वाले किसानों की स्थिति यदि ऐसी है तो इसका जिम्मेदार कौन है? सरकारी व्यवस्था या शोषणकारी महाजनी व्यवस्था।

संदर्भ :

1. लाल पसीना, अभिमन्यु अनत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1977.
2. सेवा आश्रम, राजहीरामन, स्टार पब्लिकेशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम सं. 2008.
3. लाल पसीना, अभिमन्यु अनत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1977, पृ. 18.
4. वही, पृ. 20.
5. वही, पृ. 54
6. वही, पृ. 74..
7. श्रीमद्भागवत गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 98.
8. मैला आँचल, फणीश्वर नाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 49.
9. लाल पसीना, अभिमन्यु अनत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सं. 1977, पृ. 125.
10. अकथ कहानी प्रेम की, कबीर की कविता और उनका समय, पुरुषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 79.
11. सेवा आश्रम, राजहीरामन, स्टार पब्लिकेशन प्रा.लि., दिल्ली, प्रथम सं. 2008, पृ. 09.
12. वही, पृ. 09.
13. वही, पृ. 09.
14. वही, पृ. 11.
15. वही, पृ. 11.

❖

सहायक प्रोफेसर, दयाल सिंह महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ई 229, पारामाउंट गोल्फ फोरेस्ट विला, जेटा 1, ग्रेटर नोएडा
गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश। मो. 9870492266
ईमेल - drkedarmandaljnu@gmail.com

भारतीय लोकतंत्र के विकास में सोशल मीडिया की भूमिका

डॉ. संजय सिंह बघेल

इस शोध का मुख्य उद्देश्य है सोशल मीडिया के व्यापक प्रभाव का अध्ययन करना और इसके माध्यम से उन प्रभावों का मूल्यांकन करना जो लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने और इसके विकास में सहायक हैं। इसके लिए कुछ परिकल्पनात्मक सवालों को पूछा गया था जिससे मतदाता के मनोविज्ञान को समझा जा सके साथ ही सोशल मीडिया के माध्यम से उसके जेहन में पैदा होने वाले प्रश्नों का अवलोकन किया जा सके। जो वोट डालते समय उसके दिमाग में मौजूद होते है। इस अध्ययन को प्रामाणिक बनाने के लिए न सिर्फ परिकल्पनात्मक प्रश्नों का सहारा लिया गया वरन कुछ येसे प्राथमिक सवाल भी निर्मित किये गए जिससे इसकी वैज्ञानिकता बनी रहे। इसमें द्वितीयक स्रोत के अलावा बहुउद्देशीय किस्म के कई ऐसे प्राथमिक सवाल भी पूछे गए, जिससे इसकी प्रासंगिकता को आसानी से समझा जा सके।

प्रस्तावना

सोशल मीडिया आज हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है। इसका उपयोग न सिर्फ समाचारों और घटनाओं की जानकारी देने के लिए किया जाता है, अपितु इसका उपयोग छवि निर्माण में भी किया जाता है। वर्तमान में, सोशल मीडिया सभी तरह के मामलों से संबंधित सामग्री को सुविधाजनक बनाने और उन्हें वितरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है इसका प्रभाव जनता की राय निर्मित करने और लोकतंत्र पर बड़ा प्रभाव डालने में भी किया जाता है। सोशल मीडिया भारतीय नागरिकों को व्यापक जानकारी देने और विविधतापूर्ण दृष्टिकोण को जनता तक पहुँचाने का भी काम करता है। परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति और अधिक समावेशी हो गई है।

2014 के लोकसभा के चुनाव को मीडिया मुगलों द्वारा जब इसे ट्विटर चुनाव कहा गया तो किसी को इस बात का आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि 282 शीट लेकर जिस धमक के साथ भारतीय जनता पार्टी ने लोकसभा में प्रवेश किया, इसके पीछे बहुत कुछ हाथ इसी सोशल मीडिया का था। उदाहरण के लिए अकेले फेसबुक का प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या 72% है। जिसमें से 82% लोग 18-29 आयु वर्ग के हैं। वहीं यदि हम देश के कुल युवाओं की बात करें तो भारत में सोशल मीडिया का प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या 25 करोड़ के आसपास है। जिनकी आयु 35 वर्ष से कम है। दूसरी तरफ तथ्य इस बात के भी प्रमाण है कि देश की कुल जनसंख्या में से 50 प्रतिशत लोगों की आयु 25 वर्ष से कम तथा 60 प्रतिशत लोगों की आयु 35 वर्ष से कम है। मसलन सोशल मीडिया के माध्यम से कोई भी राजनीतिक पार्टी समूचे वोट बैंक में से 50% वोट बैंक में सेध इस सोशल मीडिया के माध्यम से लगा सकती है।

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (आई.सी.एस.एस.आर.) के सहयोग से किए गए इस शोध का मुख्य उद्देश्य यही था कि इसके माध्यम से यह पता किया जा सके की भारत में मोबाइल प्रयोगकर्ताओं की संख्या कितनी है और इनमें से कितने प्रतिशत लोग सोशल मीडिया के माध्यम से विभिन्न गतिविधियों में शामिल होते हैं। आज भारत की सवा अरब जनसंख्या में लगभग 70 करोड़ लोगों के पास फोन हैं। इनमें से 25 करोड़ लोगों की जेब में स्मार्टफोन हैं। 15.5 करोड़ लोग हर महीने फेसबुक में आते हैं और 16 करोड़ लोग हर महीने व्हाट्सएप पर आते हैं। इन आंकड़ों को देखें तो ये समझना मुश्किल नहीं कि राजनातिक पार्टियां ऑनलाइन कैंपेन या कहें

सोशल मीडिया के इस्तेमाल को इतना तरजीह क्यों दे रही हैं। बीते कुछ वर्षों में चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका कितनी जरूरी हो गई है, ये लैंस प्रिंस अपनी किताब 'द मोदी इफेक्ट' में बताते हैं। 2014 के लोकसभा चुनावों में भाजपा ने जिस तरह सोशल मीडिया का प्रयोग किया उसे देखकर फाइनेंशियल टाइम्स ने तो मोदी को भारत का पहला सोशल मीडिया प्रधानमंत्री तक कह डाला था। जब इतनी शक्ति के साथ सोशल मीडिया हमारे सामाजिक जीवन में उपस्थित है ऐसे में सोशल मीडिया का उपयोग हमारे लोकतंत्र के विकास में किस तरह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यह जानना समय की मांग बन गई है।

शोध की प्रासंगिकता

इस शोध का मुख्य उद्देश्य है सोशल मीडिया के व्यापक प्रभाव का अध्ययन करना और इसके माध्यम से उन प्रभावों का मूल्यांकन करना जो लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने और इसके विकास में सहायक हैं। इसके लिए कुछ ऐसे परिकल्पनात्मक सवालों को पूंछ गया था जिससे मतदाता के मनोविज्ञान को समझा जा सके तथा सोशल मीडिया के माध्यम से उसके जेहन में पैदा होने वाले प्रश्नों का अवलोकन किया जा सके। जो वोट डालते समय उसके दिमाग में मौजूद होते हैं। इस अध्ययन को प्रामाणिक बनाने के लिए न सिर्फ परिकल्पनात्मक प्रश्नों का सहारा लिया गया वरन कुछ ऐसे प्राथमिक सवाल भी निर्मित किये गए जिससे इसकी वैज्ञानिकता बनी रहे। इसमें द्वितीयक स्रोत के अलावा बहुउद्देशीय किस्म के कई ऐसे प्राथमिक सवाल भी पूछे गए, जिससे इसकी प्रासांगिकता को आसानी से समझा जा सके।

इसी को आधार बनाकर हमने एक प्रश्नावली तैयार की थी जिसमें से 865 उत्तरदाताओं से डेटा एकत्रित किये गए थे। जिसके आधार पर इस पूरे अध्ययन का विश्लेषण किया गया। प्राथमिक और द्वितीयक आकड़ों के आधार पर यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि वे कौन से कारक हैं जो एक मतदाता को वोट डालने के लिए विवश करते हैं और जिससे वे प्रभावित भी होते हैं। इस सबका विश्लेषण एस.पी.एस.एस. सॉफ्टवेयर 22.0 के द्वारा किया गया, जिससे स्वतंत्र चर और सांख्यकीय आकड़ों का मूल्याकन वस्तुपरक ढंग से किया जा सके।

शोध के उद्देश्य

सोशल मीडिया के विभिन्न रूपों और उसके प्रयोगों का अध्ययन करना तथा लोकतंत्र के विकास में इसकी सकारात्मक भूमिका का अध्ययन करना ही इसका उद्देश्य है। साथ ही सोशल मीडिया दवारा प्रचारित और प्रसारित किये जा रहे संदेशों की सत्यता और प्रामाणिकता का पता लगाना और आम जनता पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना इस शोध का उद्देश्य है। सोशल मीडिया का भारतीय लोकतंत्र में पड़ने वाले प्रभावों का पता लगाना और राष्ट्र निर्माण में इसकी भूमिका को खोजना भी इसके उद्देश्य में शामिल था।

शोध की परिकल्पना

इसके लिए हमने पहले चरण की शुरूआत शून्य अवधारणा (Null Hypothesis & HO) से करके लोगों के समूचे विचार को जानने के लिए इसे लिंग, आयु, शैक्षिक स्तर, कामकाज की स्थिति, आयु आदि के आधार पर विभाजित किया गया था। जिससे समाज के सभी वर्गों का मूल्यांकन इस शोध के माध्यम से किया जा सके। इसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव जनसांख्यकीय स्तर पर नहीं किया गया। दूसरे चरण में उस वैल्पिक अवधारणा (Alternate Hypothesis (Ha) का आकलन किया गया। जिसमें मतदाताओं के विचारों का मूल्यांकन लिंग, आयु, शैक्षिक स्तर, कामकाज की स्थिति, आय आदि के आधार पर किया जा सके साथ ही इसमें यह पता लगाने की कोशिश की गई कि कैसे इनकी सामाजिक स्थिति इनके विचारों में बदलाव का कारण है। कुल मिलाकर शोध की कार्यप्रणाली दो स्तरों पर की गई। पहले का निर्धारण सांख्यककीय और सामाजिक स्तर पर बिना किसी भेदभाव के साथ किया गया। दूसरे चरण में इनके सांख्यंकीय और सामाजिक स्तर को विश्लेषित किया गया, जिससे एक वस्तुपरक परिणाम प्राप्त हो सके।

अध्ययन की समस्या

सोशल मीडिया ने सभी को खुलकर बोलने का और हर मुद्दे पर अपनी राय रखने का मौका दिया है। लोकतंत्र की अवधारणा जनता का शासन, जनता के लिए और जनता के द्वारा सिद्धांत पर आधारित है। इस दृष्टिकोण से जनता की आवाज को शासन तक पहुँचाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सोशल मीडिया यह कार्य बखूबी कर रहा है। इसलिए लोकतंत्र और सोशल मीडिया का अंतर्संबंध अत्यंत गहरा और व्यापक है। यही कारण है कि सोशल मीडिया का प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पिछले कुछ वर्षों में युवा पीढ़ी इसकी तरफ जबरदस्त तरीके से आकर्षित हुई है। दरअसल इंटरनेट के विकास के साथ ही सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से सामाजिक जीवन में संवाद के नए रूप का प्रादुर्भाव हुआ है। सोशल

नेटवर्किंग के द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों को परस्पर संवाद स्थापित करने, विविध विषयों पर वैचारिक अभिव्यक्ति, भावनाओं के आदान-प्रदान और अकादमिक, साहित्यिक, राजनीतिक और सामाजिक विमर्श के लिए मंच प्रदान कर रहा है।

शोध की प्रविधि (Research Methodology)

सोशल मीडिया भारतीय नागरिकों को व्यापक जानकारी देने और विविधतापूर्ण दृष्टिकोण को जनता तक पहुँचाने का भी काम करता है।

इस शोधपद्धति का उद्देश्य डिजाइन किए गए अनुसंधान के उद्देश्यों को प्राप्त करना एवं एक वांछित परिणाम तक पहुँचना है। इसको ध्यान में रखते हुए, इस अध्ययन में एक विस्तृत वर्णनात्मक और खोजपरक शोध डिजाइन तैयार किया गया है। इसके परिणामों का विश्लेषण करने के लिए उत्तरदाताओं के साथ लिए गए साक्षात्कार के साथ मात्रात्मक विश्लेषण का भी गहराई से अध्ययन किया गया है। इसको हमने एक एस.पी.एस. एस. संस्करण 22.0 के माध्यम से आवृत्ति, प्रतिशत, पाई-चार्ट, हिस्टोग्राम, साधन और एनोवा जैसे सांख्यिकीय उपकरणों का उपयोग करके इसका विश्लेषण किया।

(i) प्रयोग होने वालेसोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के प्रकार:

प्रयोग किए जाने वाले सोशल नेटवर्किंग साइटों के नाम

सोशल मीडिया प्लेटफार्म (Social Media Platform)	संख्या (Number)	%
Messenger	78	9%
Facebook	804	93%
Twitter	264	31%
Telegram	104	12%
Linked In	199	23%
Instagram	26	3%
Reddit	43	5%
WhatsApp	684	79%
Other	69	8%

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म में हमें एक ओवरलैपिंग पैटर्न दिखाई देता है और जैसा उम्मीद की जा रही थी कि फेसबुक 93% के साथ सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला सोशल मीडिया टूल था। इसके बाद 79% के साथ व्हाट्सएप दूसरे नंबर का सबसे प्रसिद्ध सोशल मीडिया टूल है। इसके बाद इंस्टाग्राम, ट्विटर, टेलीग्राम, लिंक्डइन, मैसेंजर आदि अन्य श्रेणी आते है। उत्तरदाताओं के बीच ट्विटर का प्रयोगभी 31% के साथ बहुत अधिक है। इसका श्रेय युवा आबादी के साथ-साथ शिक्षित वर्ग के लोगों को बहुत अधिक जाता है।

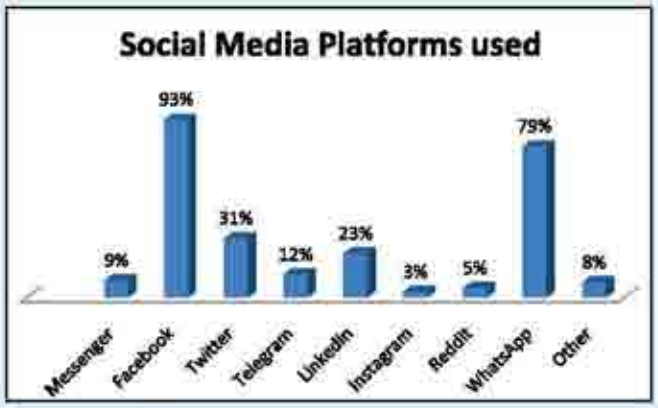

(ii) सोशल मीडिया साइटस का उपयोग

उद्देश्य (Purposse)	आयु समूह (Age Group)								
	Below 20 No.%		20-30 yrs No. %		30-40 yrs No. %		Above 40 No. %		Average
बातों को साझा करना (Sharing)	260	30%	562	65%	631	73%	606	70%	60%
सीखने के लिए (Learning)	614	71%	735	85%	744	86%	588	68%	78%
एक दूसरे से बातचीत करने के लिए (Interacting)	692	80%	735	85%	779	90%	631	73%	82%
मार्केटिंग के लिए (Marketing)	156	18%	286	33%	363	42%	277	32%	32%

ऊपर दी गई तालिका के परस्पर अध्ययन से पता चलता हैं कि सोशल मीडिया का उपयोग विभिन्न आयु समूहों द्वारा किया जाता

ही, इसके साथ मार्केटिंग, ऑनलाइन खरीदारी और लॉकडाउन तथा कोविड जैसी महामारी के दौरान इसकी उपयोगिता और भी अधिक महत्वपूर्ण और व्यापक हो गई है। यदि हम सारणी को देखे तो पता चलेगा कि इसका अधिकतम उपयोग 82% (इंस्टेंट मैसेजिंग, चौटिंग, ब्लॉगिंग और सोशल नेटवर्किंग) बातचीत के लिए होता है जो कि सभी आयु वर्गों में सबसे अधिक सामान्य है, इसके बाद सीखने और चर्चा की बारी आती हैं जिसका प्रतिशत 78 है 32% की औसत के साथ मार्केटिंग को अंतिम श्रेणी में स्थान मिला है, जो कि स्वाभाविक है। तमाम ऑनलाइन शॉपिंग के बाद भी लोग आज पारंपरिक रूप से मोलभाव वाली खरीददारी प्रथा पसंद करते हैं।

जनमत निर्माण के माध्यम से आज के डिजिटल मीडिया युग में सोशल मीडिया की भूमिका लोकतंत्र के विकास में महत्वपूर्ण हो रही है। इसने देश की संचार-व्यवस्था और नेटवर्किंग को पूरी तरह से बदल दिया है। 3.80 के माध्य औसत स्कोर और .431 का मानक विचलन की सहमति से

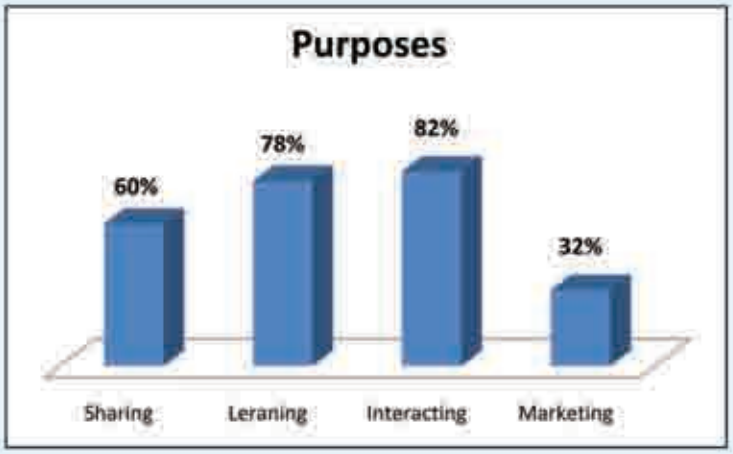

(iii) लोकतंत्र के विकास में सोशल मीडिा की भूमिका:-

क्रम संख्या	विवरण	पूरी तरह असहमत	असहमत	कह नहीं सकते	सहमत	पूरी तरह सहमत	औसत	मानक विचलन (एस.डी)
1.	सरकार द्वारा प्रमाणित कार्यक्रमों /सेवाओं के बारे में जानकारी को सोशल मीडिया के माध्यम से आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।	2 %	4 %	9 %	69 %	16 %	3.95	.623
2.	सोशल मीडिया ने राजनीतिक दलों की जिम्मेदारी और जवाबदेही को बढ़ाकर भारतीय लोकतंत्र को मजबूत किया है।	3 %	10 %	19 %	51 %	17 %	3.68	.868
3.	सोशल मीडिया सरकार के बारे में जानकारी और सेवाएं पर्याप्त करने के लिए आज एक प्रभावी मंच बन रहा है।	2 %	6 %	5 %	69 %	18 %	3.87	.234
4.	मुझे लगता है कि निकट भविष्य में सोशल मीडिया राष्ट्र के निर्माण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।	4 %	7 %	13 %	56 %	20 %	3.80	.897

लेकर पूरी तरह से सहमति के प्रभाव से यह स्पष्ट होता है कि इसका लोकतंत्र के विकास और इसके अवयवों को विकसित करने में गहरा प्रभाव पड़ रहा है।

निष्कर्ष

समग्रत: कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया राजनीतिक घटनाओं पर जनता को जानकारी प्रदान करने, अपने उपयोगकर्ताओं को इससे जोड़ने, उन्हें राजनीतिक गतिविधियों में शामिल करने एवं प्रोत्साहित करने वाला आज एक महत्वपूर्ण उपकरण बन चुका है। यह राजनीतिक चर्चा और राजनीतिक भागीदारी के लिए एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करता है। राजनीतिक दलों के लिए एकतरफा संचार उपकरण से लेकर अपनी वेबसाइटों के माध्यम से जनता को सूचित करने और इनसे दो तरफा संवाद स्थापित करने एवं सहकर्मियों के बीच तथा सार्वजनिक मंचों पर अपनी बात रखने का आज यह एक सशक्त माध्यम बन चुका है।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक जागरुकता और प्रभाव, भारतीय लोकतंत्र को मजबूत करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। उत्तरदाताओं से मिले फीडबैक और उनकी 'आयु', 'शिक्षा' और 'वर्ग' के आधार पर इसके अंतर को भी स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है।

इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि नई मीडिया और प्रौद्योगिकी ने पारस्परिक संवाद, संचार प्रणाली, सामाजिक और राजनीतिक चर्चाओं को भी पूरी तरह से बदल दिया है। सोशल मीडिया ने लगातार नेताओं और उनके अनुयायियों के बीच की उन बाधाओं को भी दूर किया है, जिससे अभी तक दोनों एक दूसरे से नहीं जुड़ पाते थे। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज नेताओं की भागीदारी अपनी जनता से सीधे जुड़ने में न सिर्फ बढ़ी है अपितु वे पहले से अधिक ऊर्जावान और जिम्मेदार जान पड़ते हैं।

संदर्भ :

1. "डेमोक्रेसी इन ग्लोबल इंडिया", गीता चतुर्वेदी, 2008.
2. "डेमोक्रेसी", बुकटाइटल "इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी", डंकनइविर्सो, 2010.
3. "इंडियन डेमोक्रेसी: रियलिटी या मिथ ?", सोली जे सोराबजी, 2006
4. "एशियन डेमोक्रेसी थ्रू अन इंडियन प्रिज्म", आशुतोष वार्ष्णेय, 2015.
5. In the Name of Politics: Sovereignty, Democracy and the Multitude in India, Dipesh Chakrabarty, 2005
6. Human Rights Jurisprudence In Indian Constitution Right To Equality And Life: Concept and Substance, Sunil Khosla and M. M Semwal, 2011
7. "डेमोक्रेसी, पॉलिटिकल इक्वलिटी एंड द मेजोरिटीरूल", द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस जर्नल्स, 2010
8. "फेडरलिस्म इन इंडिया: अ क्रिटिकल अप्रैसल", डॉ. चंचल कुमार, जर्नल ऑफ बिजनस मैनेजमेंट एंड सोशल साइंस रिसर्च, 2014
9. "द कांसेप्ट ऑफ कलेक्टिव मिनिस्टीरियल रेस्पोंसिबिलिटी इन इंडिया थ्योरी एंड प्रैक्टिस", रोस्तुम' सलॉरिव्यु, 2014
10. Fundamental Rights Enshrined In Indian Constitution, Provisions and Practices, Rajbir Singh Dalal, 2009
11. "इंडिपेंडेंस ऑफ जुडीसिअरी इन इंडिया", विष्णु परशाद और विष्णु प्रसाद, इंडियन पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन, 1964
12. "इंडिपेंडेंस ऑफ थे जूडीसिअरी", अरुण प्रकाश चटर्जी, सोशल साइंटिस्ट, 1973

वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक एवं आई.सी.एस.एस.आर. फेलो
आत्मा राम सनातन धर्म कॉलेज, धौला कुआँ
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110021
मो.: 8527688032/9868593732

शौक का तब्दील होना शोक में

मुकेश जोशी

शोकाकुल जी अपने ओटले पर डली तखत पर माथे पर हाथ धरे शोकमग्न डले हुए थे। आसपास दो चार अखबार भी। उधर से गुजरना हुआ तो उन्हें इस हालत में देखकर मैं भी चिंतित हुआ कि कहीं इनके यहां भी तो कोई गुजर नहीं गया क्योंकि आजकल लोग चुपके से खिसक रहे हैं कहीं से राम नाम सत्त की आवाज नहीं आ रही न चिर परिचित रामधुन रघुपति राघव राजाराम सुनाई पड़ रही, हालांकि यह धुन कोई सुनना भी नहीं चाहता पर वैश्विक संतुलन के लिए यह धुन भी जरूरी है।

अभी इस काल में कोई किसी के यहां बैठने भी नहीं जा रहा, उठावने तक तो चलित हो चले हैं जिसके यहां गमी हो रही बापड़ा अकेला ही बैठा रह जाता है, भाई बन्ध भी वीडियो कॉल पर ही हालचाल लेकर अपने कोटर में ही बन्द रहते हैं बीमारी के डर से। तो पता कैसे चले कि शोकाकुल जी के हाथ माथे पर क्यों हैं आखिर।

गाड़ी धीमी कर नीचे से ही हाथ के इशारे से कुछ जानने की कोशिश की, उन्होंने भी गाड़ी बन्द कर ऊपर आने का इशारा किया। अपने राम फटी में कि कहीं कोई अनहोनी तो नहीं हो गई इनके यहां और ये बैठने बुला रहे हों, मन को कट्ठा करके उनके पास तखत तक पहुंच गया। आव यार जोसी जी, चाय पिएंगे, कित्ते दिन हो गए ढंग से मिलना जुलना ही नहीं हो रहा। एक साल पहले तक तो आधे शहर से मोक्षधाम पर मिलना हो ही जाता था, ऊपर शोकाकुल जी का परिचय तो रह ही गया, इस कस्बेनुमा शहर में यदि किसी का भी ऊपर से बुलावा आता है तो शोकाकुल जी की अनुशंसा के बगैर उसके लिए सीधे मोक्ष के द्वार नहीं खुलते। छोटा शहर है तो हर तीसरा आदमी एक दूसरे से थोड़ा बहुत परिचित हो ही जाता है, कस्बे की होटलें-पान गुटखे की दुकानें इन सघन संपर्कों का जरिया बन जाती हैं। किसी की भी अंतिम यात्रा निकले, जिस तरह एक हंडी लेकर चलने वाला अनिवार्य आवश्यक होता है वैसे ही शोकाकुल जी भी इन अंतिम यात्राओं के लिए अपरिहार्य हो चले हैं। वे अन्तिम संस्कार विशेषज्ञ पुराने खूसटो के काम में कतई दखल नहीं देते हुए अपने काम से काम रखते हैं। गए हुए के लिए मोक्ष के दरवाजे खुलवाने का। और यह शोकाकुल जी की श्रद्धांजलि के बगैर हो नहीं सकता था। शोकाकुल जी नगर के इकलौते शोकसभा विशेषज्ञ जो हैं दिवंगत की पूरी कुंडली पहले ही बांच लेते हैं जो शोकसभा में उनकी प्रशस्ति में काम आती है। किसी की माँ नहीं रही तो मां की शान में कुछ स्थायी जुमले और पंक्तियां फिर माताजी से शोकाकुल जी को मिलने वाले नियमित आशीर्वादों चाहे माताजी को देखे ही बरसों हो गए हों की बात या पूज्य पिताश्री के स्वर्गवास पर आंसू बहाना हो, शोकाकुल जी किसी मंजे हुए अभिनेता की तरह संवाद अदायगी करते। शहर का कोई छंटा हुआ गुंडा बदमाश भी निकल ले तो उसे रॉबिनहुड बताकर धर्मात्मा बना देते थे। कई बार ऐसा भी हुआ कि कोई वजनदार व्यक्ति किसी बड़े आदमी के प्रस्थान में शामिल होता तो अध्यक्षता उनके हिस्से में जाती अपने अधिकारों पर अतिक्रमण मानते हुए ये शोकसभा का संचालन अपने मुंह मे ले लेते। हर वक्ता को बुलाने के पहले और बाद मृत व्यक्ति के साथ अपने संबंधों की इतनी गहरी व्याख्या करते कि बेचारा वो पुण्यात्मा स्वर्ग मार्ग से रिवर्स लगाकर सीधे शोकाकुल जी का गला पकड़ ले के भई मेरे पुराने पैसों का हिसाब कर दे यार इत्ती लंबी फेंकने की जगह।

बहरहाल चाय आई, चाय के साथ शोकाकुल जी का दर्द भी छलका, आंखें तो छलक ही रही थीं क्योंकि उनके और कस्बे के कई सारे बड़े बूढ़ों युवाओं को कुख्यात कोरोना लील चुका था। अच्छे अच्छे धन्ना सेठ और फन्ने खां अकेले ही मोमपप्पड़ में पैक होकर चल दिए थे उनके मोक्ष के तो पक्के में वांदे थे इसलिए कि शोकाकुल जी की श्रद्धांजलि टीप जो नहीं लगी थी। शोकाकुल जी की पीड़ा यह थी कि इतने अपने लोग चले गए यार कलेजा फटा जा रहा है इसलिए भी कि दो शब्द भी उनके लिए नहीं कह सका लालाजी के इतने एहसान थे और वे बगैर कुछ कहे चल दिए उनके बारे में इतना बोलने को था कि क्या बताऊँ जोसी जी, वो भी सुनते तो खुश हो जाते। यार सवा साल हो गया उधर का चक्कर लगाए मन करता है अभी चला जाऊं पर अभी दर भी ज्यादा है और डर भी। कभी कोई मिलने वाले ने पकड़ लिया तो अपने लिए कौन बोलेगा एं..

मैं समझ गया था कि कोरोना ने लाखों लोगों की तरह अपने शोकाकुल जी को भी बेरोजगार कर दिया था। इसीलिए मोक्षधाम में श्रद्धांजलि देने का उनका शौक अब शोक में तब्दील हो चुका था।

61, मानसरोवर कॉलोनी, श्रीरामनगर के पीछे,
उज्जैन 456010
मो.: 9926300973

सात सुरों का मेला

डॉ. गोबिंद प्रसाद

भारतीय गीत-संगीत की वृहद परम्परा में शास्त्रीय और सुगम संगीत का अपना एक इतिहास है। कालान्तर में भारतीय फिल्मों के उद्भव, उत्थान और विकास के क्रम में जब इसमें सिने गीत-संगीत के पार्श्वगायन विधा का जुड़ाव हुआ तब मूलत: वह सुगम संगीत का ही एक रूप था जो अपने सरल प्रस्तुति और व्यापक धरातल के कारण अल्प समय में ही लोकप्रियता के शीर्ष पर पहुँच गया। शास्त्रीय गीत-संगीत परम्परा के विपरीत सिने गीतों में जिस प्रकार दो-तीन मिनट की अवधि में ही कथ्य-तथ्य-भाव को लय-सुर-ताल की निर्धारित संगत में सुरीलेपन के साथ प्रस्तुत करने का उपक्रम रचा गया वह निश्चय ही अद्भुत, अप्रतिम और अवर्णीय है।

भारत में सिने गीतों का आगमन प्रथम बोलती हिंदी फिल्म 'आलम आरा' के साथ ही 1931 में हो गया था। सिने गीत-संगीत के सुरों का यही इतिहास इसके नब्बे वर्षों की अब तक की अनवरत यात्रा के पश्चात् पहली बार 'सात सुरों का मेला' पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। इसे पुस्तक के स्थान पर मैं ग्रंथ की संज्ञा दूँगा क्योंकि 'सात सुरों का मेला' (1931-2020), साहित्य, लोकतत्व एवं सम्प्रेषण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी सिने गीत-संगीत के जीवन्त इतिहास, विकास एवं उपलब्धियों की एक विस्तृत गाथा प्रस्तुत करता है। दशकवार सिने गीतों की प्रकृति, शैली के साथ ही प्रत्येक काल खण्ड के गायक-गायिका, कवि-गीतकार और संगीतकारों के संबंध में इस ग्रंथ में जो तथ्य और सूचनायें दी गयी है वह इसके ऐतिहासिक सन्दर्भ को और भी पुष्ट करती है। विगत एक-डेढ़ दशक से सिनेमा पर ढेरों पुस्तकें आयी हैं पर इनमें प्रामाणिक, गम्भीर, सुरुचिपूर्ण तथा स्तरीय पुस्तकों की संख्या सीमित ही रही है।

सिने गीत-संगीत के वरिष्ठ अध्येता, कवि, लेखक, इतिहासवेत्ता, व्याख्याता एवं फिल्मकार डॉ. राजीव श्रीवास्तव की वर्ष 2020 में प्रकाशित 'सात सुरों का मेला' ग्रंथ अब तक की प्रकाशित सिने गीतों से सम्बन्धित सभी पुस्तकों में विशिष्ट एवं अत्यंत महत्वपूर्ण है। सिनेमाई गीतों को लेकर जो वृहद विवेचना इस पुस्तक में की गयी है प्रथम दृष्टि में ही वह किसी को भी अचंभित कर देने में सक्षम है। इसकी विषय-वस्तु, अध्यायों का वर्गीकरण, सूक्ष्म दृष्टि, गीतों की व्याख्या, सन्दर्भ-प्रसंग, कथ्य और तथ्य जिस मनोयोग के संग प्रस्तुत किए गए हैं वह किसी रोचक कथा-कहानी को सहज रूप से आत्मसात करते जाने का भान कराता है। ध्यान देने वाली बात ये भी है कि संबंधित आँकड़ों और सूचनाओं के साथ होने पर भी यह पुस्तक मूलत: सिने गीतों के हर एक पक्ष से परिचित कराते हुए इसमें समाहित लालित्य, कर्णप्रियता, सुर सरिता के प्रवाह तथा भाव पक्ष के स्पंदन की भी अनुभूति कराता है। कई-कई स्थानों पर गीतों की साहित्यिक विवेचना करते हुए लेखक द्वारा जो वातावरण सृजित किया गया है वह गीत को साक्षात सुनने जैसा आभास दे जाता है। सिने संगीत के नौ दशकों की इस यात्रा में यह ग्रंथ आपको इसके पृष्ठों पर उकेरे गए शब्दों के माध्यम से गीतों के शृंखलाबद्ध सरगम की ऐतिहासिक, साहित्यिक, सांगीतिक तथा लोकतात्विक वैभव से भेंट कराता है। प्राय: सिनेमा पर किए गए लेखन की भाषा-शैली साहित्यिक न होकर साधारण स्तर की ही देखी गयी है पर, इस पुस्तक में जिस प्रकार से साहित्यिक हिंदी का प्रयोग करते हुए लेखक ने अपनी विशिष्ट शैली में यह ग्रंथ रचा है वह मुझ जैसे साहित्यिक संस्कार से ओत-प्रोत व्यक्ति को हतप्रभ कर गया। जे एन यू में हिन्दी का प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष रहते हुए मैं स्वयं जिस परिष्कृत हिन्दी भाषा, व्याकरण और साहित्य का प्रयोग करता रहा हूँ उसी कि छाप इस पुस्तक में देखना मेरे लिए आश्चर्य के साथ ही संतोषप्रद भी था। सिने संगीत में साहित्य और लोक तत्व किस प्रकार भीतर तक समाया हुआ है और इसकी सम्प्रेषण क्षमता कितनी प्रबल है उसे हमें समझाने और उसकी तीव्रता से हम सबको एकाकार करने हेतु डॉ. राजीव श्रीवास्तव द्वारा किए गए चिन्तन-मनन, मंथन, सूक्ष्म अध्ययन, लगन, सतत् समर्पण तथा गहन शोध को इस ग्रंथ को बाँचते हुए सहज ही समझा-बूझा जा सकता है।

हिन्दुस्तानी सिनेमा आज सौ वर्षों से भी अधिक का समय पार करके एक ऐसे पड़ाव पर आ चुका है जहाँ खड़े हो कर उसका पुनरावलोकन करना एक दुरूह और अत्यंत ही कठिन एवं श्रमसाध्य कार्य है। यह काम वर्षों-दशकों का समय माँगता है। मुझे यह जान कर तनिक भी आश्चर्य नही हुआ कि डॉ. राजीव श्रीवास्तव अपने इस शोधपूर्ण ग्रंथ के कार्य में आज से तीन दशक पूर्व से ही कार्यरत थे। भारतीय सिनेमा का गीत-संगीत प्रभाग एक ऐसा क्षेत्र रहा है जिस पर समग्रता से कभी भी कोई वृहद कार्य नही हुआ है। इन तीन दशकों में राजीव भाई ने सिने संगीत के कई गायक, गीतकार, संगीतकार तथा उसके भिन्न-भिन्न आयामों को समेट कर कई शोध आलेख, पुस्तक और वृत्तचित्रों का लेखन-निर्माण-निर्देशन किया है जो वास्तव में उनके 'सात सुरों का मेला'

पुस्तक	-	सात सुरों का मेला
लेखक	-	डॉ. राजीव श्रीवास्तव
मूल्य	-	630 रुपये
प्रकाशक	-	प्रकाशन विभाग, भारत सरकार

की शोध यात्रा से उपजे प्रतिफल ही कहे जायेंगे। जिन-जिन सिने व्यक्तित्वों और उनके परिवार जनों से भाई राजीव श्रीवास्तव ने इस ऐतिहासिक शोध ग्रंथ के लिए सम्पर्क साधा है उसकी एक लम्बी सूची है। केदार शर्मा, अनिल बिस्वास, सितारा देवी, डी एन मधोक, कवि प्रदीप, प्रेम धवन, शमशाद बेगम, मुकेश, सुरैया, लता मंगेशकर, मजरूह सुल्तानपुरी, हसरत जयपुरी, मन्ना डे, ख़य्याम, पं रवि शंकर, कल्याणजी-आनन्दजी, सरदार मलिक, इन्दीवर, रवि, महेन्द्र कपूर, गुलशन बावरा, लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल, नीरज, योगेश, जगजीत सिंह, दिलीप कुमार, देव आनन्द, मनोज कुमार, यश चोपड़ा, कमलेश्वर, अमिताभ बच्चन, नितिन मुकेश, शैली शैलेन्द्र, वहिदा रहमान, आशा पारिख, आनन्द-मिलिन्द, उदित नारायण, श्रेया घोषाल, स्वानन्द किरकिरे, अमीन सायानी जैसे और भी ढेरों लोगों से सम्पर्क साध कर, उनके साथ विमर्श करते हुए राजीव भाई ने जो कुछ प्राप्त किया वह सब इस पुस्तक में समाहित है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'सात सुरों का मेला' में दी गयी सूचना, संस्मरण तथा विभिन्न कथ्य-तथ्य सीधे इसके स्रोत से प्राप्त की गयी है।

इस पुस्तक का प्रारम्भ 'सुर प्रारब्ध' शीर्षक से किया गया है जिसमें हिन्दी सिने गीतों के सूत्रपात, इसके महत्व, जनाधार, लोकप्रियता, वैश्विक स्तर पर इसके प्रभाव, सर्वकालिक प्रयोजन एवं उपलब्धियों पर चर्चा की गयी है। 'सात सुरों का मेला' दस अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय सिने गीतों की उत्पत्ति, विकास यात्रा, संघर्ष, परिवर्तन तथा जनमानस पर उसके प्रभाव के साथ ही उस समय की संगीत विभूतियों के कार्य और उनके योगदान को समेटा गया है। इसी क्रम में अन्य अध्यायों में दशकवार सिने गीत-संगीत के विभिन्न पक्षों के साथ उस अवधि में हो रहे बदलाव, नए प्रयोग तथा गायन शैली के विविध रूपों पर बात करते हुए लेखक ने सिने गीत-संगीत के स्वर्णिम युग पर विस्तार से अपनी विवेचना प्रस्तुत की है जो इस ग्रंथ का सबसे आकर्षक और महत्वपूर्ण अध्याय है। 'आलम आरा' (1931) से प्रारम्भ करके 'मणिकर्णिका', 'तान्हा जी' (2020) तक की संगीत यात्रा विशिष्ट, रोचक और आत्मविभोर करने वाली है। पुस्तक के अंत में नौ दशक के 360 सर्वकालिक प्रतिनिधि गीतों की सूची फिल्म, वर्ष, गायक, गीतकार, संगीतकार के नाम के साथ दी गयी है जिस पर दृष्टिपात करके फिल्म संगीत का सार समझा जा सकता है। सिने गीत-संगीत की इस कथा यात्रा में ऐसी ढेरों अनकही-अनसुनी गाथाएँ भी हैं जो रोचक, सूचनाप्रद, ज्ञानवर्धक और ऐतिहासिक हैं। इन्हें पढ़ना-जानना-समझना अपने आप में एक उपलब्धि है। यह पुस्तक सिने संगीत और इसके गायक-गायिका तथा अन्य सम्बन्धित पक्षों के बारे में कई स्थापित धारणाओं को भी तोड़ती है। जन सामान्य के मध्य प्रचलित कई ऐसी अवधारणाएँ जिसे हम दशकों से सुनते-समझते आ रहे हैं पर उसकी सत्यता को कभी किसी ने जाँचा-परखा नहीं, ऐसे स्थापित कर दिए गए कथ्यों से पर्दा उठने का काम भी इस पुस्तक में किया गया है। गीतकार-शायर हसरत जयपुरी इस पुस्तक के नाम से इतना प्रभावित हुए थे कि उन्होंने ढाई दशक पूर्व ही इस पर विशेष रूप से एक गीत ही लिख कर तब डॉ. राजीव श्रीवास्तव को अपनी ओर से भेंट किया था जिसे इस पुस्तक के प्रारम्भ में प्रकाशित किया गया है। पुस्तक का आमुख 'माधुरी' और 'सर्वोत्तम डाईजेस्ट' जैसी महत्वपूर्ण पत्रिका के संपादक रह चुके अरविन्द कुमार ने लिखा है। सिनेमा के ऐसे वयोवृद्ध पारखी और ज्ञाता द्वारा लिखा गया 'आमुख' अपने आप में ही एक प्रामाणिक दस्तावेज है।

मेरा मानना है कि इस प्रकार के शोधपूर्ण कार्य जो कला, संगीत, साहित्य और संस्कृति को भी साथ-साथ ले कर संपन्न किए जाते हैं वह दशकों में कभी-कभी ही सम्भव हो पाता है। कई बार अपना पूरा जीवन इस प्रकार के अन्वेषणात्मक योजना -परियोजना में लोग न्योछावर कर देते हैं फिर भी वांछित फल की प्राप्ति के प्रति संशय बना रहता है। डॉ. राजीव श्रीवास्तव का यह ग्रंथ ऐसे ही सर्वथा दुर्लभ उपलब्धियों में से एक है। वैश्विक स्तर पर भारतीय सिने गीत-संगीत के कालजयी स्वरूप की लोकप्रियता और इसके प्रचार-प्रसार को देखते हुए इस पुस्तक का अनुवाद भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं में भी किया जाना चाहिए ताकि विश्व जिस हिन्दी सिने गीतों का दीवाना है वह उसके इतिहास, संघर्ष, विकास यात्रा, उपलब्धियों तथा उसमें निहित साहित्य, लोक तत्व और सम्प्रेषण क्षमता से भी भली-भाँति परिचित हो सके। विश्वविद्यालयों तथा विभिन्न शिक्षण-प्रशिक्षण विद्यालयों एवं संस्थानों में साहित्य, सिनेमा, संगीत, कला और संचार के पाठ्यक्रमों में यह पुस्तक अनिवार्य रूप से सम्मिलित की जानी चाहिए। यह सत्य है कि इस प्रकार के कार्यों की उच्च कोटि की गुणवत्ता, इसके व्यापक सरोकार, सर्वकालिक प्रयोजन तथा विशिष्ट उपलब्धि हेतु दिया जाने वाला किसी भी प्रकार का पुरस्कार अथवा सम्मान स्वयं में ही पुरस्कृत एवं सम्मानित होता है इसलिए मैं ये चाहूँगा कि इस ग्रंथ और इसके महर्षि समान विद्वान लेखक को विभिन्न समाज, संस्था और सरकार द्वारा प्रदान किए जाने वाले सर्वश्रेष्ठ अलंकरण से सम्मानित किया जाना चाहिए। यह कार्य दुर्लभतम् श्रेणी का है। प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक आर्ट पेपर पर रंगीन पृष्ठों पर छपी गयी है जो इसके कलेवर को निःसन्देह एक आकर्षक स्वरूप में ढाल गया है।

सरगम के सुर-शब्द-स्वर से स्पंदित तथा साहित्य के सौन्दर्य से शृंगारित 'सात सुरों का मेला' ग्रंथ एक मनोरम संग्रहणीय कालजयी कृति है जिसकी अनुगूँज संगीत आकाश पर पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन तथा मौन-मुखर राग-रागिनियों की संगत में सदैव ध्वनित होती रहेगी।

❖

वरिष्ठ लेखक, कवि, समालोचक
एवं पूर्व विभागाध्यक्ष (हिन्दी) जे एन यू, नयी दिल्ली
मोबाइल-व्हाट्सऐप: 91-9999428212

सुहैब अहमद फ़ारूक़ी की ग़ज़लें

(1)

बिजली कहीं गिराए ज़माने गुज़र गए
जल्वा उसे दिखाए ज़माने गुज़र गए
जल्वा-तीक्ष्ण प्रकाश, चमक

तुम से निगाह हटती न थी वो भी वक़्त था
लम्हात अब वो आए ज़माने गुज़र गए
लम्हा-क्षण

क्यों छानते हो ख़ाक मियाँ कू-ए-यार की
उस को तो ख़त जलाए ज़माने गुज़र गए
कू-ए-यार- प्रियतम/प्रियतमा की गली

कैसे कहें कि राब्ता उस से रहा नहीं
जिस को हमें भुलाए ज़माने गुज़र गए

इक बार उस की दीद की हम को है आरज़ू
यारों फ़रेब खाए ज़माने गुज़र गए
दीद-दर्शन

ये किस गुमान में हो हमें ज़ेर करके तुम
हम को तो सर झुकाए ज़माने गुज़र गए
ज़ेर-नीचे, गिराकर

आती है अब चमन से ये ख़ुशबू 'सुहैब' क्यों
जब कि बहार आए ज़माने गुज़र गए

(2)

गाँव आ कर जो अपना घर देखा
दिल को आज़ुर्दा किस क़दर देखा
आज़ुर्दा-दुःखी

घर था ख़ामोश ऊँघती गलियाँ
एक सन्नाटा सर-बसर देखा
सर-बसर-पूर्णतया

आशियाँ था जो हम परिंदों का
तन्हा तन्हा सा वो शजर देखा
शजर-पेड़

किस के शाने पे रख के सर रोते
कोई रिश्ता न मो'तबर देखा
शाना-कंधा, मो'तबर-विश्वसनीय

खेत खलियान साथ रोने लगे
रोता हम को जो इस क़दर देखा

ऐश-ओ-इशरत की याद आई बहुत
हम ने बचपन में झाँक कर देखा
ऐश-ओ-इशरत-भोग-विलास

याद पापा की ख़ूब आई 'सुहैब'
हम ने बच्चों को डाँट कर देखा

(3)

तू अगर बेवफ़ा नहीं होती
ये क़यामत बपा नहीं होती
क़यामत-प्रलय, बपा-होना/हुई

मौत उस को शिकस्त देती है
ज़िंदगी बेवफ़ा नहीं होती
शिकस्त-पराजय

काश मैं भी न रूठता उस से
काश वो भी ख़फ़ा नहीं होती

मैं अगर सच को झूट कह देता
मुझ को हरगिज़ सज़ा नहीं होती

उस की जुल्फ़ों की याद आती है
जब फ़लक पर घटा नहीं होती
फ़लक-आकाश

चारागर क्यों फ़रेब देते हैं
दर्द-ए-दिल की दवा नहीं होती
चारागर-रोगहर/चिकित्सक, फ़रेब-धोखा

जो दवाओं से काम चलता 'सुहैब'
तो यक़ीनन दुआ नहीं होती

थाना अध्यक्ष आज़ादपुर मेट्रो
दिल्ली-110052 मो. 9818542888
ईमेल suhaib.farooqui@gmail.com

नरेश शांडिल्य की ग़ज़लें

(1)

टूटे ख़्वाबों को यूँ तामीर किया है उसने
चूम कर दर्द, मुझे मीर किया है उसने

तोड़ कर आज ज़माने की सभी दीवारें
ख़ुद को राँझे के लिए हीर किया है उसने

मैं भी इतराता हुआ घूमूँ, इसी चाहत में
अपने दिल को मेरी जागीर किया है उसने

अब्र-सी अपनी दुआओं की नज़र बरसा कर
मेरा मरुथल-सा जिगर नीर किया है उसने

मेरे गर्दिश में सितारे हैं, पता चलते ही
मुझ-से दर-दर को बग़लगीर किया है उसने

(2)

रोना भी ज़रूरी है, आँसू भी छुपाने हैं
दर्दों में सने मेरे जीवन के तराने हैं

कलयुग का कबीरा हूँ, चादर है मेरी मैली
मद-मोह के तानों पर माया के ये बाने हैं

माथे को मेरे पढ़कर पंडित ने कहा झट से
दोज़ख़ से गुज़रना है, जन्नत में ठिकाने हैं

वादे तो वो करते हैं, इसमें ही तसल्ली है
वादों को निभाएँ क्यों जब लाख बहाने हैं

हो दौर कोई लेकिन आख़िर को यही देखा
आगे ये मुहब्बत है, पीछे ये ज़माने हैं

(3)

गीत इक गा के उड़ गई चिड़िया
मेरे मन भा के उड़ गई चिड़िया

मुझको बस दो घड़ी रिझाने को
आई और आ के उड़ गई चिड़िया

एकटक मैंने क्या उसे देखा
झट से शरमा के उड़ गई चिड़िया

करके वादा कि आऊँगी फिर कल
मुझको बहला के उड़ गई चिड़िया

देख कर बेरुख़ी ज़माने की
हाय! ग़म खा के उड़ गई चिड़िया

सत्य सदन, ए-5, मनसा राम पार्क
संडे बाज़ार लेन, उत्तम नगर, नई दिल्ली 110059
मो. 9711714960, 9868303565 (whatsapp)
ईमल : nareshshandilya007@gmail.com

रूबी मोहंती की कविताएँ

एक उम्र में

जब कोई मर्द कहता है-
सुनो!
मुझे तुमसे बेइन्तहा मुहब्बत है!
औरत चाह कर भी नहीं पढ़ पाती
मर्द की आँखों की सलेटी पुतलियों को...
जो घूमती हैं तेजी से...
पलभर में
नाप लेती हैं औरत की हर गहराई को...

प्रेम में बौराई औरत तय ही नहीं कर पाती
ये खूबसूरत इश्क कितने वक्त के लिए है?
भूल जाती हूँ वह सब कुछ...
पकाने लगती है ख्वाबों का सालन...
तैयार करती है दस्तरख्वान...
और ...दे डालती है निमंत्रण
प्रेम का स्वांग-भरे उस मर्द को...
कटोरी-भर लम्हें साथ बिताने के बहाने
अपने आगोश में
जाने कब भींच डालता है उस औरत को...
मसल देता है
पसलियों में सांस लेते जज्बातों को
इश्क का खारा समंदर
पार नहीं कर पाती औरत...
अपनी ही पतवार से तोड़ती है अपनी नाव...
कुचलती है अपने ही हाथों
अपने प्रेम की दुनिया...
बन जाती है मर्द की निगाह में
एक बदजात औरत!

तुम्हारी हँसी

चौंक जाती है
हर आहट पर
मेरी अनकही खामोशी!

तुम्हारी
सौंधी सी हँसी
बिखर जाती है
पलाश के फूलों की तरह
मेरे हृदय आंगन में!
देने को मुझे आमंत्रण

तुम्हारी भीगी सी हँसी से
बिंध जाता है
मेरा हर सन्नाटा

और
बह उठती हूँ मैं...
मदमाते झरने सी!!

यूँ ही रातों में

हाँ, चाहती हूँ मैं...

रातों में बैठकर
कोई, बात करें देर तक...
खिलखिला कर चहके
मेरे साथ...
और फिर यूँ ही...
उंगलियों की पोरों से
चौपाई लिखे मेरी पलकों पर!
हाँ, चाहती हूं मैं...

रातों में बैठ कर
कोई , खामोश रहे देर तक...
महसूस करे अंधेरे को
मेरे साथ...
और फिर यूँ ही...स्पर्श करे
मन की गहराइयों से
मेरे हृदय की रेखाओं को!
हाँ , चाहती हूँ मैं!!

मुख्य संपादक 'वनिता'
ई-1101, स्टेलर सिटीहोम्स
सेक्टर: ओमिक्रोन 3, ग्रेटर नोएडा-201310
मो. 9871583877 ईमेल : ruby.mohanty@gmail.com

यामिनी नयन गुप्ता की कविताएँ

पिघलती भट्टियां

कोरोना कर्फ्यू!!
और
सड़कों पर पसरा सन्नाटा
बेलगाम होता कोरोना संक्रमण,
रातों में भी सुलगते मोक्षधाम
एंबुलेंस के सायरन से टूटती खामोशी
स्वजनों को खोने वाले लोगों का विलाप,
पिघलने लगी हैं शवदाह गृह में लगी धातु की भट्टियाँ
कब तक सह सकेंगी मृत देहों का बोझ
वो मृत देह; जिन्हें अंतिम समय में भी
ना मिल सका अपनों का साथ।

श्मशान में लगे लाशों के ढेर
रोंगटे खड़े कर देने वाली तस्वीरें
आज का निर्मम सत्य है यही
मानवता समाप्त हो रही है
रोबोट में तब्दील होते जा रहे हैं हम सभी
संकट में है मानव का मनोविज्ञान
अट्टाहास करता कोरोना वायरस
सिर्फ अकेले और अकेले होते हम
रिश्ते-नातों, पहुंच-पकड़ से दूर होते
जमीनी हकीकत है भयावह।

नमन और श्रद्धांजलि जैसे शब्द
बहुतायत में बिखरे पड़े हैं
भय की प्रतीति, दुश्चिंताऐं हैं चौतरफा
अस्थिर, अशांत है मन
भीड़भाड़ से बढ़ता इस महामारी का साम्राज्य,
प्रकृति का यह भयावह खेल खत्म हो अब
बसंत के बाद आ बैठी है मृत्यु ऋतु
और पत्थर हो रहा है मानव
कठिन दौर की शुरुआत है और छोर का पता नहीं।

मानवता के प्रहरी बन
अब भी हैं कुछ अच्छे लोग हैं,
लेकिन जो भी अच्छे होंगे
जो दया, मदद सहयोग के लिए तैयार मिलेंगे
वो बहुत दिनों तक बच नहीं सकेंगे
कोरोना के निर्दयी पंजों से,
कोरोना नहीं कुछ और किया हो या ना किया हो
लेकिन जो थोड़ी बहुत मनुष्यता बची थी
उसे भी कर दिया है नष्ट
चारों ओर है करोना का कहर
विश्वव्यापी प्रकोप
यह कुछ दिन, माह, बरस और जी गया
तो कैसे दिखेंगे हम सबके चेहरे
कहना मुश्किल है
हम कितने अमानुष हो जाएंगे
कह पाना मुश्किल है।

❖

पूर्वाग्रह

पूर्वाग्रहों से भरा मानव मन
किसी से मिलने से पूर्व ही
सुनी-सुनाई बातों पर बना लेता है एक धारणा
जिनसे पार निकलना हो जाता है दुरुह,
व्यक्ति के मनोविज्ञान में छिपी ग्रंथियाँ
उसे नहीं रहने देती हैं निरपेक्ष,
तारतम्यता का बिगड़ता क्रम
गलतफहमियों के उपक्रम
धारणा की बुनियाद पर खड़े
दूसरे की पृष्ठभूमि को नजर अंदाज कर
पूर्वाग्रहों से उपजे निर्णय
समय के साथ सिद्ध होते हैं थोथे
अंततः गलत सिद्ध होती धारणाएँ।
धारणाओं की धुरी पर
असहजता और पूर्वाग्रह हैं एक दूसरे के पूरक,
विशिष्टता का आग्रही मानस
अपरिचय बोध में रहता है सहज
जहां हम नहीं जानते किसी को
कोई नहीं जानता हमें
वहाँ पनप नहीं पाता विशिष्टता का आग्रह,
सहजता ठहरी रहती है व्यवहार में
इसलिए जब कभी मिलो किसी से
तो ऐसे मिलो जैसे मिल रहे हो पहली बार
पूर्वाग्रहों से रहित होकर
तयशुदा खांचों से परे।

❖

मनु मोटर्स हम कांम्प्लेक्स, शौकत अली रोड
सिविल लाइंस, रामपुर, उ.प्र. 244901
मो. 9219698120 ई-मेल : yaminignaina@gmail.com

अलका त्रिपाठी 'विजय' की कविताएँ

कौन रचता

कौन रचता द्वार गेरू लिपियों से।
अल्पनाएं कौन साजे सीपियों से।।
बाग सूना ताल ,पोखर सब है सूने।
चल रही पछुवा हवा भी नैन मूंदे।
साहूकारी और बनिया स्वप्न जैसे ।
आधे पौने का वसूले सीधे दूने।
छा गई वीरानी कुएं के जगत पर,
खेलता नही कोई चौसर गोटियों से।
कौन रचता

काल कलवित हो रहा काली का चौरा।
कौन पूजे अब यहाँ गोबर की गौरा।
सूख कर नदिया सभी दुबरा गई है,
अब कहाँ गोरु के हक में आता कौरा।
गाय रंभाती है बछिया देख कर के,
दूध अब ढारे ढेपियों से।
कौन रचता

दूर वीराने में बरगद है अकेला।
छांव के नीचे बचा यादों का मेला।
अब नही कोई यहां पनघट है प्यास।
बोझ संबंधों का लगता है झमेला।
जब दरख्तों में हुई तब्दील पाकड़,
काटते पीपल वो आ कर रेतीयों से।
कौन रचता

स्नेह का दीपक नहीं आँगन में जलता।
राम जाने क्या किसी के मन मे पलटा।
दायरों में हर सुलगते घर के चूल्हे।
साँझ के संग मिल धुआँ बदरंग ढलता।
अंबिया, इमली ,अमावट कौन पीसे,
स्वाद चटनी का भी रूठा रोटियों से।
कौन रचता

❖

पूछते मधुमास वाले दिन

जिंदगी की हर खुशी रेहन पड़ी,
खो गए मधुमास वाले दिन।
एक पल के हक में है कितनी कहानी,
पूछते मधुमास वाले दिन।।

नीम पीपल टूटते अनुबंध सपने।
हिम शिलाओं पर टिकाये पांव अपने।
कद की परिभाषा बताता आईना,
भूलते इतिहास वाले दिन।

देह कुन्ती जब बनी बोझिल हुई।
पांचाली पीर कब ओझिल हुई।
सारथी बन रथ भला अब कौन हाँके,
छलते हैं विश्वास वाले दिन।

शब्द अनुबंधित कहाँ तक साथ देते।
नदी अरारे भी नहीं
अब हाथ देते।
सांस बोझिल तन शिथिल मन हो गया है,
आ गए अवकाश वाले दिन।

मोहिनी का मंत्र फूँके हर कोई।
अधखिली सी पीर पागल तम में सोई।
मौन है सारी दिशाएं बेबसी ले,
परती है अहसास वाले दिन।

छल कपट रिश्तों को फांसे द्वन्द्व हैं।
व्याकरण विस्मृत तो भटके छन्द हैं।
कोरे पन्ने मिट गये अहसास सारे,
ढूंढते परिहास वाले दिन।

दिन ढले सज कर सलोनी साँझ आई।
स्याह चादर रेशमी तम ने बिछाई।
आ के दीपक देहरी पर कौन बारे,
खो गए उल्लास वाले दिन।
पूछते मधुमास वाले दिन।

❖

आदित्य लोक डी-1/45 सेक्टर-एच
जानकीपुरम, लखनऊ-226021 मो. 9838279900

योजना जैन (जर्मनी) की कविताएँ

सूर्य बाला

चंचल तरणी
मादक मन हरणी
श्वेत किरणों का श्रृंगार किये
रूप ओज अपने साथ लिए
रजनी के श्यामल आँचल से
निकल देखो आ रही है
सौंदर्य प्रकाश फैला रही है!

गौर वर्ण पर हलकी सी
ललित लालिमा बिखरी
श्वेत तुहिन कणों से
कुछ कुछ और निखरी
हिमरंजित, हिमशिखरों को पार कर
नभ पथ से नभ पर छा रही है!
रजनी के श्यामल आँचल से
निकल देखो आ रही है!

लक्ष्य शायद उसका है
हिम शिखरों के उस पार जाना
स्वर्णिम किरणों के रथ पर हो सवार
ऊँचे श्वेत शिखरों को छू पाना!
लक्ष्य पूर्ती की ओर अग्रसित वो
विजय पथ पर जाती
पद चिन्ह छोडती
श्रम की तपन से तपी
कभी अनल सी बन जाती
और कभी बदलियों के बीच
लुक छुप लुक छुपडोलती...

अब जरा ऊर्जा रहित हो
मन में कसक उसके जगी
क्यों घर से निकल कर
इतनी दूर आ मैं चली!
पर अब भी ऊष्मा सहित
वह आगे बढती जाती है !
गौर वर्ण थोडा फीका पड़ा
लालिमा मद्धम हो आई
हर्षित होती देख अपनी
लघु होती परछाई.....

लक्ष्य समीप पहुँच
खुशी की लालिमा फिर छाई
शिखर छू पाने की आस ने
भर दी नव तरुनाई!
सखी सहेलियों सबको दे कर विदा
दे वचन आऊंगी कल पुनः प्रभा!
लुप्त स्वसौन्दार्य समेटदेखो हो रही!

परछाईयों में गुम
अचल गिरी के उस पार
वसुंधरा को दे विदा
अब इस क्षण खो चली
तिमिर के तम में पहले धूमिल
फिर इस तरह खतम हो चली
उसकी कहानी, टूटा उसका जादू
रजनी के श्यामल आँचल में
पुनः गयी देखो वो समा!
और निशा के तम ने
प्रभाव अपना लिया जमा!
और उसके रूप का भ्रम
जो था अभी तक भरपूर पला
सूर्यास्त होते ही यूँ टूट चला!!!

मेरी चुप्पी

मेरी चुप्पी,
तुम्हारे सारे सवालों का जवाब है!

इसे मोड़दो चाहे किसी भी दिशा में,
ये चुप ही रहेगी!

क्योंकि मैंने देखा है,
लोगों को चिल्लाते,
शोर मचाते,
अर्थहीन शब्दों
के मेले में,
शब्दों के,
अर्थ को खोते हुए!

इस झालमझाल में,
शोर के बाजार में,
मेरी चुप्पी शांत है,
सुढृढ़ है
भले ही अकेली है!
पर ओछे,
फूहड़ शब्दों से,
कहीं अच्छी है!

तलाश में है,
किसी मंद मंद मुस्काती,
एक और चुप्पी के!

कि कहीं वो मिले,
तो चंद बातें हों!
कुछ तालें टूटे,
तो सोना निकले!
अनकहे जज्बातों को,
शब्द मिलें,
खोए हुए शब्दों को,
सच्चा अर्थ मिले!

वरना,
ये अकेलापन,
भीड़ से कहीं अच्छा है!

सच, ये वीराना,
भीड़ से कहीं अच्छा है!!!

Stralauer Platz
Berlin, Germany, 10243,
Mob. +4915171096828
Email : yojna.jain@gmail.com

पॉली भौमिक की कविताएँ

प्रकाश पंथ

द्विप्रहर में, बीच भँवर में,
उड़ रही हैं चिड़ियाँ।
चिकने धूप में आँखें मूँदें,
निथर पड़ा हैं भालू।
बगुलों का जोड़ा पक-पक बोलता,
उड़ रहा नील गगन में।
हंस कर रहा अपना भाव प्रकाश,
नयनों संग नयनों में।

दर्जिन चिड़ियाँ कितनी सूंदर,
अपरूप उसकी सज्जा।
किसने देखा किसने परखा,
न भावना हैं न लज्जा।
हे तितली! कितनी दूर्गति तेरी,
घूम रही एकांत में।
बिछड़ गई हैं साथी उसकी,
सुनसान डगर की दोपहरी में।

धान से भरा लहलहाता खेत,
कर रहा हरियाली का जयगान।
घास पात भी कदम मिलाकर,
कर रहा हैं गुणगान।
प्रकाश- पंथ में मृदुता फैलाने,
कदम मिलाया पुष्पों ने।
खिले- अधखिले से इनके गुच्छे,
महक रहा चहु दिशाओं में।

स्वप्निल उड़ान

दूर आसमान में नीला मेघ उड़ रहा देखो वहाँ,
पर मीठी परी की मीठी मुस्कान,
खो गई देखो कहाँ?

वासंती हवा में ताल तमाल भी झूम रहा देखो कैसे,
पर मीठी परी ही न जाने क्यों,
रूठी बैठी हैं कैसे।

क्लांत पक्षी सुस्ता रही हैं ताल- तमाल के डालों में,
अरी पक्षी छू जाओं,
नन्हीं परी के गालों में।

कहाँ खोई हैं मीठी परी की रस भरी वह मुस्कान,
ऐसे में लग रहा मानो,
छाया अंधेरा सारा जहाँ।

अरे! वह देखो मीठी परी भी,
झूम रही हैं कैसे,
मस्त पवन के हिंडोलो में,
नाच रही हैं ऐसे।

मचल-मचल कर नन्हीं परी भी,
उड़ा रही हैं पतंग,
चलो हम सब भी उस परी संग,
उड़ चले स्वप्निल गगन।

मन क्यों चंचल

वाग्देवी की आराधना करते,
माँगते अनेक वर,
कितनी ही मनोकामनाएँ,
सारे हो सफल।

विद्यां देही,यशो देही,
सब देही ही देही,
पर क्या कभी माँगी धैर्य,
या फिर चाही सहिष्णुता ही।

पढ़ने बैठते पर मन होता चंचल,
कल्पना करते विश्व की,
पर जिसकी हमें सबसे
आवश्यकता,
वह सदैव रह जाती निष्फल।

हे माँ! तुम राह दिखाओ,
बढ़ाओं सहिष्णुता का आँचल।

सहकारी अध्यापिका (हिन्दी विभाग)
रामठाकुर कॉलेज, अगरतला
त्रिपुरा (पश्चिम) 799003
मोबाइल : 9436796214
ईमेल : polybhowmick123@gmail.com

स्थापना दिवस: भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

भारत के वर्तमान संदर्भ में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद एक बहुत ही महत्वपूर्ण इकाई के रूप में सांस्कृतिक,साहित्यिक एवं कलात्मक चेतना के लिए विश्व भर में काम कर रही है। भारत के वैदेशिक सांस्कृतिक संबंधों से संबद्ध नीतियों के निर्धारण कार्यक्रमों के प्रतिपादन एवं कार्यान्वयन के लिए भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद उत्तरदायी रही है। परिषद मुख्य रूप से अपने गतिविधियों के अंतर्गत भारत और अन्य देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों तथा आपसी सद्भावना को प्रोत्साहन और मजबूती प्रदान करने का कार्य करती है। अन्य देशों और लोगों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना तथा संस्कृति-कला के क्षेत्र में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ संबंधों की स्थापना तथा उसका विकास करना परिषद के मूल उद्देश्य हैं।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना 9 अप्रैल, 1950 को मौलाना आजाद के द्वारा की गई थी। आरंभिक काल में परिषद शिक्षा और युवा कार्य मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करता था परंतु सन 1971 में शिक्षा और युवा कार्य मंत्रालय से विदेश मंत्रालय को सौंप दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद अपने मंतव्य के अनुसार राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तर पर सांस्कृतिक चेतना के विकास के लिए कार्य कर रही थी जिसका संबंध ज्यादातर विदेश मंत्रालय से होता था।

विगत 71 वर्षों से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद निरंतर भारत की मृदु शक्ति अर्थात सॉफ्ट पावर के माध्यम से सांस्कृतिक चेतना का विकास, दो देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान, कल्चरल डिप्लोमेसी के माध्यम से भारत के संबंधों को वैश्विक स्तर पर मजबूत करने का कार्य करती रही है।

समकालीन परिदृश्य में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद हिंदी चेयर के माध्यम से हिंदी शिक्षण का कार्य, अनेक विषयों पर सम्मेलन और संगोष्ठियों का आयोजन, छात्रवृत्ति देने की योजना, हिंदी और संस्कृत भाषा को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित और बढ़ाने का कार्य, योग के माध्यम से विश्व के स्वास्थ्य की चिंता करना, भारतीय मृदुल शक्ति पर केंद्रित वार्षिक व्याख्यान का आयोजन करना, अनेक इंडोलॉजी से संबंधित विषयों को लेकर विशेष कार्य करने वाले व्यक्ति अथवा संस्था को सम्मानित करना तथा दुर्लभ पांडुलिपियों के संरक्षण का कार्य करती आ रही है।

हर वर्ष 9 अप्रैल को परिषद अपनी स्थापना दिवस को खूब धूमधाम से मनाती है। विश्व के अनेक देशों में स्थापित परिषद के सांस्कृतिक केंद्रों तथा भारत के भीतर क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से भाषा साहित्य संस्कृति एवं कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आई है।

भगवान बुद्ध की मूर्ति तोँगडोसा मंदिर को उपहार

भारतीय राजदूतावास, सियोल ने तोँगडोसा अधिकारियों के सहयोग से कोरिया गणराज्य को भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आईसीसीआर) द्वारा भगवान बुद्ध की एक मूर्ति उपहार स्वरूप प्रदान किया गया।

30 अप्रैल, 2021 को भारतीय राजदूतावास में, 16 मई को आयोजित तोँगडोसा में प्रतिमा-प्रतिष्ठा और 19 मई, 2021 को वेसाक के साथ कोरियाई लोगों को प्रतिमा समर्पण समारोह संपन्न हुआ। इस अवसर पर स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, भारतीय राजदूतावास, सियोल में प्रतिमा समर्पण समारोह में भारतीय राजदूत आर.ओ.के, एच.ई. सुश्री श्रीप्रिया रंगनाथन तोँगडोसा वेन के प्रधान भिक्षु, ह्योनमुन उपस्थित थे। 16 मई, 2021 को तोँगडोसा, यांगसन में भगवान बुद्ध की प्रतिमा का प्रतिष्ठा समारोह आयोजित किया गया था। समारोह के दौरान, राजदूत ने भारत-कोरिया सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ावा देने में बौद्ध धर्म के केंद्रीय महत्व पर प्रकाश डाला गया।

आईसीसीआर के महानिदेशक एच.ई. श्री दिनेश के. पटनायक ने अपने संदेश में इस बात पर जोर दिया कि टोंगडोसा जैसे मंदिर भगवान बुद्ध की दृष्टि को दुनिया के सामने लाते हैं और दुनिया भर में बौद्ध धर्म की शक्ति और अच्छाई का उत्सव मनाते हैं।

19 मई को आयोजित कोरियाई वेसाक समारोह में भारतीय उप विदेश मंत्री एच.ई. सुश्री रीवा गांगुली दास ने दक्षिण कोरिया के लोगों को प्रतिमा समर्पित की, जिसमें बुद्ध की शिक्षाओं की स्थायी प्रासंगिकता पर जोर दिया गया। मानव जाति को सभी की भलाई के लिए सहयोग करने और वर्तमान में चल रही कोविड-19 महामारी पर काबू पाने के लिए आंतरिक शक्ति प्रदान करती है। उन्होंने भारत के राष्ट्रीय संग्रहालय द्वारा क्यूरेट और कोरिया में कोरियाई बौद्ध धर्म के एसवीसीसी, भारतीय राजदूतावास, सियोल और कोरियाई बौद्ध धर्म के जोगी अश्वर्डर के सहयोग से प्रस्तुत "बोधचिट्टा: इंटरविविंग बौद्ध कला परंपराएं भारत भर में एशिया" पर एक आभासी प्रदर्शनी शुरू करने की भी घोषणा की।

तोँगडोसा का भारत के साथ एक विशेष संबंध है, जिसका निर्माण उन भिक्षुओं द्वारा किया गया था जो भारत आए थे और बुद्ध के शिष्यों के करीबी मंडली का हिस्सा बन गए थे। इस अवसर पर समारोह में वेन सहित प्रमुख कोरियाई गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। तोँगडोसा मंदिर के प्रमुख भिक्षु ह्योनमुनय नई दक्षिणी और उत्तरी नीति के लिए राष्ट्रपति के सचिव श्री येओ हान-गुय कोरिया गणराज्य की नेशनल असेंबली के सदस्य श्री पारक सेओंग-जून, श्री जियोंग पिल-मो, मिस्टर चोई जोंग-यूं, श्री चोई इन-हो, श्री यूं जियोन-यंग, श्री यूं यंग-सोक, श्री किम डू-क्वान और श्री किम जोंग-होय श्री चो ह्यून-राय, धार्मिक मामलों के कार्यालय के उप मंत्री, कोरिया गणराज्य संस्कृति, खेल और पर्यटन मंत्रालय श्री किम इल क्वोन, यांगसन के मेयर श्री पार्क जोंग-वोन, ग्योंगसांगनाम प्रांत के उप राज्यपाल और डॉ. ली जे-यंग, अध्यक्ष, डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ कोरिया यांगसन डिस्ट्रिक्ट चौप्टर उपस्थित रहे।

प्रतिमा-उपहार समारोह भारत और कोरिया गणराज्य के लोगों के बीच लंबे समय से चली आ रही दोस्ती और सांस्कृतिक सभ्यतागत संबंधों एवं तोँगडोसा और भारत के बीच ऐतिहासिक संबंधों का प्रमाण है।

19 मई, 2021

चौथा पंडित दीनदयाल उपाध्याय मेमोरियल अंतर्राष्ट्रीय व्याख्यान (2021)

माननीय श्री विनय सहस्राबुद्धे, अध्यक्ष, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की अध्यक्षता में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

डॉ. कॉलिन टेलर सेन, प्रसिद्ध भारतीय पाक विशेषज्ञ एवं लेखक व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए।

श्री दिनेश पटनायक, महानिदेशक, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद स्वागत भाषण देते हुए।

सभी प्रतिभागी आभासीय रूप में व्याख्यान से जुड़े एवं अपने विचार प्रस्तुत करते हुए।

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, हंगरी द्वारा अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के दौरान आयोजित कार्यक्रम में योग करते हुए।

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोट डी आइवर (Cote D Ivoire) द्वारा अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के दौरान आयोजित कार्यक्रम में योग करते हुए।

विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, सूवा फिजी द्वारा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के 71वें स्थापना दिवस के अवसर पर कर्नाटिक संगीत के छात्रों द्वारा प्रस्तुति।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के 71वें स्थापना दिवस के अवसर पर कार्यवाहक उच्चायुक्त श्री सैफुल्लाह खान समारोह को सम्बोधित करते हुए।

SVCC हनोई द्वारा सातवें अंतर्राष्ट्रीय दिवस के अवसर पर, छात्रों के लिए COVID-19 महामारी के खिलाफ उनके लचीलेपन और प्रतिरक्षा को बढ़ाने के लिए ऑनलाइन योग कक्षाएँ आयोजित की गईं।

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, बाली ने 29 और 30 अप्रैल, 2021 को अंतर्राष्ट्रीय नृत्य दिवस मनाया।

21 अप्रैल को हनोई में ऐतिहासिक चेन फु पगोडा में वियतनाम – इंडियन फ्रेंडशिप एसोसिएशन हनोई सिटी (HAVIFA) और संस्कृति समिति, वियतनाम बौद्ध संघ (VBS) द्वारा आयोजित बोधि वृक्ष रोपण समारोह।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क			प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	₹	500 (भारत)		
		US$	100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200 (भारत)		
		US$	250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%		
	पुस्तक विक्रेता		25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 43 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 2268/2272

गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

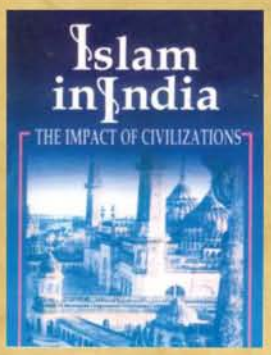

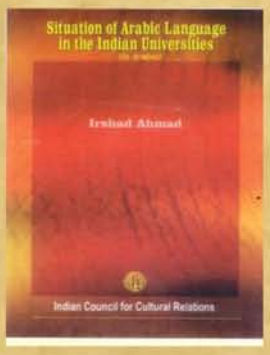

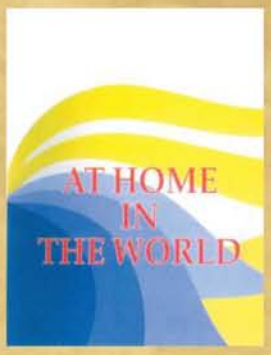

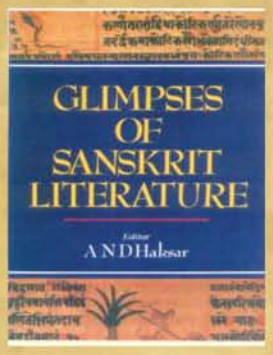

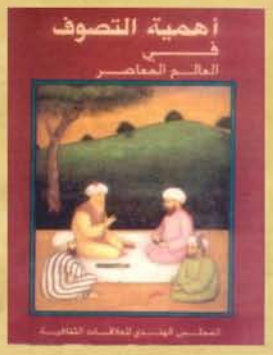

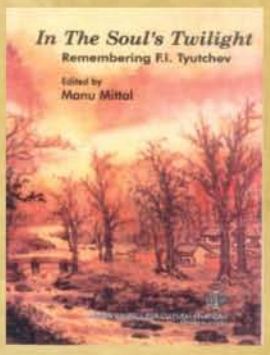

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका